श्रीमहाकविभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

['विभा' नामक संस्कृत टीका, हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद, विस्तृत टिप्पणी और सर्वाङ्गपूर्ण भूमिका एवं छः उपयोगी परिशिष्टों से संवलित]

प्रणेता

श्री तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

भूमिका लेखक

श्री बद्रीनाथ मालवीय

अध्यक्ष संस्कृत-हिन्दी विभाग

बा० ना० जैन महाविद्यालय, जबलपुर

अंग्रेजी अनुवादक

श्री रामचन्द्र शुक्ल

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

२, कटरा रोड, इलाहाबाद-२

षष्ठ संस्करण] १९८० [मूल्य रु० 10.00

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
इलाहाबाद–२

२ फरवरी, १९८०

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद–२

विषय-सूची

भूमिका

विषय				पृष्ठ
१—नाटक की रचना				१
२—नाट्य कला की उत्पत्ति				२
३—नाटक (रूपक की परिभाषा)				४
४—नाटक और अभिनय				४
५—सुखान्त और दुःखान्त नाटक				६
६—भास का स्थितिकाल				७
७—भास का जीवनवृत्त				१५
८—भास के नाटक				१८
९—क्या इन सभी नाटकों के रचयिता भास हैं ?				२१
१०—स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु				२६
११—प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण				
(१) उदयन	३२	(२) वासवदत्ता		३४
(३) पद्मावती	३६	(४) यौगन्धरायण		३७
(५) वसन्तक	३८			
१२—स्वप्नवासवदत्तम् का नामकरण				३९
१३—स्वप्नवासवदत्तम् का मूल्यांकन एवं भास की नाट्यकला				३९
१४—भास की शैली				४२
(१) व्यञ्जकता तथा प्रभावोत्पादकता				४६
(२) गुण व रीति	४६	(३) सरलता		४७
(४) वर्णन कुशलता	४७	(५) भावों का व्यक्तीकरण		४८
(६) सरलता और रम्यता	४९	(७) भाषा		४९
(८) स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता				५०
(९) व्याकरण विषयक ज्ञान एवं पाण्डित्य				५०
(१०) प्रकृति-चित्रण	५२	(११) रस		५४
(१२) अलंकार				५६
१५—भास की आलोचना				
(क) भास विषयक प्रशस्तियाँ (भास की महनीयता)				६२
(ख) भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव				६६

विषय पृष्ठ

मूलग्रन्थ और अनुवाद

प्रथमोऽङ्कः १
द्वितीयोऽङ्कः ७०
तृतीयोऽङ्कः ८४
चतुर्थोऽङ्कः ९४
पञ्चमोऽङ्कः १४५
षष्ठोऽङ्कः १८४

परिशिष्ट

परिशिष्ट १—(१) नाटक (रूपक के भेद) १
(२) नाटक के प्रमुख तत्त्व १
(३) अर्थ-प्रकृति, अवस्था और संधियाँ ४
(४) रङ्गमञ्च ५
(५) नाटक आदि शब्दों के शास्त्रीय लक्षण ७
१. नाटक; २. अङ्क; ३. गर्भाङ्क; ४. पूर्वरङ्ग; ५. नान्दी; ६. सूत्रधार; ७. नेपथ्य ८. (क) आमुख या प्रस्तावना या स्थापना; (ख) प्रयोगातिशय; ९. कंचुकी या काञ्चुकीय; १०. विदूषक; ११. नायक।
(६) नाटकीय पात्रों के लिए विशिष्ट शब्द।
परिशिष्ट २—अकारादिक्रम से श्लोकानुक्रमणिका १२
परिशिष्ट ३—स्वप्ननाटक में सुभाषित १३
परिशिष्ट ४—नाटक में आये छंदों के लक्षण १६
परिशिष्ट ५—भास की प्राकृत भाषा १७
परिशिष्ट ६—भास के व्याकरण सम्बन्धी अपाणिनीय प्रयोग १८

भूमिका

१—नाटक (रूपक) की रचना

नाट्यशास्त्र की प्राचीनता

यद्यपि नाटक को पञ्चम वेद कहकर वेदों के बाद नाट्यशास्त्र के अस्तित्व और उसकी महती लोकप्रियता का निर्देश किया गया है, किन्तु यदि हम दूर तक सोचें तो पञ्चम वेद की प्रतिष्ठा के पहले भी नाटक लोक-जीवन का प्रमुख अंग था। लोक-जीवन में इसकी सर्वप्रियता देख कर ही नाट्यशास्त्र की छानबीन और आविर्भाव की बात सोची गई। पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार उनके पहले नाट्यशास्त्र के दो आचार्य शिलालिन् और कृशाश्व का उल्लेख मिलता है :—'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। पा० ४, ३, ११०। कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। पा० ४, ३, १११। पश्चात् भरतमुनि ने *'नाट्यशास्त्र' नाम से नाटक-रचनासम्बन्धी विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया।* इस ग्रन्थ में नाटकसम्बन्धी सभी विवरणों और तथ्यों का उल्लेख एवं विवेचन उपात्त है। ऐसा मालूम पड़ता है कि भरतमुनि के पहले भी नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में बहुत कुछ विवेचन हो चुका था। उन सब सामग्री को लेकर भरत ने एक सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थ का निबन्धन किया। नाट्यशास्त्र के श्लोकों से इसका संकेत स्पष्ट होता है। एक श्लोक मे ऋषियो ने भरतमुनि से पूछा है—

योऽयं भगवता सम्यक् ग्रथितो वेदसम्मितः।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य च कृते॥

[हे ब्रह्मन्! जो यह आपने वेद-सम्मत (नवीन) नाट्यवेद (सूत्रों मे) ग्रथित किया है, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई और वह किसके लिए है।]

इसमे स्पष्ट कहा गया है कि भरत ने नाट्य के सिद्धान्तों को सूत्रो मे गूँथा अथवा निबद्ध किया।

यद्यपि हमें सबसे प्राचीन नाटक भास के ही उपलब्ध हुए है, किन्तु नाटकों के अभिनय की चर्चा वाल्मीकीय रामायण और महाभारत में भी मिलती है।

वालमीकीय रामायण में अयोध्या को 'वधूनाटकसंघैश्च संयुक्ताम्' कहा गया है। महाभारत के हरिवंशपर्व में रामायण नाटक और कौवेररम्भाभिसार नाटक के अभिनय का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराणों एवं कौटिल्य-अर्थशास्त्र में भी नाटक और उसके अभिनय का प्रसंग आया है। इन तथ्यों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाट्यशास्त्र बहुत ही प्राचीन है और इसका प्रणयन सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। भारत के बाद यूनान के नाट्यशास्त्र की चर्चा की जा सकती है, जिसका प्रथम उल्लेख अरस्तू ने किया है। उसका समय ३८४-३२२ ई० पू० है।

२—नाट्यकला की उत्पत्ति

यह तो नाट्यशास्त्र के इतिहास की बात हुई। नाटक या अभिनय की कला का जन्म कैसे हुआ, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। इस विषय पर भिन्न-भिन्न देशों मे अपने अलग-अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। यूनानी आचार्यों के मत में नाटक की उत्पत्ति धर्मोत्सवो से हुई है। रोम में एक प्रकार के ग्राम्य खेल को नाटक का आविर्भाव स्वीकृत किया गया है। चीनी लोग नृत्य और गीत के संयोग से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। लोक के मनोरजन और भलाई के लिये नाटक का प्रादुर्भाव हुआ, यह जापानियों का मत है। इनके अतिरिक्त मलाया, जावा और सुमात्रा आदि सभी देश, जहाँ प्राचीन सस्कृति और सभ्यता के प्रतीक पाये जाते हैं, इस विषय में भारतीय मत से प्रभावित हैं।

हमारे यहाँ कुछ लोग पुत्तलिका नृत्य से नाटक की उत्पत्ति मानते हैं। कुछ ऋग्वेद के संवाद, कुछ इन्द्रध्वजोत्सव और कुछ कर्मकाडसूक्त के द्वारा नाट्यकला का सूत्रपात स्वीकार करते हैं। परन्तु महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि त्रेतायुग के प्रारम्भ मे देवों ने मनोरंजन की सामग्री के लिए ब्रह्मा से निवेदन किया। ब्रह्मा ने उनकी प्रार्थना पर नाट्य नामक पञ्चम वेद की सृष्टि की। इस नाट्य वेद की रचना चारो वेदों से भिन्न-भिन्न तत्त्वों को लेकर हुई। उनमें ऋग्वेद से सवाद, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लिया गया। सबसे अधिक सहायता ऋग्वेद से ली गई। क्योंकि उसमें निबद्ध वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियो के

आख्यान, पुरूरवा, उर्वशी आदि के प्रश्न कहे गये कथोपकथन तथा इन्द्र, मरुत्, सूर्य, उषस् आदि देवों की प्रार्थना में गाये गये गीत नाट्यकला के मूल तत्त्व स्वीकृत हुए। कथोपकथन अथवा संवाद नाटक का सबसे आवश्यक अंग है। वह केवल ऋग्वेद में ही नहीं, उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रंथों में भी बड़े सुन्दर रूप में पाया जाता है। भरतमुनि के उल्लेख का यह भी तात्पर्य है कि संवाद, संगीत, अभिनय और रस-निर्वाह—ये चारों नाटक के मूल तत्त्व हैं। नाट्यशास्त्र के वे श्लोक इस प्रकार हैं—

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् ॥
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना ।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मकम् ।

[इस प्रकार संकल्प करके भगवान् ब्रह्मा ने सभी वेदों का स्मरण करते हुए चारों वेदों के अंगों से आविर्भूत होने वाले नाट्यवेद की रचना की। उन्होंने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से शृंगार आदि रसों को लिया। फिर सुन्दरताओं से भरा हुआ, वेदों और उपवेदों से सम्बद्ध यह नाट्यवेद उनके द्वारा रचा गया।]

इस प्रकार सभी सिद्धान्तों का अनुशीलन कर लेने के बाद हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि शैशवावस्था में सामाजिक मनोरंजन नाटक की उत्पत्ति का मूल हेतु था और उस समय उसका रूप ग्राम्य नाटक का रहा होगा। उस लोक-नाट्य को परिष्कृत करने के बाद मनोरंजन के माध्यम से लोक की भलाई और दुश्चिन्ताओं के निवारण के उद्देश्य से उसे समन्वित करके नाटक का शास्त्रीय रूप खड़ा किया गया। प्रारंभ में केवल अभिनय अथवा संगीत लोक-नाट्य के मुख्य तत्त्व रहे होंगे। संगीत, कथा, अभिनय—इन तीनों के संयोग से नाटक का परिष्कृत रूप सामने आया, जिसने लोक के प्रेय और श्रेय दोनों को सम्पन्न किया।

३—नाटक (रूपक) की परिभाषा

नाट्यकला के आविर्भाव की यह कहानी अपने मूल में अनेक प्रकार से सम्पादित की जा सकती है। लेकिन बहुत बाद में आचार्यों ने इसे काव्य का एक भेद स्वीकृत किया और नाटक लिखने वाले को नाटककार न कहकर संस्कृत साहित्य में कवि ही कहा गया। इस नाटक का नाम दृश्यकाव्य है और काव्य की भाँति रस यहाँ भी आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। इतिहास काव्य की तरह नाटक का भी उपजीव्य होता है। भरतमुनि ने कहा है—

नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।

[इतिहास के साथ मिला यह नाट्यसंज्ञक वेद मैं बताता हूँ।]

फिर नाटक की परिभाषा देते हुए वे कहते हैं—

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।

[अर्थात् किसी भी अवस्था का अनुकरण नाटक कहलाता है।]

आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में काव्य के दो भेदों को बताते हुए दृश्यकाव्य (नाटक) की यही परिभाषा दी है—

दृश्यं तत्राभिनेयं, तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।

[दृश्यकाव्य (नाटक) अभिनय के लिए होता है। उसमें नट लोग राम आदि का रूप धारण करके उनके चरित का अभिनय प्रदर्शित करते हैं। उस समय हम उनको राम आदि के रूप में ही मानते हैं। इस रूप आरोप के कारण इस काव्य-रचना को रूपक कहा जाता है।]

लोक-जीवन से पूर्ण इस विस्तृत विश्व के किसी भाग या अंग में जो कुछ हुआ है या संभव हो सकता है, उन घटनाओं का अभिनय या अनुकरण नाट्य कहलाता है। इस प्रकार सत्य और कल्पना दोनों नाट्य के आधार हैं—

प्रसिद्धकल्पितवृत्तानुकरणं नाट्यम्। (अभिनव नाट्यशास्त्र)

[सत्य और काल्पनिक जगत् की अनुकृति नाट्य है।]

दूसरे प्रकार से हमें यह कहना चाहिए कि यह दृश्यकाव्य श्रव्यकाव्य से भी अधिक सफल हुआ। इसे पढ़कर और इसका अभिनय देखकर भी आनन्द लिया जा

सकता है। यह अभिनेय काव्य जगत् की विभिन्न मानव-प्रकृतियों एवं ज्ञान-विज्ञान, कला आदि को मनोरंजक रूप में उपस्थित करके सभी को प्रभावित करता है। इसलिए भरतमुनि ने कहा है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥

(नाट्यशास्त्र १—११३)

साहित्यदर्पणकार ने अभिनय के चार प्रकार बताये हैं—

भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।
आंगिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा॥

[अवस्था का अनुकरण ही अभिनय है और वह चार प्रकार से होता है—*आंगिक (अंगो से), वाचिक (वाणी द्वारा), आहार्य (वेश-भूषा की बनावट से) और सात्त्विक (रस, भाव के प्रदर्शन से)।*]

४—नाटक और अभिनय

इस अभिनय का नाटक में बहुत बड़ा महत्त्व है। या यों कहना चाहिए कि नाटक अभिनय की ही वस्तु है। काव्य, उपन्यास आदि में केवल पढ़े-लिखे लोग ही आनन्द ले सकते हैं, परन्तु नाटक का अभिनय होने से पढ़े-अनपढ़े सभी समान आनन्द और लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए नाटक से जन-रुचि का जितना परिष्कार सम्भव है, उतना काव्य आदि के द्वारा नहीं। अतः अभिनय से ही नाटक को सजीव कहा जाता है। रंग-शाला में कुशल अभिनेता अपने नृत्य, गीत अथवा कथोपकथन के माध्यम से शारीरिक चेष्टाओं और स्वरों का नितान्त स्वाभाविक प्रयोग करके दर्शकों को आत्म-विभोर कर देता है। उसके अभिनय को ध्यान में रखकर रस, संवाद अथवा गीति के माध्यम से कथावस्तु का सफल विन्यास करना नाटककार का कौशल है।

नाटक के अभिनय में सार्वजनिक मनोरंजन की यह उपस्थिति देखकर ही महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' में कहा है।

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।

[मुनियों ने कहा है कि नाटक तो देवताओं की आँखों को शान्ति प्रदान करने वाला सुहावना यज्ञ है। भगवान् शंकर ने भी पार्वती के साथ विवाह करके नाटक को अपने शरीर में ताण्डव और लास्य दो भागों में बाँट लिया है। नाटक में सत्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त एवम् अनेक रसों से परिपूर्ण लोक-जीवन के चरित्र दिखाई पड़ते हैं। इसलिए अलग-अलग रुचि रखने वाले लोगों के लिए नाटक ही एक ऐसा उत्सव है, जिसमें सभी एक समान आनन्द पा सकते हैं।]

५—सुखान्त और दुःखान्त नाटक

आँखों का सुहावना यज्ञ होने के कारण ही भारतीय नाटकों की परम्परा सुखान्त होने की है तथा हत्या, मारकाट आदि का प्रदर्शन रंगमंच पर नहीं किया जाता। इसके विपरीत पाश्चात्य नाटककार दु:खान्त नाटक लिखने में ही अपनी नाट्यकला का उत्कर्ष मानते हैं। प्रायः वे यथार्थवादी विचार को लेकर चलने वाले कवि हैं, जिनकी दृष्टि में मनुष्य का जीवन दुःखमय ही दिखाई देता है। अतः वे सत्य की रक्षा करने के लिए दुःखमय जीवन का वास्तविक रूप उपस्थित करते हैं। किन्तु ऐसा उद्देश्य रखने पर नाटक में जन-मन-रंजन की कल्पना हमें नहीं करनी चाहिए। हो सकता है कि समाज में कुछ लोगों का मनोविनोद हत्या, मारपीट, युद्ध और कलह से ही होता हो, लेकिन यह सिद्धान्त सार्वजनिक या सार्वत्रिक नहीं हो सकता। दुःखान्त नाटकों में जब प्रधान नायक की हत्या एवं न्याय पर चलने वाले लोगों को मारने-पीटने का दृश्य दिखाया जाता है तब दर्शकों की आस्था सत्य और न्याय से डिगने लगती है। कहते हैं कि एक बार ऐसे ही एक दुःखान्त नाटक के अभिनय में एक करुणाजनक दृश्य देखकर एक महिला जोर-जोर से रोने लगी और नाटक का अभिनय विरस हो गया। एक बार एक नाटक में प्रतिनायक एक बालक को बेंत से पीटने का अभिनय कर रहा था और बालक भी बड़ी कुशलता के साथ चोट से पीड़ित होकर चिल्ला रहा था। यह करुणाजनक दृश्य देख कर एक दर्शक अपने को न सँभाल सका और उसने जूता खींच कर प्रतिनायक को मार दिया।

नाटकों के अभिनय द्वारा हमारे यहाँ जन-रुचि के परिष्कार और उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ मनोरंजन का विधान किया जाता है और हमारी साहित्य-परम्परा में सुखान्त नाटक लिखने की ही प्रणाली है। भरत मुनि ने कहा है—

सुश्लिष्टं सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखाश्रयम् ।
मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ॥

[कवि को ऐसा नाटक लिखना चाहिए जिसकी सब संधियों का जोड़ ठीक हो, जिसके अभिनय करने में सुगमता हो, जिसका विषय सुखात्मक हो और जिसमें कोमल शब्दों का प्रयोग किया गया हो।]

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त आचार्य नन्दिकेश्वर का अभिनय-दर्पण, धनञ्जय का दशरूपक, शारदातनय का भावप्रकाश और विश्वनाथ का साहित्यदर्पण नाट्यशास्त्र के अन्य ग्रन्थ हैं, जिनमें नाटक के सम्बन्ध में विस्तृत सामग्री और सिद्धान्तों की परिभाषा के साथ अपने समय के हुए नाटककारों की रचनाओं के उदाहरण स्पष्टीकरण के लिए दिये गये हैं।

६—भास का स्थितिकाल

भास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में बहुत विषमता है। कुछ उन्हें ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दी में मानते हैं तो कुछ उनका अस्तित्व ईसा की दसवीं सदी में स्वीकार करते हैं। दशमी शताब्दी में भास का होना नितान्त असंगत प्रतीत होता है क्योंकि डा० बार्नेट, कालिदास, तथा बाणभट्ट द्वारा उल्लिखित भासनाटकचक्र को किसी केरलीय कवि की कृति मानते है जो सातवीं शती में हुआ। भरत-वाक्य में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' के आधार पर उन्होंने राजसिंह को सातवीं शती में हुए केरल देश का राजा माना है। उसी समय (सातवीं शती में) लिखे गये महेन्द्रवीर विक्रम के 'मत्तविलास' प्रहसन से इन नाटकों की भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों का साम्य दिखलाया गया है किन्तु इसके आधार पर इनका समय भास का समय नहीं कहा जा सकता। भामह द्वारा प्रशंसित होने से भास की प्राचीनता सिद्ध होती है। साथ ही राजसिंह को व्यक्तिविशेष मानने ... कोई दृढ़तर प्रमाण भी नहीं हैं।

भास के समय-निर्धारण के लिए निम्नलिखित विवेचना आवश्यक है :—

१—नाट्यशास्त्र प्रणेता भरत।

२—कामसूत्रकार वात्स्यायन।

३—पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि।

४—अर्थशास्त्र रचयिता कौटिल्य।

५—मनु।

६—रामायण, महाभारत तथा लोक-कथायें।

७—अशोक के शिला लेख।

८—अश्वघोष एवं कालिदास।

९—ऐतिहासिकों तथा आलोचकों के मत का विवेचन।

१—भास की कृतियों में भरत विरोधी नियमों के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। जैसे भास ने भरत मुनि द्वारा प्रतिपादित नान्दी पाठ के अनन्तर काव्य के नाम निर्देश का वर्णन अपनी रचनाओं में नहीं किया है। भास ने युद्ध, वध, आक्रमण तथा मंच पर रुदन आदि का प्रयोग स्वच्छंदतापूर्वक किया है जिसका भरत ने नाट्यशास्त्र में निषेध किया है। बालचरित नाटक में अरिष्टर्षभ मुष्टिक का वध, ऊरुभग मे दुर्योधन-भीम-युद्ध, अभिषेक में राम-रावण-युद्ध तथा बालि की मृत्यु का वर्णन किया गया है। ये उदाहरण भास के भरत-नाट्यशास्त्र से अपरिचित होने के प्रमाण में प्रस्तुत किये गये हैं। अतः भास भरत के पश्चाद्वर्ती नहीं हो सकते जिनका समय विद्वानों ने ईसा की तृतीय शताब्दी तथा ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी निर्धारित किया है।

२—वात्स्यायन का ज्ञान भास को नहीं है क्योंकि प्रतिमा नाटक में जब रावण राम के समक्ष अपने अध्ययन की चर्चा करते हुए अन्य शास्त्रों की गणना करता है तब वात्स्यायन के कामसूत्र का उल्लेख नहीं करता। कामसूत्र पर अन्य आचार्यों का प्रभाव लक्षित होता है जिनसे भास परिचित रहे होंगे क्योंकि वात्स्यायन द्वारा भास की रचनाओं की प्रसिद्धि स्वीकार की गई है। प्रथम समय कन्या को आकृष्ट करने में वात्स्यान ने अविमारक कथा का आश्रय लिया है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि भास वात्स्यायन के पूर्व हुए हैं। वात्स्यायन का समय दूसरी शती का अन्त माना जाता है, अतः भास इससे पहले हुए होंगे।

३—कुछ विद्वान् पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि को भास से पूर्व का मानते हैं। भास की रचनाओं में व्याकरण सम्बन्धी प्रयोगों में पाणिनि से यत्र तत्र वैषम्य है। सम्भव है भास ने नाटकों में लौकिक व्यावहारिकता की दृष्टि से इन नियमों का अक्षरशः पालन न किया हो अथवा ऐन्द्रादि अन्य व्याकरण का उन पर प्रभाव पड़ा हो। अपाणिनीय प्रयोगों के आधार पर भास को उनसे पूर्ववर्ती नहीं कहा जा सकता। भास के प्रयोग पाणिनि के विरुद्ध होते हुए भी पतञ्जलि के अनुकूल हैं। कहीं-कहीं पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि द्वारा प्रयुक्त तीनों रूपों के दर्शन भास के नाटकों में होते हैं। पाणिनि का समय ई० पू० चौथी शताब्दी, कात्यायन का ई० पू० तीसरी शताब्दी तथा पतञ्जलि का दूसरी शताब्दी ई० पू० माना जाता है। अतः भास को इनके पश्चात् होना चाहिए।

४—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अधिकरण १० अध्याय तीन का 'नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णम्' श्लोक भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायण के चतुर्थ अंक में मिलता है। भास की दृष्टि में ब्राह्मण अवध्य तथा दोषयुक्त होते हुए भी प्रतिष्ठित तथा आदरणीय है किन्तु कौटिल्य ने ब्राह्मण का स्थान उतना ऊँचा नहीं माना है। कौटिल्य ने (चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में) जाति-प्रथा का प्राबल्य दर्शाया है पर भास ने चरित्र पर विशेष बल दिया है। कौटिल्य का समय ३०० ई० पू० माना जाता है। भास कौटिल्य के समकालीन थे।

५—भास के नाटकों में मनुस्मृति के नियमों के समर्थन में पंक्तियाँ पाई जाती हैं। जैसे मृगया, द्यूत, दक्षिणाहीन यज्ञ आदि की निन्दा दोनों में दृष्टि-गोचर होती है। अतः भास का समय मनु से पूर्व निश्चित होता है क्योंकि अनुमानतः मनुस्मृति के पूर्व मानव धर्मशास्त्र सम्बन्धी किसी रचना से ही भास प्रभावित हुये होंगे।

६—भास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे रामायण, महाभारत तथा जातक कथाओं से भलीभाँति परिचित थे। पञ्चरात्र में पाण्डवों को आधा राज्य दिलवाकर भास ने महाभारत की कथा से भिन्नता प्रदर्शित की है। रामायण में भरत लक्ष्मण के अग्रज हैं पर भास ने लक्ष्मण को बड़ा भाई दर्शाया है

जातक कथाओं में यक्षिणी[1] का वर्णन मिलता है जिसका वर्णन भास ने भी अपने 'स्वप्नवासवदत्तम्' में किया है। जातक कथाओं के अनुसार ब्रह्मदत्त काम्पिल्य[2] नगर का राजा था। भास ने भी ऐसा ही वर्णन किया है।

७—अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि प्रद्योत का राजदूत अपने स्वामी के जामाता उदयन को आर्यपुत्र से सबोधित करता है। स्वप्नवासवदत्तम् के छठे अंक मे महासेन का कञ्चुकी उदयन को आर्यपुत्र कहता है। भास के प्रायः सभी नाटकों में 'महीमेकातपत्राम्' की कामना की गई है। यह विचारधारा चन्द्रगुप्त मौर्य अर्थात् ३२७ ई० पू० से लेकर कुशानवंश दूसरी शती ई० पू० तक प्रचलित थी। संभवतः भास तत्कालीन भावनाओं से प्रभावित हों।

८—महाकवि कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास की प्रसिद्धि स्वीकार की है। उसी प्रकार बौद्ध कवि अश्वघोष के ग्रन्थों पर भास की स्पष्ट छाया लक्षित होती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण के प्रथम अंक के श्लोक का भाव अश्वघोष के बुद्धचरित में मिलता है पर अश्वघोष की अपेक्षा भास के भावों में अधिक प्रभावोत्पादकता है। अतः भास कालिदास और अश्वघोष दोनों से पूर्ववर्ती हैं।

९—डा० विटरनिज का कथन है कि भास की भाषा तथा शैली अश्वघोष की अपेक्षा कालिदास के अधिक समीप है। उन्होने अश्वघोष की तिथि ईसा की दूसरी शती मानी है। वे भास की रचना को तीसरी शताब्दी का मानते हैं। डा० कीथ भी भास की यही स्थितिकाल स्वीकार करते हैं। स्टेन कोनो के अनुसार भास ईसा की दूसरी शती मे हुए। प्रो० बलदेव उपाध्याय ने भास के समय-निर्धारण के विषय मे विद्वानों के विचारों को विवादास्पद कहा है। डा० एस० एन० दास गुप्त ने कालिदास के पूर्व की रचना का ही अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में समर्थन किया है। उन्होंने भास के समय पर अपना कोई स्वतंत्र मत नहीं दिया है। उन्होने अन्य विद्वानों के मत का उल्लेख किया है। पृष्ठ ७१२ पर वे लिखते हैं—

१—अवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति, सा त्वया दृष्टा भवेत्
(स्वप्न० अंक ५)

२—राजा ब्रह्मदत्तः काम्पिल्यं नाम नगरम्। (स्वप्न० अंक ५)

The earliest mention of Bhasa is made by Kalidasa in [illegible] with Saumilla and Kaviputra. We know [illegible] Ganapati [illegible] he dramas [illegible] dorsed by most European scholars excepting Dr. Barnett. Dr. Cottazteing seems to be unable to pronounce any judgment while Dr. Barnett, Pisharoti and Ramavatara Pandeye and some other scholars hold that these dramas cannot be of Kalidasa pre Bhasa, but that they were probably written sometime in the 7th. Century A. D."

सुकथानकर, डा० लेस्नी तथा प्रिन्ट्ज जैसे मनीषियों द्वारा प्राकृत भाषा की विवेचनोपरान्त भास की प्राकृत को कालिदास से प्राचीन तथा अश्वघोष से अर्वाचीन सिद्ध किया गया है। भास के नाटकों की भाषा कालिदास से पूर्व की ठहरती है पर अश्वघोष की भाषा इससे भी पहले की है। ये विद्वान् ईसा की पाँचवी शती में कालिदास का कालनिर्णय करते हैं। इसके सहारे उनके द्वारा भास का काल ईसा की तीसरी शताब्दी निर्धारित किया जाता है। पर भाषा के आधार पर तिथि संबंधी कोई निर्णय लेना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। डा० ए० पी० बनर्जी ने "भास का समय तथा मागधी" शीर्षक अपने लेख में पर्याप्त विवेचनानन्तर भास का समय ईसा की दूसरी शती निश्चित किया है। महा-महोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री के अनुसार भास ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हुए। प्रो० ए० एस० पी अय्यर भास को निश्चित रूप से "मौर्यकालीन मानते हैं" जो उचित प्रतीत होता है।

अंतरंग परीक्षण के आधार पर काल निर्णय

१—भास के नाटकों का आधार रामायण, महाभारत तथा लोक-कथाएँ हैं। उदयन, प्रद्योत तथा दर्शक ई० पू० छठी शताब्दी के ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। रामायण तथा महाभारत का भी यही समय है। अतः भास के समय की उपरितन सीमा ई० पू० छठी शताब्दी है।

२—प्रतिज्ञायौगन्धरायण अविमारक तथा स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों में हम ऐतिहासिक तथ्य पाते हैं। प्रथम दो नाटकों में दो राजाओं की स्मृति

का नवीन होना लेखक के अस्तित्व को उस काल के समीप ही सूचित करता है। राजगृह का राजधानी के रूप में तथा पाटलिपुत्र का एक साधारण नगर के रूप मे वर्णन करना इस बात का द्योतक है कि भास ईसा की पाँचवी शती में थे।

३—प्रतिमानाटक में वर्णित विद्याओं का समय ई० पू० छठी शताब्दी से भी पूर्व का है। मानवीय धर्मशास्त्र (वर्तमान मनुस्मृति का मूलरूप) गौतम धर्मसूत्र में निर्दिष्ट होने के कारण ईसा पूर्व छठी शताब्दी से भी प्राचीनतर है। गौतम धर्मसूत्र सबसे प्राचीन धर्मसूत्र है जिसका समय ई० पू० छठी शती है। बार्हस्पत्य धर्मशास्त्र का महाभारत में उल्लेख है और कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे उसका उद्धरण अनेक स्थलों पर किया है। मेधातिथि का न्यायशास्त्र मेधातिथि द्वारा की गई मनुस्मृति पर टीका नहीं है अपितु गौतमरचित प्राचीन न्याय-ग्रन्थ है। माहेश्वर योगशास्त्र भी पातञ्जल योग से पहले का है। इन सभी उल्लेखों से भास की प्राचीनता सिद्ध होती है।

४—भास के नाटकों में वर्णित सामाजिक दशायें अर्थशास्त्र तथा जातक कथाओं से सम्बद्ध प्रतीत होती हैं। प्रतिमा नाटक मे निर्दिष्ट मन्दिरों के परिवेश में बालू डालने की प्रथा आपस्तम्ब सूत्रों में ही मिलती है। प्रतिमा नाटक में उल्लिखित मृत व्यक्तियों की प्रस्तर मूर्तियों की स्थापना शिशुनाग वंशी राजाओं के युग का स्मरण दिलाती हैं।

५—भरतवाक्यों में निर्दिष्ट 'राजसिंह' किसी निश्चित राजा का बोधक नहीं है। हिमालय से विन्ध्य तक शासन करने वाले राजा का संकेत संभवतः नन्द वंश से है? इनके अतिरिक्त भास की [भाषा भी प्राचीन ही प्रतीत होती है। इन उपर्युक्त तर्कों के आधार पर प्रो० बलदेव उपाध्याय ने भास का समय चौथी तथा पाँचवी शताब्दी ई० पू० स्थित किया है।

वहिरंग परीक्षण के आधार पर काल-निर्णय

वहिरंग परीक्षण भी चौथी पाँचवी शती ई० पू० के भीतर ही भास का काल निर्धारण करता है।

१—मालविकाग्निमित्र नाटक में कालिदास द्वारा सूत्रधार के मुख से भास आदि की रचनाओं का इस प्रकार कथन किया गया है :—

'प्रथितयशसां भासमौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।

ई० पू० प्रथम शताब्दी में होने वाले कालिदास के इस उल्लेख से भास का समय उनसे पूर्व ही निश्चित होता है ।

२—बाण[1] ने (सातवीं शताब्दी में) भासकृत नाटकों का, वामन[2] ने (आठवीं शती में) अपने ग्रन्थ काव्यालंकारसूत्र वृत्ति में एक श्लोक का जो भास के नाटक में आया है उल्लेख किया है । वामन ने चारुदत्त (१/२) तथा प्रतिज्ञा (४/२) श्लोकों को अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में केवल 'चन्द्रांश' के स्थान पर 'शशांक' और कृत के स्थान पर 'मम' पाठ है । शूद्रक का मृच्छकटिक भास के चारुदत्त के आधार पर है। अन्तर होते हुए भी दोनों में बहुत समानता है ।

३—कौटिल्य के अर्थशास्त्र (१०/३) में दो श्लोक उद्धृत हैं । इनमें तीसरा श्लोक प्रतिज्ञायौगन्धरायण के चौथे अंक का दूसरा श्लोक इस प्रकार है :—

नवं शरावं सलिलैःसुपूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।

कौटिल्य द्वारा यह अवश्य ही भास से लिया गया होगा ।

४—केवल प्रतिमानाटक में (जो भासरचित है) दशरथ की प्रतिमा के उल्लेख से ज्ञात होता है कि बौद्ध आचार्य दिङ्नाग इस नाटक से परिचित थे क्योंकि उन्होंने अपनी कृति कुन्दमाला में दशरथ को पडिमागदो महाराओ (प्रतिमागतो महाराजः) लिखा है ।

१—सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।। हर्षचरित १.१५

२—शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनी ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ।। स्वप्न० वा० ४३

५—अश्वघोषविरचित बुद्धचरित महाकाव्य के त्रयोदशसर्ग का निम्नलिखित साठवाँ श्लोक भास के प्रतिज्ञा नाटक के प्रथम अंक के अठारहवें श्लोक से कितना मिलता-जुलता है ? -इनमे शब्द तथा अर्थ दोनों में पर्याप्त साम्य है:-

काष्ठं हि मथ्नन् लभते हुताशं
भूमिं खनन् विन्दति चापि तोयम्
निर्बन्धिनः किञ्चन नाप्यसाध्यं
न्यायेन युक्तं च कृतं च सर्वम् ॥ बुद्धचरित १३/६०

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥ प्रतिज्ञा १.१८

इससे भास का प्रभाव अश्वघोष पर स्पष्ट लक्षित होता है।

इन बाह्य साक्ष्यों के आधार पर भास का स्थितिकाल ई० पू० चौथी शती तथा पाँचवीं शती के मध्य ठहरता है।

ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर यह सर्वमान्य है कि भास गौतम बुद्ध के परचात् हुए। बुद्ध का निर्वाण ४८३ ई० पू० में हुआ था। उस समय भारत में अवन्ति, मगध, वत्स तथा कौशल ये चार बडे राज्य रह गये थे। उनके जन्म से पूर्व सोलह जनपद थे। शेष सभी आपस में लड़-झगडकर अन्त में इन्ही चार राज्यों में विलीन हो गये थे। डा० जगदीश दत्त[1] दीक्षित पुरु के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारंभिक काल ही भास का कार्यकाल मानते हैं। वे कहते हैं—

"भास के ग्रन्थों में वर्णित सीमा के आधार पर हम पुरु के युद्ध के समय के भारत के मानचित्र को प्रस्तुत करते हैं तथा पूर्णतया दृष्टिपात करने से हिमालय तथा विन्ध्याचल सीमावर्ती क्षेत्र को ही भारत का राज्य अनुमानित करते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि उस समय भारत की सीमा भास की वर्णित सीमाओं के समान है। सिकन्दर के आक्रमण के समय के भारत

१—भास की भाषा संबंधी तथा नाटकीय विशेषताएँ पृष्ठ २७

का मानचित्र जो ऐतिहासिकों द्वारा सम्मानित रूप में प्रयुक्त किया गया है, उसी को यहाँ उद्धृत किया जाता है।…चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार तथा अशोक के वंशज अपने लिए राजसिंह का प्रयोग करते थे। अशोक ने भी सिंहत्रयमुखी राजकीय मुद्रांकित स्तम्भों का निर्माण किया है।…भास ने अपनी रचनाओं में नाटक के नायक की उपमा 'चन्द्र' से दी है।…'रणशिरसि' समरशिरसि' के इतने अधिक स्थलों पर प्रयोग से सिकन्दर का आक्रमण तथा पुरु के उत्तर से प्रतिज्ञा में यौगन्धरायण का उत्तर 'वधः' इस ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर इसी काल का प्रमाणित होता है। भास को हम इसी समय का मानने के लिये बाध्य हैं अतः भास का समय मेरी दृष्टि में ३२७ ई० पू० के समीप ही निश्चित किया जा सकता है।"

निष्कर्ष—इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत तर्कों की समीक्षा करते हुए 'भास का स्थितिकाल' ई० पू० तीसरी तथा चौथी शताब्दी के मध्य ही निर्धारित करना सर्वाधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

७—भास का जीवनवृत्त

कालिदास तथा भारवि की भाँति भास ने भी अपने संबंध में कुछ प्रकाश नहीं डाला। उनके सभी नाटक उनके जीवन की घटनाओं के विषय में मौन हैं। अतः उनकी जीवनी के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी किंवदन्तियों और उनकी रचनाओं के आधार पर ही हम कुछ थोड़ा-बहुत कह सकते हैं।

एक किंदन्ती के अनुसार वे जाति के धावक (धोबी) थे। काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य ने उन्हें महाराज श्रीहर्ष का समकालीन माना है। किन्तु यह किंवदन्ती सत्य से परे प्रतीत होती है क्योंकि श्रीहर्ष कालिदास के बहुत बाद में हुए और भास बहुत पहले।

एक दूसरी दन्तकथा यह है कि वे धोबी थे उनका नाम घटखर्पर कवि था किन्तु घटखर्पर महाराज विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे जिससे वे कालिदास के समकालीन प्रतीत होते हैं जैसा कि निम्नलिखित श्लोक में व्यक्त किया गया है:—

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

अर्थात् महाराज विक्रमादित्य की सभा में ये नवरत्न थे—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि। इनका भिन्न-भिन्न समय निश्चित हो चुका है। पर महाराज विक्रम की सभा का गौरव बढाने के लिए संभवतः सबको एकत्र कर दिया गया है। यह दन्तकथा भी असत्य प्रतीत होती है।

तीसरी किंवदन्ती इस प्रकार है कि एक बार व्यास और भास दोनों मे महत्त्व के लिए विवाद हुआ। निर्णयार्थ उन दोनो के ग्रन्थ अग्नि में डाल दिये गये। भास के ग्रन्थ आग में नहीं जले अतःभास ही विजयी घोषित हुए। यह दन्तकथा इतना अवश्य संकेत करती है कि भास कालिदास की अपेक्षा अधिक प्राचीन थे क्योंकि उनका संघर्ष कालिदास से हुआ न बताकर व्यास से बतलाया गया है।

चौथी दन्तकथा के अनुसार भास का नाटकचक्र जब आग मे डाला गया तो आग ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक को नही जलाया। इस दन्तकथा से यह सिद्ध होता है कि भास ने अनेक नाटको की रचना की थी जिनमें 'स्वप्नवासवदत्तम्' ही सर्वश्रेष्ठ था।

भास के नाटकों के अध्ययन से पता चलता है कि वे ब्राह्मण थे। इसी मत की पुष्टि डा० पुसल्कर, श्री ए० एस० पी० अय्यर तथा श्री एस० एन० दासगुप्त करते हैं। श्री दासगुप्त अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के पृ०७०८ पर लिखते हैं :—

Bhasa was probably a Brahmin and a devotee of vishnu"
आचार्य बलदेव[१] उपाध्याय भी उनके ब्राह्मण होने का समर्थन करते हैं :—

"ब्राह्मणीय धर्म तथा समाज-व्यवस्था के प्रति उनका महान् आग्रह, अकुलीनो का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य उन्हें ब्राह्मण सिद्ध करते हैं। परम्परा से भी विद्या-क्षेत्र ब्राह्मणो के आधिपत्य में ही मुख्यतः था, अतः

१. महाकवि भासः एक अध्ययन—आचार्य बलदेव उपाध्याय।

यही सही प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे। वे दक्षिण भारत के नहीं अपितु उत्तर भारत के निवासी प्रतीत होते हैं। भास के नाटकों में अनेक देशों का उल्लेख है, जिसमें अवन्ती, वत्स, काशी, शूरसेन, कुरु, मत्स्य, कोशल, विराट, गान्धर्व, काम्बोज, मद्र, मिथिला, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लंका प्रमुख हैं। उनकी कृतियों में उत्तरी भारत के नगर, नदी, पर्वत तथा रीतिरिवाजों का अत्यन्त व्यापक वर्णन पाया जाता है। पर्वतों मे हिमालय, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, त्रिकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलास आदि का उल्लेख है। उनकी चित्तवृत्ति अयोध्या, मथुरा तथा उज्जैन में विशेष रूप से रमी है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' एवं 'बालचरितम्' में उनका भरतवाक्य---

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥

द्योतित करता है कि हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य में ही उनका निवास स्थान होना चाहिए। भास का दक्षिण भारत का ज्ञान उत्तर भारत की अपेक्षा बहुत ही सीमित था। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिणी भारत विषयक उनका ज्ञान केवल रामायण तथा महाभारत तक ही सीमित था। क्योंकि रामकथा-वर्णन करने के प्रसंग में रामेश्वरम् जैसे प्रमुख तीर्थ का उन्होंने उल्लेख नहीं किया जिससे इस अनुमान की और भी पुष्टि होती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि भास वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्षपाती थे। वे किसी राजा के राजपण्डित थे जिसके लिए उन्होंने 'राजसिंह' शब्द का प्रयोग किया है, पर यह किसी व्यक्तिविशेष के लिए प्रयुक्त प्रतीत नहीं होता, न इस संबंध में उनका कोई स्पष्ट लेख ही है। उनके ग्रन्थों से भास का राजकुलों से गहरा संबंध दृष्टिगोचर होता है। राजप्रासादों, अन्तःपुरों आदि का विशद वर्णन किसी राजसभा से इनका संबंध सूचित करता है। अमात्यों, सेना, द्वन्द्व आदि का वर्णन इनके नाटकों में सर्वत्र पाया जाता है। चारुदत्त नाटक में एक समृद्ध नागरिक के विलासितापूर्ण जीवन का चित्र खींचा गया है। यह नागरिक जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है जिससे प्रतीत होता है कि धनी-मानी नागर जनों से भी इनका सम्पर्क रहा होगा।

जैसा पहले कहा चुका है कि भास वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था के पूर्ण समर्थक थे। बौद्धों के प्रबल प्रहार के बाद भी ब्राह्मणों का अत्यधिक सम्मान था। वे विद्वान्, धार्मिक तथा सत्यवादी माने जाते थे। ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों का स्थान था। वे युद्धविद्या में निष्णात होते थे। युद्ध से पराङमुख होना वे पाप समझते थे। वैश्य व्यापार में सलग्न होते थे। शूद्रों का कर्म सेवा था तथा छोटे पैमाने पर कृषि भी करते थे। उनके समय मे चारों आश्रमों की व्यवस्था स्थिर प्रतीत होती है। ब्रह्मचर्य जीवन संयमित तथा कठोर होता था। सन्यासियों में तपस्वी तथा परिव्राजक दो वर्ग थे। स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी तपस्विनी होकर वनों मे रहती थीं। इसका उदाहरण मगधराजमाता हैं।

भास स्वभाव से नम्र, विनोदप्रिय, तथा प्रत्युत्पन्नमति थे। वे संलापकला में कुशल थे। मनुष्यस्वभाव तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी और पारखी थे। उनका कौटुम्बिक जीवन भी संभवतः सुखमय था। अपने मातापिता के प्रति वे अपना कर्त्तव्य पालन करते थे। उनकी पत्नी परम साध्वी एवं पतिपरायण थी। अपनी सन्तान के प्रति उनका अगाध स्नेह था। अपने से बड़ों का वे सम्मान करते थे तथा संयुक्त परिवार-प्रथा के प्रबल समर्थक थे। उनके नाटकों से उनकी आशावादिता तथा राष्ट्रीय भावना व्यक्त होती है। वे न्याय तथा स्वतत्रता के पुजारी थे। उनके नाटकों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वे अनेक शास्त्रों मे निष्णात थे। साहित्यशास्त्र मे उनका पाण्डित्य अगाध था। उन्होने वेद, इतिहास-पुराण, लोककथाएँ, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्रादि अनेक शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

भास वैष्णवधर्मावलंबी थे। राम तथा कृष्ण के चरितो में उनकी भक्ति इस बात की परिचायक है। देवताओं में उनकी आस्था थी। वैदिक कर्मकाण्ड मे उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे गो-ब्राह्मणों के बडे भक्त थे और उन्हें सदैव आदर की दृष्टि से देखते थे।

८—भास के नाटक

महाकवि भास के आज तक प्राप्त नाटकों की संख्या कुल तेरह है। ये नाटक त्रावणकोर राज्य में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का अन्वेषण करते

हुए स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री गणपति शास्त्री को १६०६ ई० में प्राप्त हुए थे।

इन नाटकों के विषय विविध स्थानों से लिए गये हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि उस समय महाभारत के पठन-पाठन का अत्यधिक प्रचार था। महाभारत की घटनाओं से लोग बहुत परिचित थे। भास ने जन-जीवन में प्रसृत घटनाओं को ही अपने नाटक का विषय बनाया है और इनमें से सात नाटक महाभारत की घटनाओं से ही सम्बन्धित हैं। अतिरिक्त दो नाटक सम्राट् उदयन से सम्बन्ध रखते हैं, दो रामायण की कथा से और दो कल्पनामूलक हैं।

नाटक का कथानक चाहे महाभारत या रामायण पर आश्रित हो, चाहे कोरी दन्तकथा या ऐतिहासिक किंवदन्ती पर आश्रित हो, सर्वत्र भास की मौलिकता तथा अनूठी कल्पनाशक्ति का पूर्ण सञ्चार है। उनकी नाट्यकला की कुशलता से उनकी मौलिक प्रतिभा का प्रमाण मिलता है। भास के नाटक आधार-क्रम के अनुसार इस प्रकार हैं :—

१. दूतवाक्य—यह एक एकांकी 'व्यायोग' है। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है। इसमें पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर भगवान् श्रीकृष्ण कौरवपक्ष के शिविर में जाते हैं और वहाँ से विफल होकर लौट आते हैं।

२. कर्णभार—यह एक अंक का 'उत्सृष्टिकाङ्क' है। इसका भी कथानक महाभारत का है। इसमें कर्ण द्वारा ब्राह्मण वेषधारी देवराज को अपना कवच-कुण्डल दान-स्वरूप प्रदान कर देने की कथा है। इस नाटक में स्थान-अन्विति का पूर्ण निर्वाह किया गया है।

३. दूतघटोत्कच—यह भी महाभारत के कथानक पर आश्रित एकांकी 'उत्सृष्टिकाङ्क' है। इसकी कथा अभिमन्यु के पश्चात् क्रम से चलती रहती है। अभिमन्यु के मरणोपरान्त अर्जुन जयद्रथ-वध की भीषण प्रतिज्ञा करते हैं। श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर कौरवपक्ष में भेज कर धृतराष्ट्र के पास भीषण विनाश की सूचना देते हैं। दुर्योधनादि द्वारा घटोत्कच का घोर अपमान होता है। दोनों पक्षों में भीषण संग्राम प्रारम्भ हो जाता है। इसमें दुर्योधन तथा घटोत्कच के संवाद वीर रस से परिपूर्ण हैं।

४. ऊरुभंग—'दूतवाक्य', 'कर्णभार' आदि की तरह यह भी एकांकी है। कथानक, जैसा कि नाम से ही परिलक्षित है, महाभारत का है। इसमें भीमसेन तथा दुर्योधन के अन्तिम गदायुद्ध का मार्मिक चित्रण है। करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। दुर्योधन का कारुणिक मरणदृश्य उसे पूर्ण दुःखान्त बना देता है। संस्कृत का यही एकमात्र दुःखान्त नाटक (Tragedy) है। इसमें भी कर्णभार के सदृश समय और स्थान की अन्विति (Unity of time and place) की ओर समुचित ध्यान दिया गया है।

५. मध्यमव्यायोग—यह भी महाभारत पर आधारित भास का सबसे छोटा नाटक है। इसमें भीम ने एक ब्राह्मण-पुत्र की रक्षा घटोत्कच के हाथ से की है। भीम पाण्डवों में मध्यम थे, अतः नाटक का नाम मध्यमव्यायोग पड़ा।

६. पञ्चरात्र—यह तीन अंकों का समवकार है। इसमें महाभारत की एक घटना को अन्यथा रूप दिया गया है। द्रोण ने दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य दे देने के लिए अनुरोध किया। दुर्योधन ने कहा कि यदि केवल पाँच रात्रि की अवधि में ही पाण्डव मुझसे मिल जाएँ तो मैं उन्हें आधा राज्य दे सकता हूँ। उस समय पाण्डव अज्ञातवास में थे। किन्तु द्रोण के प्रयत्न से पाण्डव पाँच रात के भीतर दुर्योधन से मिले और उसने उन्हें आधा राज्य दे दिया। इसमें कई नाटकीय दृश्यों का समावेश किया गया है किन्तु इतिवृत्त की दृष्टि से महाभारत के इतिवृत्त के समान प्रभावशाली नहीं हो सका है।

७. बालचरित—यह भी महाभारत की कथा पर आश्रित पाँच अंक का नाटक है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वधपर्यन्त का चरित्र वर्णन किया गया है।

८. अभिषेक—यह छः अंकों का नाटक रामायण की कथा पर आश्रित है। इसमें वालि-वध से लेकर रावण-वध तक की कथा बड़े ही संयत ढंग से वर्णित है। अन्त में राम का राज्याभिषेक है। राम के राज्याभिषेक के वर्णन के कारण नाटक का नाम 'अभिषेक' पड़ा।

९. प्रतिमानाटक—रामायण पर आश्रित भास का यह दूसरा नाटक है। इसमें सात अंक हैं और राम-वनवास से लेकर रावण-वध के उपरान्त राम के

अयोध्या लौटने तक का कथानक है। भरत अपने ननिहाल से लौटने पर जब अयोध्या के एक प्रतिमा-गृह में अपने मृत पूर्वजों की प्रतिमा के साथ दशरथ की भी प्रतिमा देखते हैं तो उन्हें ज्ञात हो जाता है कि उनके पिता अब जीवित नहीं हैं। अतएव इस नाटक का नाम प्रतिमानाटक पड़ा है।

१०. **प्रतिज्ञायौगन्धरायण**--यह चार अंकों का नाटक है। इसमें मंत्री यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की कि वह अपने राजा उदयन को उज्जैन के राजा प्रद्योत के यहाँ से छुड़ा कर लाएगा। वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ और उसकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। इसी से नाटक का नाम प्रतिज्ञायौगन्धरायण पड़ा।

११. **स्वप्नवासवदत्त**--छह अंकों में परिपूर्ण यह नाटक भास के नाटकों में सबसे अधिक प्रसिद्ध है और कथा-बन्ध एवं रंगमंच की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में एक अद्वितीय कृति है। इसको हम प्रतिज्ञायौगन्धरायण का उत्तर भाग कह सकते हैं। इसमें मंत्री यौगन्धरायण की दूरदर्शिता का प्रखर परिचय मिलता है। यौगन्धरायण ही अपनी दूरदर्शिता से वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का प्रवाद फैलाकर उदयन का दूसरा विवाह मगध की राजकुमारी पद्मावती से करा देता है और फिर मगधराज की सहायता से कौशाम्बी का नष्ट राज्य उदयन को पुनः प्राप्त कराने में सफल हो जाता है।

१२. **अविमारक**--यह नाटक कल्पनामूलक है। इसमें छह अंक हैं। राजा कुन्तिभोज की रूपवती कन्या कुरंगी के साथ अविमारक नामक राजकुमार के प्रेम-विवाह की कथा का चित्रण इसमें किया गया है।

१३. **चारुदत्त**--यह भी कल्पनामूलक एक प्रकरण है। इसका पूर्ण आकार अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। इसके केवल चार अंक ही उपलब्ध हुए हैं। इस प्रकरण में वेश्या वसन्तसेना के साथ एक सदाशय निर्धन ब्राह्मण का सात्त्विक प्रेम चित्रित किया गया है। इसी को लेकर बाद में शूद्रक ने अपना 'मृच्छकटिक' लिखा।

६--क्या इन सभी नाटकों के रचयिता भास हैं?

इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं कि इन तेरह नाटकों के रचयिता भास हैं। कतिपय विद्वानों का कथन है कि कुछ नाटकों की रचना भास ने की है

शेष की रचना किसी अन्य के द्वारा की गई। इनके अन्वीक्षण से यह स्पष्ट व्यक्त होता है कि इन सब नाटकों की रचना एक ही व्यक्ति ने की है। प्रायः सभी विद्वान् इन्हें एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं। इसके लिए निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं :—

१—सभी नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं जिनमे प्रथम संकेत मिलता है 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' जब कि अन्य संस्कृत नाटक नान्दीपाठ से प्रारम्भ होते हैं।

२—अंकों के मध्य मे लघुविस्तार वाले 'प्रवेशकों' तथा 'विष्कंभकों' का प्रयोग किया गया है। दर्शकों को अंकों के बीच में होने वाली घटनाओं को सूचित करने के लिए इनको काम मे लाया गया है।

३—प्रायः सभी नाटकों मे 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'प्रस्तावना' का प्रयोग केवल 'कर्णभार मे किया गया है।

४—सभी नाटकों मे "इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्। महीमेकातपत्रांकां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥" से अथवा इसी भाव वाले किसी पद से भरत वाक्य समाप्त होता है। पर चारुदत्त तथा दूतघटोत्कच मे भरतवाक्य नही है।

५—सामान्यतः भरत के नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया गया है। मृत्यु तथा लड़ाई-झगड़े रंगमंच पर ही दिखाये गये है (भरत नाट्यशास्त्र मे मे वर्जित हैं) और अभिषेक, पूजा, शपथ या अश्रु-प्रक्षालनार्थ रंगमंच पर जल लाया गया है। जैसे 'प्रतिमा' मे दशरथ की, 'अभिषेक' मे बालि की तथा 'ऊरुभग' मे दुर्योधन की मृत्यु रंगमंच पर ही प्रदर्शित की गई है।

६—इन सभी नाटकों मे प्रायः 'आकाशभाषित' मिलता है जिसमें रंगमंच पर पात्र अप्रकृत ध्वनियों को सुनता है अथवा अनुपस्थित व्यक्तियों से वार्तालाप करता है।

७—इन नाटकों मे कुछ शब्द अपने प्रचलित अर्थों से भिन्नार्थ मे प्रयुक्त हुए हैं। जैसे 'आर्यपुत्र' शब्द का प्रयोग अनेक बार ऐसे अर्थों मे हुआ है जिनका विधान भरत के नाट्य शास्त्र मे नहीं है।

८—इन सभी नाटकों में अन्त में नाटक के नाम का उल्लेख किया गया है। किसी में भी ग्रन्थ-प्रणेता का नाम नहीं है।

९—इन नाटकों में यद्यपि विभिन्न छन्द प्रयुक्त हुए हैं, पर इन छन्दों के प्रयोग में समानता है। कतिपय अप्रचलित छन्दों का प्रयोग उपयुक्त है जैसे सुवदना, दण्डक आदि। अनुष्टुप् छन्द बहुत अधिक मात्रा में आया है।

१०—विभिन्न नाटकों में कई पात्रों की पुनरावृत्ति है जैसे 'प्रतिज्ञा' और 'दूतवाक्य' में 'कंचुकी' का नाम 'बादरायण' है। इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमा तथा अभिषेक इन चार नाटकों में 'प्रतिहारी' का नाम 'विजया' है।

११—इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की अवतारणा की गई है। किसी विशिष्ट व्यक्ति के आगमन की उपमा तारागणमध्य चन्द्रोदय से दी गई है।

१२—कई नाटकों में समान वाक्यों का प्रयोग मिलता है। जैसे जन-समूह को मार्ग से हटाने के लिए 'उस्सरह उस्सरह अय्या, उस्सरह' (हटिये, हटिये श्रीमानो) कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। कई विषयों का उल्लेख भी समानरूप से अनेक नाटकों में पाया जाता है जैसे सूर्यास्त, राज्यागमन, युद्ध आदि। इनकी वर्णन-प्रणाली में भी समानता दृष्टिगोचर होती है।

१३—इन नाटकों में से पाँच (स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमा, पञ्चरात्र और ऊरुभंग) के प्रथम श्लोक में मुद्रालंकार का प्रयोग है। इसमें देवस्तुति के साथ ही साथ मुख्य पात्रों के नाम भी आ गये हैं।

१४—'एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते, अंग पश्यामि' यह पंक्ति प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक, प्रतिमा तथा चारुदत्त को छोड़ कर सभी नाटकों में पाई जाती है।

१५—अपाणिनीय प्रयोगों की बहुलता है। क्योंकि इनमें पाणिनीय व्याकरण के नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया गया है।

१६—अधिकतर नाटकों में 'पताका-स्थान' का प्रयोग मिलता है।

१७—सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में बहुत साम्य है। अनेक शब्दों, वाक्यों, श्लोकों और पदों की विभिन्न नाटकों में पुनरावृत्ति की गई है। वे ही उपमायें तथा उत्प्रेक्षाएँ पाई जाती हैं।

१८—कई नाटकों में ऐसी प्रणाली प्रयुक्त हुई है कि किसी नवागन्तुक से ही अप्रत्याशित उत्तर मिल जाता है। उदाहरणार्थ, प्रतिज्ञायौगन्धरायण में महासेन कई राजाओं की सूची बतलाकर अपनी महारानी अंगारवती से पूछते हैं कि कौन राजा वासवदत्ता के योग्य है, उसी समय कञ्चुकी सहसा आकर कहता है—'वत्सराज'। आशय यह कि उनके प्रश्न का अकस्मात् उत्तर मिल गया यद्यपि कञ्चुकी यह कहने आया था कि 'वत्सराज बन्दी बना लिया गया'। अभिषेक में रावण सीता से पूछता है कि जब इन्द्रजित् द्वारा राम-लक्ष्मण मारे गये तो रक्षा कौन करेगा ? नेपथ्य में—राम। अविमारक में विलासिनी नलिनी से कहती है कि विवाह कब होगा ? पर्दे के पीछे से 'आज' ध्वनि आती है।

१९—इन सभी नाटकों में समान नाटकीय परिस्थितियों की अवतारणा हुई है। अभिषेक और प्रतिमा दोनों में रावण के निवेदन को सीता शाप के साथ ठुकरा देती है। इसी प्रकार चारुदत्त में वसन्तसेना भी शकार के अनुनय को शाप के साथ अस्वीकृत कर देती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और अविमारक में राजा तथा तथा रानी मे पुत्री के उपयुक्त वर के लिए विचार-विमर्श है। बालचरित में कंस देवकी के पुत्री उत्पन्न होने की बात तब तक नहीं मानता जब तक कचुकी इसी प्रकार का प्रश्न नही करता।

२०—नाट्यनिर्देश की कमी सभी नाटकों में एक-सी पाई जाती है। जो नाट्यनिर्देश है भी उनमें एक से अधिक निर्देश एक साथ मिलते हैं जैसे 'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य'।

२१—इनमें माता के नाम से युक्त पुत्र का नाम पाया जाता है, जैसे कौशल्यामातः (राम), सुमित्रामातः (लक्ष्मण), वैदेहीपुत्रः (उदयन)।

२२—इन नाटकों में युद्ध की सूचना प्रायः भाटों, ब्राह्मणो आदि के द्वारा दिखाई गई है।

२३—पंचरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि रूपकों में किसी घटना को सूचित करने के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' वाक्य का समान रूप से प्रयोग किया गया है।

२४—इन सभी में सामाजिक परिस्थितियाँ एक-सी पाई जाती हैं।

२५—भावसाम्य इनकी एक बड़ी विशेषता है। अविमारक तथा बालचरित में नारद कलहप्रिय एवं स्वरतंत्री के साधक बताये गये हैं। दूतघटोत्कच तथा ऊरुभंग में अर्जुन की वीरता का वर्णन है। मृत्यु के बाद भी राजाओं का यशःशरीर से जीवित रहने तथा साहसियों के पास लक्ष्मी रहने का विधान सर्वत्र पाया जाता है।

२६—इन सभी नाटकों में समान आदर्श दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ सभी में देश की स्वतंत्रता और विदेशियों के निष्कासन की कामना की गई है। दूसरों से स्वतंत्रता की भिक्षा माँगने की अवहेलना की गई है। वर्णाश्रम धर्म तथा गायों की रक्षा करना, तपस्वियों तथा साधुओं को प्रसन्न रखना, न्याय करना राजधर्म माना गया है।

२७—कष्ट के समय 'आप अधिक संतप्त न होइये' ऐसा किसी पात्र द्वारा कहलाना भास की अपनी विशेषता है।[1]

२८—इन नाटकों की रचना कोई साधारण कवि नहीं कर सकता। इनके उच्चस्तर से प्रतीत होता है कि ये भास जैसे प्रतिभाशाली कवि की ही कृतियाँ हो सकती हैं।

इन समानताओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी एक ही व्यक्ति ने इन नाटकों की रचना की होगी। पर इनके रचयिता भास ही थे अथवा कोई अन्य यह विषय प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है। डा० ए० डी० पुसालकर तथा डा० ए० बी० कीथ इन्हें भासकृत मानते हैं। दूसरी ओर देवधर, कुन्हन राजा, सिरोनी तथा विन्टरनीज इन्हें भासरचित नहीं स्वीकार करते। डा० सुक्थांकर आदि कुछ विद्वान् मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर प्रतिज्ञायौग-

१—मा भवानतिमात्रं संतप्यः—यह वाक्य स्वप्नवासवदत्तम्, अविमारक तथा चारुदत्त में आया है।

१७—सभी नाटकों की भाषा तथा शैली में बहुत साम्य है। अनेक शब्दों, वाक्यों, श्लोकों और पदों की विभिन्न नाटकों में पुनरावृत्ति की गई है। वे ही उपमायें तथा उत्प्रेक्षाएँ पाई जाती हैं।

१८—कई नाटकों में ऐसी प्रणाली प्रयुक्त हुई है कि किसी नवागन्तुक से ही अप्रत्याशित उत्तर मिल जाता है। उदाहरणार्थ, प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे महासेन कई राजाओं की सूची बतलाकर अपनी महारानी अंगारवती से पूछते हैं कि कौन राजा वासवदत्ता के योग्य है, उसी समय कञ्चुकी सहसा आकर कहता है—'वत्सराज'। आशय यह कि उनके प्रश्न का अकस्मात् उत्तर मिल गया यद्यपि कञ्चुकी यह कहने आया था कि 'वत्सराज बन्दी बना लिया गया'। अभिषेक में रावण सीता से पूछता है कि जब इन्द्रजित् द्वारा राम-लक्ष्मण मारे गये तो रक्षा कौन करेगा? नेपथ्य में—राम। अविमारक मे विलासिनी नलिनी से कहती है कि विवाह कब होगा? पर्दे के पीछे से 'आज' ध्वनि आती है।

१९—इन सभी नाटकों में समान नाटकीय परिस्थितियों की अवतारणा हुई है। अभिषेक और प्रतिमा दोनों में रावण के निवेदन को सीता शाप के साथ ठुकरा देती है। इसी प्रकार चारुदत्त में वसन्तसेना भी शकार के अनुनय को शाप के साथ अस्वीकृत कर देती है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और अविमारक में राजा तथा तथा रानी में पुत्री के उपयुक्त वर के लिए विचार-विमर्श है। बालचरित में कंस देवकी के पुत्री उत्पन्न होने की बात तब तक नही मानता जब तक कचुकी इसी प्रकार का प्रश्न नहीं करता।

२०—नाट्यनिर्देश की कमी सभी नाटकों में एक-सी पाई जाती है। जो नाट्यनिर्देश है भी उनमें एक से अधिक निर्देश एक साथ मिलते हैं जैसे 'निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य'।

२१—इनमें माता के नाम से युक्त पुत्र का नाम पाया जाता है, जैसे कौशल्यामातः (राम), सुमित्रामातः (लक्ष्मण), वैदेहीपुत्रः (उदयन)।

२२—इन नाटकों मे युद्ध की सूचना प्रायः भाटों, ब्राह्मणों आदि के द्वारा दिखाई गई है।

२३—पंचरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि रूपकों में किसी घटना को सूचित करने के लिए 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' वाक्य का समान रूप से प्रयोग किया गया है।

२४—इन सभी में सामाजिक परिस्थितियाँ एक-सी पाई जाती हैं।

२५—भावसाम्य इनकी एक बड़ी विशेषता है। अविमारक तथा बालचरित में नारद कलहप्रिय एवं स्वरतंत्री के साधक बताये गये हैं। दूतघटोत्कच तथा ऊरुभंग में अर्जुन की वीरता का वर्णन है। मृत्यु के बाद भी राजाओं का यशःशरीर से जीवित रहने तथा साहसियों के पास लक्ष्मी रहने का विधान सर्वत्र पाया जाता है।

२६—इन सभी नाटकों में समान आदर्श दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ सभी में देश की स्वतंत्रता और विदेशियों के निष्कासन की कामना की गई है। दूसरों से स्वतंत्रता की भिक्षा माँगने की अवहेलना की गई है। वर्णाश्रम धर्म तथा गायों की रक्षा करना, तपस्वियों तथा साधुओं को प्रसन्न रखना, न्याय करना राजधर्म माना गया है।

२७—कष्ट के समय 'आप अधिक संतप्त न होइये' ऐसा किसी पात्र द्वारा कहलाना भास की अपनी विशेषता है।[1]

२८—इन नाटकों की रचना कोई साधारण कवि नहीं कर सकता। इनके उच्चस्तर से प्रतीत होता है कि ये भास जैसे प्रतिभाशाली कवि की ही कृतियाँ हो सकती हैं।

इन समानताओं से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी एक ही व्यक्ति ने इन नाटकों की रचना की होगी। पर इनके रचयिता भास ही थे अथवा कोई अन्य यह विषय प्रारम्भ से ही विवादास्पद रहा है। डा० ए० डी० पुसालकर तथा डा० ए० बी० कीथ इन्हें भासकृत मानते हैं। दूसरी ओर देवधर, कुन्हन राजा, विशरोती तथा विन्टरनीज इन्हें भासरचित नहीं स्वीकार करते। डा० सुकथंकर आदि कुछ विद्वान् मध्यम मार्ग का आश्रय लेकर प्रतिज्ञायौग-

१—मा भवानतिमात्र संतप्यः—यह वाक्य स्वप्नवासवदत्तम्, अविमारक तथा चारुदत्त में आया है।

न्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम् आदि कुछ नाटकों को भासकृत मानते हैं पर कुछ को भास के नाम के साथ पीछे से जोड़ा गया मानते हैं। कुछ आलोचक इन नाटकों को केरल के चाक्यारों की रचना मानते हैं। प्रस्तावना या स्थापना में भास के नाम का अभाव, हस्तलिपियों का अन्य प्रान्तों में न मिलकर केवल केरल मे ही प्राप्त होना, स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञा नाटकों में विवाह के लिए संबंध शब्द का प्रयोग इन्ही तर्कों के आधार पर चाक्यारों की सृष्टि मानी गई है। पर ये बातें युक्तिसंगत नही प्रतीत होती। संभव है उस समय नाटककार के नाम देने की प्रथा न रही हो। यदि यह चाक्यारों की रचना होती तो प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए रचयिता का नाम अवश्य दिया गया होता। उत्तरी भारत में मुसलमानों के प्रभुत्व के कारण संस्कृत साहित्य के अन्य ग्रन्थों के जलाने के साथ ही साथ भास का साहित्य भी भस्म हो गया,हो अतः उनका अन्य प्रान्तों में अभाव है। रही बात विवाह के अर्थ मे 'सम्बन्ध' शब्द के प्रचार की तो मिताक्षरा पद्धति में यह शब्द इस अर्थ में अब भी प्रयुक्त होता है। यदि चाक्यारों में इतनी काव्य-प्रतिभा तथा नाट्यकौशल होता और उनकी भाषा इतनी समृद्ध होती तो वे दूसरे नाटकचक्रों की रचना करते। इन तेरह नाटकों के बाद उनकी अन्य रचनायें भी उपलब्ध होती। अतः चाक्यारों द्वारा इनकी रचना नही हुई। इस प्रकार अभी तक प्राप्त युक्तियाँ यद्यपि पूर्णतया निर्णयात्मक नही हैं तथापि भाससमर्थक युक्तियाँ अधिक समीचीन प्रतीत होती हैं।

प्राचीन कवियों ने भास की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है वे सब इन नाटकों मे दृष्टिगोचर होती हैं। इन प्राचीन कवियों के नाम इस प्रकार हैं बाणभट्ट, दण्डी, वाक्पति भामह, वामन, राजशेखर, अभिनवगुप्त, भोजदेव, जयदेव। इन प्राचीन कवियों की प्रशस्तियों के आधार पर यह स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि इन तेरह नाटकों के रचयिता भास ही हैं। ये प्रशस्तियाँ आगे दी गई हैं।

१०—स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु

वत्सदेश के अधिकांश भाग पर आरुणि ने अधिकार जमा लिया था। इस राज्य को पुनः स्वामी के अधिकार में लाने के लिए वत्सराज उदयन के मन्त्रियों

की दृष्टि में मगधराज दर्शक की सहायता नितान्त आवश्यक थी। परन्तु यह सहायता उदयन और पद्मावती के विवाह से ही संभव थी। इधर ज्योतिषियों ने बताया था कि पद्मावती उदयन की रानी बनेगी। किन्तु जब तक वासवदत्ता जीवित थी, यह विवाह नहीं हो सकता था। क्योंकि प्राणप्रिया वासवदत्ता के रहते न तो उदयन ही विवाह के लिए सहमत था और न दर्शक ही अपनी बहन का विवाह उदयन से सहर्ष कराने को तैयार था। अतः मंत्रियों ने वासवदत्ता की स्वीकृति से एक षड्यन्त्र रचा। राज्य की पश्चिमीय सीमा के निकट लावाणक नामक ग्राम में राजकीय पड़ाव डाल दिया। क दिन जब राजा आखेट के लिए बाहर गया तब उस ग्राम में आग लगवा दी और घोषणा कर दी कि वासवदत्ता और यौगन्धरायण उसमें जल गये। तत्पश्चात् वासवदत्ता और यौगन्धरायण वेश बदल कर मगध के एक तपोवन में पहुँचे। यहीं से स्वप्नवासवदत्त का प्रथम अंक प्रारंभ होता है।

पहला अंक—मंगल-गान के पश्चात् सूत्रधार रंग-मंच पर आकर प्रार्थना करता है कि बलराम जी की भुजायें दर्शकों का पालन करें। अनन्तर वह कुछ कहना ही चाहता है कि नेपथ्य में 'हटो, हटो' की आवाज होती है। उसे ध्यान से सुनकर वह कहता है—'अरे! यह तो मगधराजकुमारी के नौकर तपस्वियों को हटा रहे हैं'। इतना कहकर वह चला जाता है। तब अवन्तिका के वेश में वासवदत्ता और सन्यासी का वेश धारण किये हुए यौगन्धरायण आते हैं। सिपाहियों द्वारा तपस्वियों को हटाये जाने की बात सुनकर वासवदत्ता यौगन्धरायण से कहती हैं—'आर्य! ये उजड्ड सिपाही कहीं हम लोगों को भी न हटा दें। इतने में मगधराजकुमारी पद्मावती का जो उस समय तपोवन में निवास करने वाली अपनी माता का दर्शन करके राजधानी को लौट रही थी और तापसी के अनुरोध पर उस दिन वहाँ के आश्रम में ठहर गई थी, कंचुकी उन सिपाहियों को रोक देता है और पद्मावती की आज्ञा से याचकों को मनोवांछित दान देने की घोषणा करता है। यौगन्धरायण जो पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार पद्मावती को अपने महाराज उदयन की होने वाली रानी समझता है, इस अवसर से लाभ उठाता है। वह पद्मावती से अपनी कल्पित भगिनी वासवदत्ता को धरोहर रखने की प्रार्थना करता है। पद्मावती उसे स्वीकार कर लेती है। बातचीत के सिलसिले में तापसी पद्मावती के विवाह की

चर्चा छेड़ देती है। पद्मावती की दासी तापसी को बताती है कि उज्जयिनी के राजा महासेन के पुत्र के साथ राजकुमारी के विवाह-सम्बन्ध की चर्चा चल रही है। इतने में एक ब्रह्मचारी, जो लावाणक गाँव से लौट रहा था, वहाँ विश्राम के लिए रुक जाता है। कुशल प्रश्न होने पर वह अपने वेदाध्ययन में हुए विघ्न का कारण बताते हुए कहता है—'लावाणक गाँव मे रहने वाले राजा उदयन एक दिन जब शिकार पर थे तब उस गाँव में आग लग जाने से उनकी प्रियतमा वासवदत्ता और मंत्री यौगन्धरायण जल कर मर गये। शिकार से लौटने पर जब राजा को दुःखद समाचार मिला तो उन्होंने उसी आग में कूद कर अपना प्राण दे देना चाहा। पर मंत्रियों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें रोका। तब से वे बहुत रोते हैं, वासवदत्ता के अधजले आभूषणों को छाती से लगाकर बार-बार मूर्च्छित हो जाते हैं। परन्तु रुमण्वान् नामक मंत्री बड़े कष्ट एवं धैर्य से उनकी रक्षा कर रहा है। इस समय लावाणक में राजा का रहना उचित न समझकर मंत्री लोग उन्हें अन्यत्र ले गये हैं। राजा के चले जाने पर वह ग्राम हतश्री हो गया। इसलिए हम भी वहाँ से चले आये।' इतना कहकर ब्रह्मचारी चला जाता है। परन्तु वासवदत्ता अपने प्रति अपने पति के आदर्श प्रेम को सुनकर बहुत सन्तुष्ट होती है और पद्मावती भी उदयन के गुणों से प्रभावित होकर मन में उससे प्रेम करने लगती है। अनन्तर पद्मावती से आज्ञा पाकर यौगन्धरायण के चले जाने के बाद तापसी से, अनुरूप पति की प्राप्ति का आशीर्वाद लेकर पद्मावती वासवदत्ता एवं निज परिवार के साथ प्रस्थान कर देती है।

दूसरा अंक—माधवीलतामण्डल के पास पद्मावती वासवदत्ता के साथ गेंद खेलती है। काफी देर तक खेल चुकने के बाद जब दोनों विश्राम कर रही हैं उस समय वासवदत्ता परिहास में पद्मावती से कहती है—'बहन! गेंद खेलने के कारण ललाई बढ़ने से तुम्हारे हाथ मानो दूसरे के हो गये हैं। अब तो तुम शीघ्र ही महासेन की बहू होगी' इस पर पद्मावती की दासी इस रहस्य को प्रकट करती है कि पद्मावती वत्सराज उदयन के गुणों पर अनुरक्त है। ठीक उसी समय पद्मावती की धात्री आकर सूचना देती है कि उदयन के साथ पद्मावती का विवाह तय हो गया। फिर दूसरी दासी कहने के लिए आती है कि आज ही विवाह को शुभ घड़ी है, अतः शीघ्रता कीजिए। इसके बाद सब अन्तःपुर में चली जाती हैं।

तीसरा अंक—पद्मावती के विवाह की खुशियां मनायी जा रही हैं, किन्तु वासवदत्ता के लिए यह विवाह दुःसह हो रहा है। भला वह अपनी ही आँखों से अपने पति को पराये होते कैसे देख सकती है? इसलिए वह राजमहल से निकल कर मन बहलाने के लिए नजर-बाग में चली जाती है। उसे खोजती हुई एक दासी भी वहीं जा पहुँचती है और उससे पद्मावती के लिए विवाह-माला गूँथ देने के लिए अपनी महारानी का सन्देश सुनाती है। विवशतः, वासवदत्ता माला गूँथने लगती है। परन्तु उस माला में वह अविधवाकरण औषध को ही गूँथती है, सपत्नी-मर्दन को नहीं। इतने में दूसरी दासी आती है और माला लेकर पहली दासी के साथ शीघ्रता से चली जाती है। इधर वासवदत्ता अपने पति के साथ पद्मावती के विवाह से अत्यंत व्यथित होकर शान्ति पाने के लिए सोने का उपक्रम करती है।

चौथा अंक—विवाहोत्सव में नित्य नये-नये पदार्थों को ठूँस-ठूँस कर खाने से विदूषक को मन्दाग्नि हो जाती है, जिसे वह दासी के साथ वार्तालाप में प्रकट करता है। अनन्तर पद्मावती वासवदत्ता और एक दासी के साथ प्रमदवन में जाती है। वहाँ पद्मावती दासी से कुछ शेफालिका के फूलों को चुनवाती है और कुछ प्रियतम के मनोविनोद के लिए बिखरे हुए पड़े रहने देती है। फिर बातचीत के सिलसिले में पद्मावती उदयन के प्रति अपना अत्यंत अनुराग व्यक्त करती है। उसी समय उदयन और विदूषक वसन्तक भी प्रमदवन में आ जाते हैं। पद्मावती वासवदत्ता का ख्याल करके अपने पति से मिलना नहीं चाहती। इसलिए सभी लताकुंज में छिप जाती हैं। उदयन और वसन्तक भी शरद् की तीखी धूप से बचने के लिए उसी लताकुंज में जाना चाहते हैं। किन्तु दासी लता-कुंज की प्रधान लता को इतने जोर से हिला देती है कि उस पर बैठे हुए सभी भौंरे उड़ने लगते हैं, जिनके काट खाने के भय से वे दोनों कुंज में न घुसकर उसके पास ही रखे हुए शिला-खंड पर बैठ जाते हैं। वहाँ विदूषक राजा से पूछता है—'आप को तब वासवदत्ता अधिक प्रिय थी या अब पद्मावती?' राजा उत्तर देता है—'पद्मावती सब गुणों से प्रिय होने पर भी वासवदत्ता में अनुरक्त मेरे मन को खींच नहीं पाती है।' इस प्रकार पारस्परिक वार्तालाप में वासवदत्ता का शोक उमड़ने के कारण राजा की आँखों से आँसू बहने लगने

है। विदूषक मुख धोने के लिए पानी लाने जाता है। इधर अवसर देखकर वासवदत्ता पद्मावती को राजा के पास भेज कर स्वयं वहाँ से खिसक जाती है। विदूषक के लौटने पर पद्मावती उससे राजा के आँसू का कारण पूछती है। वह चतुरता से रहस्य छिपाते हुए उत्तर देता है कि आँखों में काशपुष्प के पराग पड़ जाने से आँसू आ गये। तब पद्मावती राजा की आँखें धोने लगती है। फिर राजा को प्रणय-संकट से बचाने के लिए विदूषक स्मरण दिलाता है कि उनको तो मगधराज के सम्मानार्थ एक प्रीति-उत्सव में जाना है, इसलिए शीघ्रता की जाय। राजा भी उसके प्रस्ताव का समर्थन करके वहाँ से चल देता है।

पाँचवाँ अंक--पद्मावती सिर-दर्द से पीडित है। इसकी सूचना वासवदत्ता को देने के लिए पद्मिनिका नामक दासी मधुकरिका नाम की अपनी सखी को भेजती है और स्वयं वसन्तक को ढूँढकर राजा के पास भी यह समाचार भिजवा देती है। राजा अपनी पत्नी का दुःखद समाचार सुनकर समुद्रगृह में जाता है, जहाँ पद्मावती की शय्या लगाई गई थी। परन्तु वहाँ पद्मावती को न देख कर उसकी प्रतीक्षा में राजा उसी शय्या पर लेट जाता है और विदूषक शीत से बचने के लिए कम्बल लाने चला जाता है। इसी बीच वासवदत्ता वहाँ आती है। वह वस्त्रावृत राजा को पद्मावती समझकर उसी की बगल में लेट जाती है; पर उसके हृदय में एक अपूर्व आनन्दोल्लास उठता है। वह इसका कारण ढूँढ़ना ही चाहती है कि राजा स्वप्न में [वासवदत्ता का स्मरण करके कुछ बोलने लगता है। वासवदत्ता पलग पर से उठ जाती है और अपने प्रियतम का मुँह निहारते हुए उसकी लटकती हुई भुजा को धीरे से शय्या पर रखकर बाहर चली जाती है। प्रियतमा के हाथ का स्पर्श पाकर राजा उठ जाता है और उसे पकड़ने के लिए लपकता है, पर दरवाजे से टक्कर खाकर गिर पड़ता है। विदूषक के लौटने पर राजा उससे कहता है कि वासवदत्ता अभी जीवित है। विदूषक इसे स्वप्न अथवा अवन्तिसुन्दरी नामक यक्षिणी का दर्शन बताता है। इतने में मगधराज दर्शक का भेजा हुआ कंचुकी आकर उदयन से कहता है—'आपका सेनापति रुमण्वान् मगधेश्वर की सैन्य-सहायता से आरुणि नामक शत्रु पर चढ़ाई करने जा रहा है। आप शीघ्र तैयार हों।' इस प्रकार सन्देश पाकर राजा युद्धोचित उत्साह दिखलाते हुए लड़ाई के लिए प्रस्थान कर देता है।

छठा अंक—संग्राम में विजयी होने के बाद एक दिन उदयन को घोषवती नामक वीणा, जो वासवदत्ता को अत्यन्त प्रिय थी, सूर्यमुख नामक प्रासाद में किसी व्यक्ति से प्राप्त हो जाती है। राजा उसे गोद में लेकर विलाप करने लगता है। इसी बीच वासवदत्ता के पिता और माता द्वारा भेजे हुए कंचुकी और वासवदत्ता की धाई विजय के उपलक्ष्य में बधाई देने के लिए उदयन के पास आते हैं। कुशल-प्रश्न के अनन्तर वे राजा-रानी का सन्देश सुनाते हुए कहते हैं—"यद्यपि वासवदत्ता अब नहीं है, फिर भी हम तुम्हें अपने पुत्रों के समान ही समझते हैं। जब तुम अपनी चपलता के कारण बिना विधिपूर्वक विवाह किये ही यहाँ से वासवदत्ता को लेकर भाग गये थे, तभी हमने तुम दोनों के चित्र लिखवा कर नकली विवाह करा दिया था। अब तुम यह चित्र देखकर चित्त को शान्त करो'। यह कहकर धाई राजा के हाथ में चित्र समर्पित करती है। पद्मावती चित्र में लिखित महिला को देखकर राजा से कहती है कि मेरे विवाह से पूर्व ठीक इसी स्वरूप की युवती को किसी संन्यासी ने अपनी बहन बता कर मेरे पास धरोहर रख दिया था। वह अभी भी हमारे संरक्षण में रह रही है। उसका नाम अवन्तिका है। यह सुनकर राजा उसे बुला लाने के लिए आज्ञा देता है। इसी बीच यौगन्धरायण भी अपनी धरोहर वापिस लेने के लिए उपस्थित हो जाता है। अवन्तिका के वेश में वासवदत्ता जब वहाँ लाई जाती है तो उसकी धाई वसुन्धरा उसे पहचान कर कहती है—'अरे! यह तो वासवदत्ता है। इस पर राजा अपनी आज्ञा से उसका घूँघट हटवाता है। अवसर देख कर यौगन्धरायण भी अपना कल्पित वेश हटाकर राजा का जय-घोष करता है। वासवदत्ता भी उसके स्वर में स्वर मिलाती है। पश्चात् राजा से अपने अपराध के लिए क्षमा-याचना करते हुए यौगन्धरायण रहस्योद्घाटन करता है कि किस प्रकार अपने स्वामी के कल्याण की दृष्टि से उसने रुमण्वान् आदि मंत्रियों की सलाह से ऐसी योजना बनाई, जिसके अनुसार उसे वासवदत्ता को राजा के पास से हटाकर पद्मावती के पास धरोहर रखना पड़ा। इसके बाद सब के उज्जयिनी जाने के प्रस्ताव के साथ भरत-वाक्य दिखाकर नाटक समाप्त हो जाता है।

११—प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

(१) उदयन

उदयन स्वप्नवासवदत्त नाटक का सर्वगुणसम्पन्न नायक है। यद्यपि नाटकीय परिभाषा में वह धीरललित है, किन्तु धीरोदात्त नायक का लक्षण भी उसमें घटता है।

उसके गुण—वह एक पराक्रमशील युवक है। क्षात्र धर्म के सभी तत्त्व उसमें भलीभाँति विद्यमान हैं। उसमें रसिकता एवं गुणग्राहकता की अनोखी परख है। उसकी आन्तरिक तथा बाह्य प्रकृति का सामञ्जस्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। वह समुद्र के समान गम्भीर-धीर एवं सुशीलता की प्रतिमूर्ति है। उसका हृदय अत्यन्त कोमल, दयालु तथा दृढ़निश्चयी है।

उसका पत्नीव्रत—वह एक विश्वसनीय पति है। उसका अपनी पत्नी के प्रति प्रेम बड़ा ही अचल एवं निष्कपट है। उसकी प्रियतमा वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का प्रवाद प्रसारित हो जाता है। वह इस समाचार से इतना व्यथित होता है कि स्वयं को भी उसी अग्नि में भस्मसात् कर देना चाहता है। किन्तु मन्त्रियों द्वारा अग्नि में कूदने से रोक लिए जाने पर वह वासवदत्ता के जले हुए आभूषणों को छाती से लगाकर मूच्छित हो जाता है। उसके इस अनन्य प्रणय का वर्णन करते हुए ब्रह्मचारी को भी कहना पड़ता है—

'नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।' (अंक १ श्लोक १३)

यह उसका वासवदत्ता-वियोग-जन्य सन्ताप बड़ा ही दीर्घ एवम् अशमनीय है। वासवदत्ता की आकृति उसकी आँखों में सर्वदा प्रत्यक्ष-सी दिखाई पड़ती है। वासवदत्ता को विस्मृत कर देना उसके लिए समस्या है, नितान्त असम्भव है। उसकी नवपरिणीता वधू पद्मावती का विशिष्ट सौन्दर्य भी उसके हृदय को आकृष्ट करने में असमर्थ है। विदूषक से वह कहता है—

'पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥' (अंक ४ श्लोक ५)

इसका मतलब यह नहीं है कि वह पद्मावती से कम प्रेम करता है। वह उसके सिर-दर्द की बात सुनकर व्याकुल होता है और मन में अनेक प्रकार की भाशंकायें करते हुए कहता है—

'रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥ (अंक ५ श्लोक २)

उसकी विलासप्रियता—यद्यपि वह एक वीर एवं श्रेष्ठ पुरुष है तथापि उसमें प्रारम्भिक अवस्था की चञ्चलता कम नहीं है। वह इतना अधिक विलासी तथा कामप्रिय है कि वासवदत्ता के लावण्य में आसक्त हो जाने के कारण राज्य तक खो बैठता है। यहाँ तक कि पद्मावती के विवाहोपरान्त पुनः प्राप्त राज्य से उसे सन्तोष नहीं होता। उस समय भी वह वासवदत्ता के लिए आतुर दीख पड़ता है। स्वप्न में वासवदत्ता से प्रश्न का उत्तर माँगना उसकी आसक्ति की चरम सीमा है।

'हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।'

उसे कोई उत्तर नहीं मिलता है। फलस्वरूप वासवदत्ता के रुष्ट होने की सम्भावना करके तर्क-वितर्क करने लगता है—

'किं कुपितासि ?'

× × ×

'यद्यकुपिता किमर्थं नालङ्कृतासि ?'

विदूषक के कहने पर कि—वासवदत्ता की मृत्यु हो चुकी है, आपने स्वप्न देखा होगा—वह विभोर होकर कह उठता है—

'यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे सदा ॥' (अंक ५ श्लोक ६)

उसकी वीरता और व्यवहार-कुशलता—उदयन को पाण्डवों से उत्तराधिकार में स्वाभिमान और शौर्य मिला था। वह पाण्डववंशीय राजा

शशांक का पुत्र और सहस्राक का पौत्र था। भागवत के अनुसार अर्जुन की छब्बीसवीं पीढ़ी में 'दुर्दमन' का नाम आता है। इसी दुर्दमन का नामान्तर उदयन है। वह राजोचित गुणों से सम्पन्न है। जब मगधराज का कञ्चुकी उसे युद्ध में चलने के लिए बुलाने आता है तो वह वीरोचित शब्दों में कहता है—

'उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥' (अंक ३ श्लोक १३)

यह वाक्य वीर और साहसी ही कह सकता है, भीरु या विलासी नहीं। महासेन का कंचुकी उदयन को बधाई देते हुए ठीक ही कहता है कि 'प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते।'

अवन्तिका को लौटाने के समय साक्षियों की नियुक्ति उदयन के व्यावहारिक ज्ञान को प्रकट करती है। अज्ञातवास के बाद वासवदत्ता के पुनः प्रकट होने पर वह सन्देह का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालता है। रुमण्वान् के रहस्य को नितान्त गोपनीय रखने पर वह आश्चर्य तो करता है, किन्तु उस पर क्रुद्ध नहीं होता। प्रमोदवन में अपने आँसुओं का सत्य कारण इसलिए नहीं बताता कि उससे पद्मावती को दुःख होगा। मगध जाकर युद्ध के लिए दर्शक से सहायता प्राप्त करने में सफल हो जाना भी उसकी व्यावहारिक कुशलता का परिचायक है।

(२) वासवदत्ता

वासवदत्ता नाटक की प्रधान स्वीया नायिका है। उसमें राजमहिषी के अनुरूप लावण्य, बुद्धिमत्ता एवं संवेदनायुक्त कोमलता है।

उसका स्वाभिमान—यद्यपि वह एक निःस्वार्थ पत्नी है, पति के लिए सर्वस्व का त्याग कर सकती है तथापि उसमें एक प्रकार की आत्मसम्मान की भावना प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। प्रथमांक में उसका आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान अनेक स्थलों पर उद्दाम भावना के साथ जागरित हो उठा है। प्रारम्भ में तो वह पूर्ण आत्मसम्मानी महिला प्रतीत होती है। संन्यासीवेशधारी यौगन्धरायण के साथ प्रविष्ट होती हुई वह दो कर्मचारियों द्वारा 'उत्सरत'

उत्सरत आर्याः !' का आदेश सुनती है। उस समय वह मरने भी हटाये जाने की आशंका से स्वाभिमान को ठेस लगते देखकर तुरन्त यौगन्धरायण से प्रश्न कर बैठती है—'अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामि ?' वह इस उत्सारणाजन्य अपमान को इतनी संवेदनशीलता से अनुभव करती है कि हठात् उसके मुख से निकल जाता है—'आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः।'

उसकी पतिपरायणता—वासवदत्ता पति के प्रेम में आत्मत्याग की मूर्ति है। साथ ही वह अत्यन्त बुद्धिमती एवं कर्तव्यपरायण है। वह यौगन्धरायण की योजना बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकार कर लेती है। योजना की सफली-भूत अवधि पर्यन्त उसे अनेकशः कष्ट उठाने पड़ते हैं; किन्तु उसमें भी वह अनुपम आनन्द का ही अनुभव करती है, क्योंकि उसमें उसके पति का हित निहित है। उसके लिए पति का सुख ही सर्वस्व है। नवविवाहिता पद्मावती रुग्ण हो जाती है। इस समाचार से उसे असह्य पीड़ा होती है; क्योंकि उसका पति बहुत दुःखी है। एक तो उसका वियोग, दूसरा मनोविनोद के एकमात्र साधन (पद्मावती) का अभाव। वह कह उठती है—'आर्यपुत्रस्य विश्रामस्थान-भूता इयमपि नाम पद्मावती अस्वस्था जाता।' उसकी पतिपरायणता के कारण ही तो राजा उसकी कल्पित मृत्यु पर अपने प्राण देने को उतारू हो जाता है। ब्रह्मचारी ने ठीक ही कहा है कि धन्य है वह स्त्री जिसका पति उसे मरने के पश्चात् भी इस प्रकार स्मरण करे—

'धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता।
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा॥'

उसकी नारी-सुलभ ईर्ष्या—उदयन के हृदय की एकमात्र अधिकारिणी वासवदत्ता अपनी सपत्नी (सौत) की सरक्षकता मे जीवन-यापन कर रही है। ऐसी परिस्थिति में उसके अन्तस् मे छिपे ईर्ष्या के भाव कभी-कभी उसे कोसने से लगते हैं। 'आर्यपुत्रोऽपि परकीयः संवृत्तः' व्यथा के कितने गहरे-भाव हैं! उसके हृदय-मन्दिर का देव अन्य मे प्रतिष्ठित होने जा रहा है, यह उसके लिये नितान्त असह्य है। इसलिए वह पद्मावती के विवाह-संस्कार के समय स्वयं को प्रमोदवन में प्रच्छन्न रखती है। इतने पर भी वह प्रतिक्षण सचेष्ट

रहती है कि कहीं यौगन्धरायण की योजना निष्फल न हो जाय। जीवित रहते पति के मुख से 'वासवदत्ता बद्धं न तावन्मे मनो हरति' सुनकर अपार आनन्द मिलता है। वह कह उठती है—'दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य, अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।'

वास्तव में वासवदत्ता नारी-सुलभ समस्त गुण-दोषों से युक्त है, तथापि वह एक आदर्श महिला है, विधाता की कमनीय कला का विशुद्ध उदाहरण है।

(३) पद्मावती

पद्मावती नाटक की दूसरी स्वीया नायिका है। नाटक में इसका दर्शन सर्वप्रथम कन्याभाव में होता है।

यह मगध-नरेश दर्शक की भगिनी है। यह बड़ी ही उदार-हृदय राजकुमारी है। धर्मप्रियता का पूर्ण सञ्चार इसकी हृत्तन्त्री को झंकृत करता रहता है। यह प्रतिज्ञापालन, सहानुभूतिशील एवम् प्रतिभासम्पन्न महिला है।

सहृदयता—पद्मावती का स्वभाव अत्यन्त ही स्नेह तथा सौहार्द से परिपूर्ण है। न्यास रूप में वासवदत्ता की प्राप्ति पर वह तुरन्त कह उठती है—"भवतु, भवतु। आर्या आत्मीयेदानीं संवृत्ता।' दोनों का पारस्परिक स्नेह बड़ा ही प्रगाढ़ हो जाता है। ब्रह्मचारी द्वारा जब वह उदयन का शोक सुनती है, उस समय उसे महती क्लान्ति का अनुभव होता है। जब उसकी मोहमुक्ति का समाचार सुनती है तो कहती है—'दिष्ट्या ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्।'

पति-स्नेह—अपने पति के लिये उसके हृदय में अपार एवं शाश्वत प्रेम है। अपने पति मे किसी प्रकार का दोष देखना या सुनना नहीं चाहती। स्वयं कष्ट उठा कर उसे सुखी देखने के लिए यत्नशील रहती है। चेटी एक बार जब उदयन को पद्मावती की अपेक्षा वासवदत्ता पर अधिक प्रेम प्रकट करने के कारण अदाक्षिण्य कह देती है तो वह तुरन्त चेटी को रोकते हुए कहती है—'हला ! मा मैवम् ! सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः य इदानीमप्यार्या वासवदत्ताया गुणान् स्मरति !'

नारी-सुलभ ईर्ष्या का अभाव—अपनी सौत वासवदत्ता के प्रति उदयन का प्रेम देखकर वह न दुःखी होती है न ईर्ष्या करती है।' प्रत्युत वासवदत्ता के प्रति आदर का भाव रखते हुए जब भी उसका नाम लेती है तो उसके नाम से पूर्व 'आर्या' शब्द का व्यवहार अवश्य करती है। इतना ही नहीं, चित्रफलक में अवन्तिका के समान वासवदत्ता का रूप देखकर वह वासवदत्ता के जीवित होने के विचार से गद्गद हो जाती है। फिर वासवदत्ता के प्रकट होने पर वह अपनी ईर्ष्या-शून्यता एवं सहज स्नेह का परिचय देते हुए उसके पैरों पर गिर कर क्षमा मांगते हुए कहती है—'आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणातिक्रान्तः समुदाचारः। तच्छीर्षेण प्रसादयामि।'

उसके विषय में विदूषक कहता है—'तत्रभवती पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहंकारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या।' ये हैं उसके गुण।

(४) यौगन्धरायण

यह वत्सराज उदयन का मन्त्री और राजनीति में चाणक्य के तुल्य दूरदर्शी है। यह नाटक का एक प्रकार से केन्द्र-बिन्दु है।

स्वामि-भक्ति—यह एक पूर्ण स्वामिभक्त मंत्री है; अपने स्वामी तथा राज्य के हित के लिए सर्वस्व त्याग सकता है। स्वामी के लिए यह प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनेक प्रकार की आपत्तियों को सहन करता है। स्वयं उदयन ने उसकी प्रशंसा की है—

'मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः॥'

चातुर्य—यौगन्धरायण एक प्रखर प्रज्ञावान् तथा कार्य-कुशल व्यक्ति है। जब पद्मावती दान की घोषणा करती है, वह तुरन्त अर्थी बनकर उपस्थित हो जाता है और इसी के बल पर वासवदत्ता पद्मावती के पास गुप्त रूप में रहती है। उसी को प्रज्ञा का परिणाम है, जो उदयन का राज्य उन्हें पुनः प्राप्त हो जाता है।

गुणग्राहिता—उसमें दूसरे के गुणों की पहचान करने की अद्भुत क्षमता है। रुमण्वान् के किये गये परिश्रम को सुनकर वह उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करता है— 'अहो महद्भारमुद्वहति रुमण्वान्। कुतः'

'सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥' (अंक १ श्लोक १५)
यह है उसकी गुणग्राहकता ।

समस्त नाटक में यद्यपि यौगन्धरायण के दर्शन केवल दो ही स्थलों पर होते हैं तथापि हम उसे एक प्रकार से नाटक का वह सूत्र कह सकते हैं जिसमें से पूरे नाटक की एक-एक घटना की व्याख्या निकलती है ।

(५) वसन्तक

वसन्तक नाटक का विदूषक है । इस नाटक में विदूषक भास के अन्य नाटकों के विदूषकों की अपेक्षा अधिक गम्भीर है। केवल दो ही अंकों में वह दिखाई पड़ता है ।

उसकी सजगता—वसन्तक केवल हास्य-रस-साधन अथवा भोजन-भट्ट ही नहीं है, वरन् वह सर्वदा राजा के साथ रहकर उसके प्रत्येक कार्य में सतर्कता-पूर्ण प्रहरी का-सा साहाय्य देने वाला पात्र है। वह अपनी सजगता के कारण राजा को सभी विषम परिस्थितियों से बचा लेता है और सन्मित्र की भाँति उसे अपने कर्त्तव्य कर्मों में प्रेरित करता रहता है। जब राजा वासवदत्ता की याद हो आने से रोने लगता है और वहाँ पद्मावती एकाएक आ जाती है, उस समय वह बड़ी सावधानी से पद्मावती को राजा की आँखों में आँसू आने का कारण बताते हुए कहता है—**'भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुना अक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु अत्रभवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवती इदं मुखोदकम् ।'** फिर वह राजा को स्मरण दिलाकर कि 'आपको मगधेश्वर के साथ स्वागत-समारोह में चलना है, शीघ्र प्रस्थान कीजिये' वहाँ से हटा देता है। इतना ही नहीं, वह अधिक भोजन के प्रति भी सावधान रहता है कि कहीं अजीर्ण न हो जाय । चेटी के पूछने पर भोजन न करने का कारण बताते हुए कहता है—**'अधन्यस्य मम कोकिलानाम् अक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः ।'**

पूर्ण स्वामि-भक्ति—वह बड़ा ही स्वामिभक्त सेवक है । मानव के सभी सौजन्य, सहानुभूति आदि गुण उसमें पूर्णरूपेण विद्यमान हैं । वह राजा के दुःख में दुःखी तथा सुख के अवसर पर स्वयं को भी सुखी समझता है । इसलिए राजा भी उस पर इतना अधिक विश्वास करता है कि उससे अपनी सब बातें

बता देता है। यहाँ तक कि अपनी दोनों पत्नियों के सम्बन्ध में भी अपने विचारों को व्यक्त कर देता है।

१२—स्वप्नवासवदत्तम् का नामकरण

इस नाटक के नामकरण में कवि की सूक्ष्मान्वेषिणी प्रज्ञा का प्रदर्शन है। इसमें स्वप्न का दृश्य अत्यन्त ही भावपूर्ण और नाटकीय महत्त्व से भरा हुआ है। यह स्वप्न पाँचवें अंक में घटित होता है। राजा वासवदत्ता के प्रथम प्रेम में विह्वल होकर उसके रूप-सौन्दर्य के चिन्तन में मग्न है। उसे नींद आ जाती है। वह स्वप्न देखने लगता है। स्वप्न में उसे अपनी प्रियतमा का साक्षात्कार होता है। वासवदत्ता उसके प्रश्नों का उत्तर देती है। इस घटना के पश्चात् राजा को अपनी प्रेयसी के जीवित रहने और कालान्तर में प्राप्त हो जाने की दृढ़ आशा बँध जाती है। स्वप्नोद्भूत यह आशा ही पति-पत्नी के निश्चिन्त साहचर्य का मार्ग प्रशस्त करती है, जो नाटक का अन्त है। कवि इस स्वप्नदृश्य से इतना प्रभावित या प्रसन्न है कि इसी के नाम पर नाटक का नाम रख देता है, जो अत्यन्त उपयुक्त है।

१३—स्वप्नवासवदत्तम् का मूल्याङ्कन

'भास-नाटक-चक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥ राजशेखर (९वीं शताब्दी)

समालोचकों ने भास के नाटकों की परीक्षा के लिए उन्हें समालोचना के अग्नि में तपाया, परन्तु 'स्वप्नवासवदत्त' नामक नाटक उस अग्नि में न जला अर्थात् परीक्षणोपरान्त श्रेष्ठ सिद्ध हुआ।

'स्वप्नवासवदत्त महाकवि भास की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। छह अंकों का सर्वगुणसम्पन्न यह अकेला नाटक ही भास की प्रौढ़ प्रतिभा का पूर्ण परिचय दे देता है। सच बात तो यह है कि रंगमंच की दृष्टि से स्वप्नवासवदत्ता, संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ सफल नाटक है।

इस नाटक की कथावस्तु में उदयन के नायक होते हुए भी कथावस्तु के विकास में मन्त्री यौगन्धरायण विशेष रूप से स्रोत-प्रोत है। 'अवन्तिकुमारी महारानी वासवदत्ता अग्नि-दाह में भस्म हो गई साथ ही मंत्री यौगन्धरायण

मी जल गया' इस प्रवाद के प्रचारित हो जाने के उपरान्त मंत्री की योजना के अनुसार वत्सराज उदयन का मगधराजकुमारी पद्मावती के साथ विवाह हो जाता है और उसके भाई दर्शक की सहायता से उदयन अपने खोए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। बस, इतने से कथानक को कवि ने छह अंकों मे विभाजित तथा नाटक के प्रधान गुणों—घटना की एकता, घटना की सार्थकता, घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा गति, कवित्व, चरित्र-चित्रण और स्वाभाविकता—से मण्डित करके अपनी अलौकिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। डा० सुक्थांकर का परीक्षण बडा ही यथार्थ है—'नाटककार का मुख्य उद्देश्य है, एक ओर तो उस आदर्श रानी के पूर्ण आत्मत्याग को रूपाङ्कित करना जो अपने पति के कल्याणार्थ आनन्दमय सन्तोष के साथ आत्म-बलिदान करती है, दूसरी ओर उसके पति का चित्र खींचना जो हृदय से तो अपने प्रेम (पत्नी-प्रेम) के प्रति निष्ठावान् है परन्तु अनचाहे राज्य-जीवन की आवश्यक माँगों के प्रति आत्मार्पण कर देता है। कहानी का प्रमुख विषय है—अटल, दृढ और अमर प्रेम की विजय, जिसके लिए किसी भी प्रकार का महान् बलिदान साधारण ही है।

नाटक में चरित्रों का उत्तरोत्तर विकास-क्रम बड़ा ही रुचिकर एवं समीचीन है। पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़ी सफाई से किया गया है। नायक 'उदयन' का चरित्र पत्नी-व्रत का पवित्र आदर्श है। वासवदत्ता निःस्वार्थ पतिपरायणा तथा पति-हित के लिए सर्वस्व त्याग देने वाली आदर्श पत्नी है। उसी प्रकार उच्च विचारों वाली राजकुमारी पद्मावती भी नारी-जगत् का शृंगार है।

भास के नाटको में रसाभिव्यक्ति बड़े ही शिष्ट एवं परिष्कृत ढंग से हुई है। स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक एवं चारुदत्त आदि नाटकों मे मुख्यतया शृगार तथा करुण रस का परिपाक विशेष रूप से हुआ हैं। करुण रस का प्रवाह देखने के लिए प्रतिमा-नाटक पर्याप्त है। दूतघटोत्कच, दूतवाक्य तथा ऊरुभंग मे वीर रस का पूर्ण परिपाक देखने को मिलता है। विभिन्न नाटकों में विदूषक की उक्तियाँ सहज ही हास्य रस का स्रोत बहा देती हैं। उनके नाटकों का हास्य पूर्ण रूप से परिष्कृत एवं संयमित है। भास

ने अपने तेरह नाटकों में २४ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है और श्लोकों की कुल सख्या १०९० है, जो भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य के बराबर है। समस्त नाटकों में ४३७ अनुष्टुप्, १७९ वसन्ततिलका, ९२ शार्दूलविक्रीडित, ९१ उपजाति तथा ७२ मालिनी छन्दों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने वैश्वदेवी सुवदना, दण्डक, वैतालीय आदि अप्रचलित छन्दों का प्रयोग भी अपनी कृतियों में किया है। भास की लोकोक्तियाँ बड़ी मार्मिक हैं—

'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः', 'न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि', 'स्त्रीस्वभावस्तु कातरः', 'प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते'।

'भास के नाटकों की संख्या तथा उनके वर्ण्य विषय की विविधता से स्पष्ट मालूम होता है कि उनकी प्रतिभा मौलिक थी तथा उनका मस्तिष्क अत्यन्त उर्वर था।'—जैकोबी का यह कथन बहुत ही न्याय-संगत एवं समीचीन है। यद्यपि व्याकरण तथा साहित्य-शास्त्र के अनुसार भास के नाटकों में कतिपय त्रुटियाँ पायी जाती हैं तथापि वे संस्कृत नाटककारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी शैली बड़ी ही सहज है। मधुर शब्दावली, भावों का सीधा प्रवाह तथा रसों का पूर्ण परिपाक उनकी अपनी विशेषता है। कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं। कालिदास, भवभूति आदि नाटककारों की भाँति उनमें कल्पना की उड़ान नहीं है, प्रत्युत उनके नाटकों में मानव-जीवन की उदात्त विवेचना सहज ही प्राप्त होती है। उच्च से उच्च भावों को सरल से सरल भाषा में व्यक्त कर देना उनकी प्रमुख विशेषता है—

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यदाः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥ (स्वप्न० ४,९)

निम्न विशेषतायें भास की कीर्ति-कौमुदी को सर्वदा अक्षुण्ण रखने में पूर्ण शक्त हैं—

१. अनेक तथा विविध-प्रकार के नाटकों की रचना।

२. प्राचीन तथा पौराणिक कथानक को अभिनव कल्पना से अनुरञ्जित करके मौलिक रूप देना।

३. मानव-जीवन की उदात्त विवेचना।

४. प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण।

५. नाटकों में पुरुष पात्रों की बहुलता है।

६. पाठक के अन्तःपटल पर भावों का स्पष्ट प्रभाव डालने की पूर्ण क्षमता।

७. वैयक्तिक स्वभाव तथा गुणो का विशिष्ट निरूपण।

८. पवित्र तथा उच्चादर्शों की स्थापना।

९. अभिनेय नाटकों की रचना।

१०. संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम एकांकी तथा दुःखान्त नाटक लिखना।

भास की नाट्यकला

संस्कृत नाट्य साहित्य में किसी भी अन्य नाटककार का इतने विस्तृत क्षेत्र मे प्रवेश नहीं है जितना भास का। उनके द्वारा पुराण-इतिहास, महाभारत, आख्यायिका ग्रन्थ और लोक में प्रचलित कथानको का अपने नाटकों में उपयोग किया गया है। अब तक के प्राप्त साहित्य में वे संस्कृत के सर्वप्रथम नाटककार कहलाने के अधिकारी हैं। उनके नाटकों मे मौलिकता तथा कल्पना-वैचित्र्य विशेष रूप से पाया जाता है। भरतमुनि प्रतिपादित नाट्यशास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से पालन न होते हुए भी उनके नाटक अत्यन्त रोचक हैं तथा रंगमच की दृष्टि के विशेष सफल हुए हैं। भास के नाटको में ये विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं—

१—भाषा की सरलता।

२—अकृत्रिम शैली।

३—वर्णनों में यथार्थता।

४—नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य और नाटकीय गुणप्रवाह।

५—सजीवता एवं शक्तिमत्ता।

रामायण के आधार पर रचित प्रतिमा नाटक में भास की मौलिकता और कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है। महाभारत के आधार पर लिखित नाटक उनकी कल्पना-शक्ति तथा रमणीयता के द्योतक हैं। इन नाटकों में वीर

रस की अभिव्यक्ति में भास को अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। इनके नाटकों में नव रसों का अस्तित्व लक्षित होता है। वीर, शृंगार तथा करुण ये नाटकों में अंगी हैं। विदूषक द्वारा हास्यरस की स्थिति बनी रहती है। अन्य रसों का भी यथावसर समावेश रहता है। जयदेव के अनुसार वे कविता-कामिनी के हास हैं। भले ही हास्यरस अंगी न हो पर उसका वर्णन अत्यन्त उदात्त है। उदाहरणार्थ-प्रतिज्ञायौगन्धरायण का विदूषक उद्धत हास्य का प्रदर्शन करता है तो स्वप्नवासवदत्तम् के विदूषक में सुकुमार हास्य के दर्शन होते हैं। इस प्रकार इनके नाटकों में हास्य एवं व्यंग्य प्रचुर मात्रा में मिलता है।

भास के सभी नाटक अभिनय की दृष्टि से अत्यंन्त सफल हैं। संस्कृत के अन्य नाटक भले ही अभिनय के लिए पूर्णतः उपयुक्त न हों पर भास की ऐसी स्थिति नहीं है। उनके नाटक सभी दृष्टियों से अभिनेय हैं। कथानक, पात्र, भाषा, शैली, देशकाल, संवाद आदि सभी तत्त्व इसकी अभिनेयता के अनुकूल हैं। बाद के नाटकों में पाई जाने वाली कृत्रिमता उनके नाटकों में नहीं हैं। लम्बे-लम्बे समास तथा अलंकारों की भरमार नहीं है। भास ने ही संस्कृत में सर्वप्रथम एकांकी नाटक लिखा है। उनके एकांकी ये हैं :—

दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, ऊरुभंग, कर्णभार तथा मध्यमव्यायोग।

भास पात्रों के चरित्र-चित्रण में अत्यन्त कुशल हैं। उन्होंने सर्वत्र उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया है। पात्रों का चरित्र उज्ज्वल प्रदर्शित करने के लिए कथानक में परिवर्तन करने में भी वे संकोच नहीं करते। नायक-नायिका, अमात्य, विदूषक, कञ्चुकी, गणिका आदि सभी का उन्नत चरित्र दिखाया गया है। उनके प्रत्येक पात्र का अपना व्यक्तित्व है। इन नाटकों में पुरुष-पात्रों की अधिकता है।

पात्रों के संवादों में भी भास की कुशलता दिखाई पड़ती है। संवाद प्रायः लघु हैं। सरस तथा प्रसमस्त भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटक देखने वाले परिष्कृत और अपरिष्कृत दोनों प्रकार के होते हैं। अतः नाटककार को ऐसी भाषा लिखनी चाहिये जो सरस तथा भावाभिव्यञ्जन में समर्थ हो। इस

दृष्टि से भास सफल हैं।[1] भास कहीं-कहीं नाटकीय पात्रों का संवाद श्लोक में ही कराते हैं। एक ही श्लोक में एक पाद या उपपाद को एक पात्र बोलता है और दूसरे को दूसरा। इस प्रकार संवाद एक ही श्लोक मे पूर्ण हो जाता है। इस सम्बन्ध में प्रतिमा नाटक, अंक तृतीय का निम्न प्रथम श्लोक द्रष्टव्य है--

भरतः--पितुर्मे को व्याधिः ।
सूतः—हृदयपरितापः खलु महान् ।
भरतः--किमाहुस्तं वैद्याः ।
सूतः--न खलु भिषजस्तत्र निपुणाः ।
भरतः--किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि,
सूतः--भूमौ निरशनः।
भरतः--किमाशा स्याद्,
सूतः--दैवं
भरतः--स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥१॥

उनके नाटकों मे संवाद तथा उत्तर प्रत्युत्तर अत्यन्त संक्षिप्त एवं प्रभावोत्पादक हैं। उनके वर्णन बड़े सजीव एवं यथार्थ हैं। जैसे सन्ध्या, रात्रि, तपोवन मध्याह्न आदि के वर्णन सूक्ष्म अन्वीक्षण के परिणाम प्रतीत होते हैं। इन वर्णनों में यथार्थता, सजीवता एवं शक्तिमत्ता के दर्शन होते हैं। उनका प्रयोग कथानक में प्रसंगोपात्त होने पर ही किया है। पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा आकार-वृद्धि के लिए नहीं।

भास के नाटकों मे अलंकार-विधान भी दर्शनीय है। उपमा, उत्प्रेक्षा अर्थान्तरन्यास, स्वभावोक्ति, परिसंख्या आदि अलंकारों का अत्यन्त सफल प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने कई नाटकों में प्रथम अंक के प्रथम श्लोक में ही मुद्रालंकार का प्रयोग किया है अर्थात् नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम का भी मंगलाचरण में उल्लेख कर दिया है। जैसे 'स्वप्नवासवदत्तम् का प्रारम्भिक श्लोक है:—

१—महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने भास की रचना की इस प्रकार प्रशंसा की है :—

'The sentences are evrywhere replete with a wealth of ideas beautifully expressed, which cultured minds appreciate, Critical study, P. 27

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्तावलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥

इस श्लोक में वासवदत्ता, उदयन, वसन्तक तथा पद्मावती आदि प्रमुख पात्रों की सूचना अत्यन्त निपुणता से दे दी गई है।

इन नाटकों में पताकास्थान की योजना द्रष्टव्य है। इसके द्वारा आश्चर्य-भावना उत्तेजित होती है। जैसे 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में महासेन अपनी रानी के साथ परामर्श कर रहे हैं कि वासवदत्ता के उपयुक्त कौन वर है? उसी समय सहसा कंचुकी प्रविष्ट होकर कहता है 'वत्सराज' अर्थात् उदयन। वह कहना चाहता था कि वत्सराज बन्दी बनाकर लाया गया है। "नाटक की सफलता के लिए उनमें ६ गुणों की सत्ता आवश्यक होती है—(१) घटना की एकता, (२) घटना की सार्थकता (३) घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा गति, (४) चरित्र चित्रण में व्यक्तिवैचित्र्य, (५) स्वाभाविकता, (६) कवित्व। ये सभी गुण भास के नाटकों में उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक नाटक की कथावस्तु को इस प्रकार प्रभावोत्पादक घटनाओं से विकसित किया गया है कि उनमें स्वाभाविकता और गतिशीलता के साथ ही साथ रसपरिपाक भी समुचित रूप से होता गया है। ऊपर दिये गये तर्क भास को एक कुशल और सफल नाटककार सिद्ध करते हैं।

पात्रों का चरित्र-चित्रण-वैशिष्ट्य

भास के द्वारा सभी प्रकार के पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया गया है। धीरोद्धत, धीरोदात्त, धीरललित, दैवी, आसुरी, सब सभी प्रकार के पात्र इन नाटकों में मिलते हैं। बात के अनुसार भास के नाटकों में बहुत से पात्रों का समावेश हुआ है। पर विशेषता यह है कि कथानक में एक भी पात्र अनावश्यक (फालतू) नहीं मालूम पड़ता। उनके पात्रों का वर्गीकरण अत्यन्त विस्तृत है। सभी वर्ग के पात्र इसमें समाविष्ट हैं। पशु-पक्षी तक पात्र कोटि में आते हैं। मानवों में भी सभी स्तर के पात्र हैं। उनकी यह एक बड़ी विशेषता है कि जिस वर्ग के पात्र की सृष्टि की है, उसमें तदनुरूप गुणों

का सफलतापूर्वक सन्निवेश किया है। उदाहणार्थ देव के पात्र में देवत्व का पूर्णतया समावेश किया है। वैसे ही दानव वर्ग के पात्र में दानव के अनुरूप सभी गुणदोषों को दिखाया है। पात्रों के अशिष्ट व्यवहार को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि पाठकों की सहानुभूति उस पर हो। भास पात्रों को उज्ज्वल दिखाने के उद्देश्य से लोक-प्रसिद्ध कथानकों में भी परिवर्तन करने से नहीं हिचके हैं। उदाहरणार्थ ब्राह्मण का शाप सत्य करने के लिए कैकेयी ने राम के लिए वनवास का वर महाराज दशरथ से माँगा था।

नाटक के अनुकूल ही उन्होंने नायक का चयन किया है। प्रत्येक पात्र का सजीव अंकन हुआ है। कृत्रिमता लेशमात्र भी नहीं है। कथोपकथन में उनकी कुशलता दृष्टिगोचर होती है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक मनोगत भाव को सरल भाषा में व्यक्त किया गया है। परिस्थिति के अनुकूल पात्र की भावदशा का ज्ञान भास को भली-भाँति है। दर्शक को सर्वत्र परिचित व्यक्ति तथा वातावरण दिखाई पड़ेगा। उनके पात्र सामान्य धरातल पर अवस्थित हैं। बुरे पात्रों में भी यथासम्भव आदर्श गुणों का ही सन्निवेश किया गया है। भरत आदर्श भाई हैं, वासवदत्ता तथा पद्मावती आदर्श सपत्नियाँ हैं। सुमंत्र यौगन्धरायण आदर्श अमात्य हैं। उदयन तथा चारुदत्त आदर्श प्रेमी हैं। सर्वत्र आदर्श ही आदर्श है। अपनी उत्कृष्टता एवं विशदता के कारण ये सदैव चिरस्मरणीय रहेंगे।

१४—भास की शैली

भास के नाटकों की शैली का अपना एक विशेष महत्व है। इनकी शैली में

(१) व्यञ्जकता तथा प्रभावोत्पादकता—का मणिकाञ्चन संयोग है। गंभीर तथा रसपेशल भावों को छोटे-छोटे वाक्यों में अभिव्यक्त करने की उनकी अद्भुत क्षमता है। महाकाव्य में लम्बे समासयुक्त दुरूह पदों की योजना भले ही महत्वपूर्ण हो पर नाटक में सरल और छोटे वाक्य ही समादृत होते हैं।

(२) गुण व रीति—भास की शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुण पाये जाते हैं। उनके नाटक समास-बाहुल्य-विलिष्टता, अस्वाभाविकता आदि दोषों से सर्वथा मुक्त हैं। भाषा में सरलता, सरसता, सुबोधता तथा स्वाभाविकता

और प्रवाहमयता के दर्शन होते हैं । भास अपने भावों की अभिव्यक्ति में इतने कुशल हैं कि कहीं भी विवक्षित भाव दब नहीं सकता। अवसर के अनुकूल वे अपनी शैली में ऐसा मोड़ ला देते हैं जो प्रभावात्मकता तथा व्यञ्जकता की वृद्धि में सहायक हो । अभीष्ट अर्थ का थोड़े शब्दों एवं सरल भाषा में बोध कराने की उनमें अद्भुत क्षमता है ।

(३) सरलता--भास की यह एक बड़ी विशेषता है कि वे अलंकार रहित सरल भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं । इसी गुण के कारण दर्शक का हृदय उनके नाटकों की ओर बरबस खिंचता है । उनके कथोपकथन में उनकी शैली की विशेषता दृष्टिगोचर होती है । इस प्रसंग में प्रतिज्ञायौगन्धरायण मे यौगन्धरायण तथा भरतरोहक के संवादों का उदाहरण द्रष्टव्य है। वार्तालाप के मध्य कभी-कभी ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ आ जाती हैं जिससे नाटक में रसाभिवृद्धि हो जाती है । उदाहरणार्थ अभिषेक नाटक मे रावण द्वारा सीता से पूछे जाने पर कि 'इन्द्रजित ने राम और लक्ष्मण को मार डाला । अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ।' उसी समय एक राक्षस आकर कहता है 'राम' । यद्यपि वह यह कहना चाहता था कि 'राम ।ने इन्द्रजित् को मार डाला ।' इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं । ऐसी आकस्मिक उक्तियाँ भास की अपनी विशेषता है।

(४) वर्णन-कुशलता--भास द्वारा अपने वर्ण्यविषय बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किये जाते हैं । विस्तृत विवरण उन्हें रुचिकर नहीं हैं। चारुदत्त नाटक मे दरिद्रता का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एवं बारीक है । यदि वे किसी दृश्य का वर्णन करने लगते हैं तो उसका चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है जिससे पाठक दर्शक मुग्ध और तल्लीन हो जाते हैं । उदाहरणार्थ प्रतिमा नाटक में राज्याभिषेक का वर्णन, क्रुद्ध लक्ष्मण का कथन, भरत का कैकेयी को धिक्कारना आदि का सूक्ष्म एवं स्वाभाविक चित्र खींचा गया है । स्वप्नवासवदत्तम् की यह पंक्ति 'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः' अर्थात् लोगों का भाग्यचक्र पहिये के अरों के समान क्रमानुसार घूमता चलता है । कितना स्वाभाविक

एवं हृदयग्राही है। इसी प्रकार सन्ध्या[१]-वर्णन, मध्य[२] रात्रिवर्णन, कृष्ण[३] रात्रि-वर्णन, मध्याह्न वर्णन, वनवर्णन, तारुण्य-वर्णन आदि में भास की सफलता दर्शनीय है।

(५) भावों का व्यक्तीकरण—भास के नाटक भारतीय भावों से ओत-प्रोत हैं। इनमे पितृ[४] भक्ति, भ्रातृप्रेम, पातिव्रत्य, क्षमाशीलता, त्याग आदि का आदर्श प्रचुर मात्रा मे पाया जाता। उदाहरण—

अनुचरति शशांकं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पंकलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ प्रतिमा० ॥१.२५॥

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम्। प्रतिमा० ६.६ ॥
अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम्। स्वप्न० अंक ३ ॥

---

(१) पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ अवि० २। १२

तथा

खगा वासोपेता सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥स्वप्न० १ ।१६ ॥

(२) तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।
तमसि दशदिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥ अवि० ३॥४॥

(३) लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ चारुदत्त ॥१॥१६ ॥

(४) स्वः पुत्रः कुरुते पितुर्यदि वचः कस्तत्र भो विस्मयः ॥ प्रतिमा ॥१।५॥

(६) सरलता और रम्यता—भास के नाटक सरलता और रम्यता के कारण अत्यन्त लोकप्रिय बन गये हैं । स्वप्नवासवदत्तम् का यह श्लोक देखिये:—

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्त्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥४६॥

(७) भाषा—इनकी भाषा प्रसादगुणसंयुक्त ।[१] रसपेशलता, भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति, मनोरंजकता, गंभीरता, औदात्य, तथा माधुर्य इनकी शैली के गुण हैं । अवस्था तथा पात्र के अनुसार उग्रता एवं संयम का प्रयोग इनके नाटकों की विशेषता है । हास्य की सम्यक् योजना भी इनकी शैली की सफलता का कारण है । एक ओर तो इस प्रकार की सरल भाषा का प्रयोग है—

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ॥ प्रतिमा० ५-१४ ॥

दूसरी ओर समयानुकूल भाषा क्लिष्ट एवं कठोर वर्णों से युक्त है । जटायु के घातप्रतिघात से क्रुद्ध होकर रावण कहता है—

मद्भुजाकृष्टनिस्त्रिंशकृत्तपक्षक्षतच्युतैः ।
रुधिरैरार्द्रगात्रं त्वां नयामि यमसादनम् ।। प्रतिमा० ॥५-२२

भास का व्यंग्यप्रयोग असाधारण एवं मार्मिक होता है । कैकेयी के ऊपर किया गया व्यंग्य कितना कठोर है—

अनपत्या वयं रामः पुत्रोऽन्यस्य महीपतेः ।
वने व्याघ्री च कैकेयी त्वया किं न कृतं भयम् ॥ प्रतिमा० ॥२-८॥

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने उनकी वाक्यसंघटना की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । उनके अनुसार भास की तुलना अन्य किसी कवि से नहीं की जा सकती । पात्रों के चरित्रचित्रण में वे इतने कुशल हैं कि वास्तविकता का भान तक नहीं होता । वे भारतीमुनि के आचार्य हैं । उनकी भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है, सरस, उच्छन्द गति है तथा वह भाव, रस, देश-काल एवं पात्रों की अनुगामिनी है ।

१—महाकवि भास—एक अध्ययन—पृष्ठ १३०
आचार्य बलदेव उपाध्याय

(८) स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता—भास की शैली में कृत्रिमता का अभाव है। उसमें स्वाभाविकता है। उनकी दृष्टि मे समासरहित भाषा गद्य-साहित्य मे उच्च आसन पा सकती है। उन पर रामायण का प्रभाव लक्षित होता है। उन्होंने अलकारों पर विशेष बल नही दिया है। वे रसाभिव्यक्ति तथा भावव्यंजना को ही विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। उनकी शैली की प्रशंसा महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने की है। वे इन नाटको की शैली को अद्वितीय समझते हैं।[1] उन्होंने उद्दाम भावनाओ का अत्यन्त सशक्त वर्णन किया है। आपत्तियो का सजीव चित्र खीचने मे वे बड़े कुशल है। नाटको मे अलकारो का प्रयोग अभिनेयता मे बाधक होता है अतः उनकी ओर विशेष ध्यान नही दिया गया।

भास को मानवीय मनोवृत्तियो का पूर्ण ज्ञान था। उनका मनोवैज्ञानिक विवेचन उच्चकोटि का है। *स्वप्नवासवदत्तम्* के चतुर्थ अक के षष्ठ श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे मनोभावों के सच्चे पारखी थे।

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःख नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद्विमुच्येह बाष्प
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥

और भी प्रथम अक का सप्तम श्लोक :—

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते।

(९) व्याकरणविषयक ज्ञान एवं पाण्डित्य—भास के व्याकरण विषय के ज्ञान एवं शास्त्रीय विद्वत्ता का परिचय यथास्थान प्राप्त होता है। निम्नलिखित श्लोक उनके व्याकरण सबंधी ज्ञान का द्योतक है:—

घनः स्पृष्टो घोरः समदवृषभस्निग्धमधुरः
कलः कंठे वक्षस्यनुपहतसंचाररभसः।

---

1. The superior excellence of sentences, which are not subject to the restriction of verification, is everywhere to be observed in these Rupakas. It really surpasses in grandeur, the style of other works is incomparable.

यथास्थानं प्राप्य स्फुटकरणनानाक्षरतया
चतुर्णां वर्णानामभयमिव दातुं व्यवसितः ।। प्रतिमा० ४-७।।

उनकी शास्त्रीय विद्वत्ता इस श्लोक में द्रष्टव्य है। जहाँ उन्होंने रावण के मुख से कहलवाया है :—

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ।। प्रतिमा० ।।५-७।।
माययापहृते रामे सीतामेकां तपोवनात् ।
हरामि रुदतीं बालाममंत्रोक्तामिवाहुतिम् ।। प्रतिमा० ।।५-१६।।

ये दो श्लोक महर्षि पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य में उद्धृत 'मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या-प्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।।' के आशय को लेकर रावण के मुख से कहलवाया गया है।

अपने भावों की अति संक्षेप में किन्तु प्रभावोत्पादक रूप में रखने की भास की अद्भुत क्षमता निम्नलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है:—
जहाँ राम के प्रति भरत का सारा भाव व्यक्त कर दिया गया है।

निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ।। प्रतिमा० ।।४-५।।

नाटकीय घटनाचक्र का स्थानानुरूप परिवर्तन करना भास की कुशलता का परिचायक है जो सुमंत्र की इस उक्ति में देखी जा सकती है :—

सुग्रीवो भ्रंशितो राज्याद् भ्रात्रा ज्येष्ठेन बालिना ।
हृतदारो वसन् शैले तुल्यदुःखेन मोक्षितः ।। प्रतिमा० ।।६-१०।।

भास की असाधारण प्रतिमा का परिचय उनके नाटकों से प्राप्त होता है। उन्होंने तेरह नाटकों का प्रणयन किया जिनमें कुल मिलाकर १००२ श्लोक हैं। इनमें विभिन्न २४ छन्दों के प्रयोग पाये जाते हैं। कुछ कम प्रचलित छन्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे वैश्वदेवी, सुवदना, दंडक, वैतालीय आदि।

वृत्तरचना में उन्होंने पूर्ण स्वतन्त्रता दिखाई है तथा सर्वथा नये छन्दों का भी प्रयोग किया है।

उनकी लोकोक्तियाँ अत्यन्त मनोहर एवं मार्मिक हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त ये लोकोक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं।

'अनतिक्रमणीयो हि विधिः।' 'आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुष-हृदयानि भवन्ति।' 'न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि।' 'स्त्रीस्वभावस्तु कातरः' आदि।

(१०) प्रकृतिचित्रण—भास का वाह्य प्रकृति और अन्तःप्रकृति दोनों का चित्रण अत्यन्त हृदयग्राही है। प्राकृतिक दृश्यों का उनका सूक्ष्म पर्यवेक्षण है। वे उनका ऐसा सांगोपांग चित्र खींचते हैं कि पाठक उनमें तल्लीन हो जाता है। उनके वर्णन बड़े यथार्थ, रोचक एवं व्यापक हैं। प्रकृति-वर्णन में वे काव्यकारों की भाँति स्वतंत्र नहीं हैं। नाटककार के नाते उनकी परिधि सीमित है। नाटकोपयोगी अंश को ही वे स्थान देते हैं। प्रसंगक्रम से प्राप्त दृश्यों का सूक्ष्म तथा मनोहर वर्णन दर्शक तथा पाठक की चित्तवृत्ति को रसमग्न कर देता है। इस वर्णन में कहीं-कहीं अलंकार-योजना सौन्दर्य तथा रमणीयता में चार चाँद लगा देती है।

उदाहरणार्थ स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक के निम्नलिखित अन्तिम श्लोक में वनप्रान्त की सन्ध्या का वर्णन अवलोकनीय है :—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१-१६॥

अभिषेक नाटक का सूर्यास्त वर्णन देखते ही बनता है :—

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरंजितवपुः प्रतिभाति सूर्यः।

रक्तोज्ज्वलांशुककृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥ ४-२३ ।

चारुदत्त नाटक में रात्रि के सघन अन्धकार का वर्णन कितना हृदयग्राही है:—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ १-१६ ॥
सुखमशरणमाश्रयो भयानां
वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव ।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो
जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः ॥ १-२० ।

इसी प्रकार अविमारक के द्वितीय अङ्क के बारहवें श्लोक में सन्ध्या तथा रात्रि के आगमन का बड़ा ही मनोहर वर्णन मिलता है ।

चारुदत्त मे चन्द्रोदय का वर्णन दर्शनीय है—

उदयति हि शशांकः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः ।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरः
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥ १-२६ ॥

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक मे तपोवन का वर्णन कितना मनोहर है :—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ स्वप्न० १-१२

अभिषेक नाटक में समुद्र का वर्णन राम द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया गया है ।

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद्वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद्भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥ ४-१७॥

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक मे उड़ती हुई बगुलों की पंक्ति का वर्णन करते हुए उदयन कह रहा है :—

> ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
> सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
> निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
> सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ।। ४-२ ।।

भास की रचनाओं में अनेक पद्य प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से भरे पड़े हैं। कुछ उद्धरण दिग्दर्शनमात्र के लिए पर्याप्त हैं। जो भास के प्राकृतिक दृश्यों से घनिष्ठ संबंध की सूचना देते हैं। इन वर्णनो मे प्रकृति के सभी अंगो का समावेश पाया जाता है। प्रकृति के किसी भी रूप के प्रति चाहे वह सुन्दर हो अथवा असुन्दर उनका कोई विशेष पक्षपात नही है। वे प्रसंगवश प्राप्त सभी का यथोचित चित्रण करने मे नहीं हिचकते।

रस—भास की कृतियों में रसों का परिपाक बहुत स्वाभाविक हुआ है। 'नाट्येऽष्टौ रसाः स्मृताः' भरतमुनि के इस सिद्धान्त को भास ने अपनी कृतियों मे पूर्णतया चरितार्थ किया है। जहाँ तक 'वासवदत्तम्' का प्रश्न है, इस नाटक में संयोग और विप्रलंभशृंगार ही आये हैं, जो कि भारतीय नाटक-परम्परा की प्रमुख विशेषता रही है। इसमे शृंगार की अनेकानेक परिस्थितियाँ मर्मस्पर्शी बनकर आती हैं; क्या संचारी भाव, क्या, विभाव, क्या अनुभाव सभी बिना प्रयत्न के पात्रों की नाट्यकला मे अवतरित हुए हैं। रस की पूर्ण अभिव्यक्ति, रसाभास, भावाभास और भावशबलता इस नाट्यकृति के लघुकलेवर में बड़ी सफाई से प्रतिष्ठित कर दिये गये हैं।

पहले अंक से छठे अंक के प्रारम्भ तक केवल विप्रलंभ शृंगार के भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की विविध अभिव्यक्ति वासवदत्ता और उदयन को परस्पर आलम्बन और आश्रय मान कर की गयी है। छठे अंक के समाप्त होते संयोग शृंगार का प्रसंग आता है, जो बहुत कम है। प्रस्तावना के बाद नाटक का प्रारंभ ही विप्रलंभ की परिस्थिति लेकर होता है। यहाँ वासवदत्ता आश्रय रहती है। फिर ब्रह्मचारी के संवादों में कवि-निबद्ध वक्ता

के रूप में उदयन आश्रय रहता है। एक तरह से 'वासवदत्ता' का कथानक और इसका विप्रलम्भ दोनों सहजात हैं और जहाँ उदयन तथा वासवदत्ता के वियोग का अन्त होता है वहीं कथानक पूरा हो जाता है। शत्रुओं का नाश और वत्सराज की प्राप्ति को वासवदत्ता की वियोग-कथा से सम्बन्धित करके भास ने कथावस्तु के संघटन का अद्भुत कौशल दिखाया है। अपने आप आदि से अन्त तक वियोग शृंगार की अभिव्यंजना होती रहती है। इतनी निसर्ग-जात अभिव्यक्ति अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। पद्मावती का विवाह भी वासवदत्ता के विप्रलंभ की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वतः बन जाता है; क्योंकि वासवदत्ता उसी के पास है।

विप्रलम्भ शृंगार के अतिरिक्त शेष रसों में कहीं-कहीं केवल हास्य की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, विदूषक के प्रसंगों में। कहीं-कहीं विप्रलम्भ भी अधिक व्यापक होकर करुण और शान्त रस के रूप में अभिव्यक्त होने लगता है।

भास की रसाभिव्यक्ति में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शब्दावली स्वाभाविक और सरल है। उसमें आडम्बर और कृत्रिमता नहीं है।

विप्रलम्भ शृंगार का यह उदाहरण देखिये—

कामेनोज्जयिनीं गते मयि यदा कामप्यवस्थां गते,
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं,
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः॥ (अंक ४ श्लोक १)

वासवदत्ता के अभाव में उसकी वीणा की जो दुर्दशा हुई उसे देखकर राजा का हृदय वासवदत्ता के अभाव-जनित विप्रलम्भ से अभिभूत हो रहा है—

श्रुतिसुखनिनदे कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषितास्यरण्यवासम्॥
(अंक ६ श्लोक १)

वासवदत्ता के वियोग में उदयन की भावशबलता का यह चित्र देखिये—

महार्हमर्जितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता।

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥ (अंक ६ श्लोक ८)

वासवदत्ता को आश्रय रखकर विप्रलंभ की उतनी अच्छी अभिव्यक्ति नहीं हो पायी है, जितनी उदयन के आश्रय में हो सकी है। वासवदत्ता-आश्रित विप्रलंभ का एक उदाहरण देखिये—

विवाहामोदसङ्कुले चतुश्शाले परित्यज्य पद्मावतीम् इह आगतास्मि प्रमदवनम्। यावत् इदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि। (परिक्रम्य) अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि परकीयः संवृत्तः। यावत् उपविशामि। (उपविश्य) धन्या खलु चक्रवाकवधूः या अन्योऽन्यविरहिता न जीवति। आर्यपुत्रं पश्यामि इति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा। (३ य अंक)

करुणरसाभास के अग सयोगश्रृंगार की यह अभिव्यक्ति भी देखिये; हृदय भाव से आच्छन्न हो उठता है—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥
(अंक ५ श्लोक २)

शान्तरसाभास का यह उदाहरण भी दर्शनीय है—

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥
(अक ५ श्लोक २)

अलङ्कार—'स्वप्नवासवदत्तम्' की भाषा प्रसादगुणयुक्त है। भास ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया है, जो उस समय की प्रायः बोलचाल की ही भाषा प्रतीत होती है। भास अलंकारों के प्रयोग में नहीं उलझे हैं। फिर भी भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में, जैसे नीचे के श्लोक में, वृत्यनुप्रास का अच्छा प्रयोग अपने आप हो गया है—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्त्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥
(अंक ४ श्लोक ३)

वैसे ही भास के स्वाभाविक अर्थ-निबन्धन में उपमा, व्यतिकर, स्वभावोक्ति, परिसंख्या और अर्थान्तरन्यास अलंकार अपने आप जहाँ-तहाँ आ गये हैं। वे भी कवि-निबद्ध नहीं प्रतीत होते, बल्कि पात्रों के संवाद-प्रवाह में घुले-मिले हैं। उपमा का प्रयोग नाटक में कई स्थानों पर आया है। एक उदाहरण देखिये—

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥
(अंक १ श्लोक ४३)

परिसंख्या के साथ अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण कवि की समर्थ वाणी का साक्ष्य देता है—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ (अंक ६ श्लोक १०)

यहाँ पूर्वार्ध में परिसंख्या अलंकार है और उत्तरार्ध में एक सामान्य बात कहकर पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन किया गया है।

उपमा की भाँति ही स्वभावोक्ति भी कई बार नाटक में आया है। एक उदाहरण से भास की स्वभावोक्ति-मञ्जुलता का परिचय मिल जाएगा—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ (अंक ४ श्लोक १६)

तपोवन का यह सायन्तन वर्णन आडम्बर-विहीन होकर भी बहुत ललित है। विशेषतः छन्द का दूसरा तथा तीसरा चरण काञ्चुकीय जैसे साधारण पात्र का प्रकृत संवाद प्रतीत होता है।

व्यतिरेक का भी उदाहरण देखिये—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥ (अंक ४ श्लोक ४)

यहाँ वासवदत्ता को पद्मावती से अधिक सिद्ध करने के लिए उसके मनोहरण रूप विशेष गुण की चर्चा कितने सरस लहजे में कर दी गई है।

नाटक में अनुज्ञा अलंकार का एक उदाहरण भी दर्शनीय है—

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे सदा ॥

यहाँ वासवदत्ता के मनोरम सहवास की कामना से उदयन ने स्वप्न और विभ्रम को भी अत्यधिक आदर दिया है।

भास की आलोचना

भास संस्कृत साहित्य के एक जाज्वल्यमान मणि हैं। नाटककार के रूप में उनकी ख्याति अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। सम्पूर्ण भारत में सुदूर दक्षिण से ध्रुव उत्तर तक तथा पूर्व से पश्चिम तक उनकी कीर्तिपताका फहराती थी। भास के नाटक 'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्' (नाटक भिन्न-भिन्न रुचि वाले व्यक्तियों का एकत्र समाराधन है) कालिदास की इस उक्ति को सम्यक् परिपुष्ट करते हैं। 'नाटकान्तं कवित्वम्' नाटक कवित्व का चरम परिपाक कहा गया है। इसमें लोकत्रय के भावों का समावेश होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर भास का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। नाट्य साहित्य के इतिहास में यह एक चिरस्मरणीय बात है कि अत्यन्त प्राचीन समय में ही भास द्वारा तेरह नाटकों की सफलतापूर्वक रचना की गई जिसकी प्रशंसा महाकवि कालिदास तक ने की है। पहले भास के बारे में कतिपय प्रशस्तियाँ सुनाई पडती थी। लोग उनके नाटकों के स्वरूप से अपरिचित थे। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री द्वारा भास के नाटक प्रकाश में लाये गये। पर उनके विषय मे लिखी हुई प्रशस्तियों से स्पष्ट है कि नाटककारों मे उनका विशिष्ट स्थान बहुत पुराने समय से रहा है तथा लब्ध-प्रतिष्ठ कवि भी उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। बाणभट्ट, दण्डी, जयदेव, वाक्पतिराज, राजशेखर आदि ने, भिन्न-भिन्न समय में होते हुये भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वास्तव मे वे संस्कृत के प्रथम नाटककार माने जाते हैं। परवर्ती सभी नाटककार उनके ऋणी हैं। उनको भास से ही नई दिशा मिली है।

भारतीय मनीषियों के अतिरिक्त पाश्चात्य आलोचकों ने भी भास की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। पाश्चात्य आलोचक याकोबी का कथन है 'भास के

नाटकों की संख्या तथा उनके वर्ण्यविषय की अनेकरूपता से स्पष्ट द्योतित होता है कि उनकी प्रतिभा कितनी मौलिक तथा उनका मस्तिष्क कितना कर्मशील था।" गणपतिशास्त्री के अनुसार—

The unrivalled merit of Bhasa lies in the deliberation of the real nature of things in their varied conditions by sweet, apt and lucid words suggestive of lofty ideals. In the Pratima the central sentiment is Dharmavira manifesting itself in the enthusiasm displayed by the hero cherishing the single thought of carrying out the Dharma fulfiling the mandates of his father."

इतना होते हुए भी उनके सभी नाटकों में एक-सी नाट्य-कुशलता नहीं दिखाई देती। रामायण से सम्बद्ध नाटकों का कथासविधान अत्यन्त शिथिल है पर महाभारत से संबद्ध नाटक भास की प्रौढ प्रतिमा के परिचायक हैं। प्रतीत होता है कि महाभारत सबंधी इतिवृत्तों में उनका मन विशेष रमा है। उदयन से संबंध रखने वाले नाटकों मे उनको सबसे अधिक सफलता मिली है। इसीलिए स्वप्नवासवदत्तम् एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायण उनके उच्चकोटि के नाटक हैं जो बाद में हर्ष द्वारा अपनी रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नाटिकाओं के आधार बनाये गये हैं। संस्कृत नाटको का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति उत्पन्न करना होता है। इसी से यहाँ काव्यत्व अधिक पाया जाता है। भास के कवित्वपूर्ण श्लोक नाटकीय घटनाचक्र को गति देने में सहायक होते हैं। उनके संवादों की समासरहित सरल भाषा और पद्यों की प्रसंगानुकूल भावात्मकता से नाटको की प्रभावोत्पादकता में वृद्धि होती है। भास की शैली प्रसादगुणयुक्त है पर वीररस के वर्णनों में ओज का भी दर्शन होता है। शृंगार और वीररस की अभिव्यक्ति में उन्हें सफलता मिली है। उनके पात्रों के चरित्र सर्वत्र उदात्त है। नायक-नायिका, अमात्य-विदूषक, कंचुकी, सेवक आदि सभी पात्र उन्नत चरित्र के ही प्रदर्शित किये गये हैं। उनके नाटक रसपरिपाक की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। वीर, शृंगार तथा करुण ये तीन रस प्रायः अंगी बन कर आये हैं। अन्य रसों का भी प्रयोग अवसरानुरूप किया गया है। उनके नाटको में विभिन्न प्रकार की छन्द योजना दिखाई पड़ती है। अलंकारों का विधान भी यथावसर सफलतापूर्वक किया गया है। सुन्दर से सुन्दर उपमायें उनके नाटकों में मिल सकती है।

अभिनेयता की दृष्टि से उनके नाटक अत्यन्त सफल रहे हैं। कथानक, पात्र, भाषा, शैली, देश-काल, संवाद आदि सभी तत्त्व इनमें पाये जाते हैं तथा अभिनेयता के अनुरूप हैं। उनकी शैली में व्यंजकता तथा प्रभावोत्पादकता का मणिकांचन योग है। वे सरल एवं सूक्तियों से युक्त भाषा के प्रयोग में कुशल हैं। उनकी भाषा पर्वतनिर्झरिणी के समान स्वाभाविक गति से प्रवाहित होती है। उनमें किसी प्रकार की तड़क-भड़क नहीं है। कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है तथा वह भाववहन में समर्थ है। महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने भास की वाक्यरचना की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

"The sentences are everywhere replete with a wealth of ideas beautifully expressed, which cultured minds appreciate."

भास प्रकृतिचित्रण में अत्यन्त दक्ष हैं। प्राकृतिक दृश्यों का उनका निरीक्षण बहुत सूक्ष्म है। उन दृश्यों का ऐसा सांगोपांग चित्र खींचते हैं कि पाठक की चित्तवृत्ति उनमें पूर्णतया रम जाती है। वे उनका पूर्ण बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करते हैं। नाटककार के रूप में सीमित परिधि के भीतर ही उन्होंने प्रसंग-प्राप्त दृश्यों का अत्यन्त सूक्ष्म तथा मनोहर वर्णन किया है। (आलोचना संबंधी विस्तृत जानकारी के लिए 'भास की नाट्य-कला' तथा 'भास की शैली' शीर्षक लेख द्रष्टव्य हैं।)

भास की त्रुटियाँ—भास अत्यन्त प्राचीन नाटककार हैं अतः उनकी कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं जो दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करती हैं। कालिदास के नाटकों में जो प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है वह भास के नाटकों में उतनी उत्कृष्टता के साथ नहीं। उनकी कतिपय नाटकीय त्रुटियाँ ऐसी हैं जिनका उत्तरदायित्व भास पर ही है। उनकी शैली संक्षिप्त है जिसके फलस्वरूप कतिपय स्थलों पर उसका भाव अस्पष्ट हो गया है। जैसे प्रतिमा नाटक के तृतीय अंक में—कैकेयी-भ्रात, सुन्कलुषमा मनु प्रष्टव्या' का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। अभिसरो, प्राणिधर्मम् अनुयात्रम् क्रियामापूर्यम्, महाकच्छः आदि अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। भास के कितने ही ऐसे

१—आपृच्छामि भवन्तौ।

२—साधुजनहस्तगतेयं नोत्कण्ठिष्यति।

प्रयोग हैं जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं 'स्मराम्यव—न्त्याधिपतेः सुतायाः' में अनियमित सन्धि है। कुछ स्थलों पर परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद और आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैपद प्रयुक्त हुआ है। यथा-परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद का प्रयोग 'अपरिचयात्तु न शिल्प्यते मे मनसि'। आत्मनेपद के स्थान में परस्मैपद का प्रयोग 'आपृच्छामि भवन्तौ'। कहीं-कहीं पर अनियमित समास दिखाई पड़ता है—एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानाम्।

इनके अतिरिक्त अकर्मक धातुओं का सकर्मक की भाँति प्रयोग, प्रेरणार्थक के लिए साधारण का प्रयोग तथा अनियमित प्रत्यय का प्रयोग भी भास की रचनाओं में मिलता है। इन प्रयोगों के लिए यह कहा जा सकता है कि भास के समय तक पाणिनि-व्याकरण पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित और मान्य नहीं था। संभव है उस समय अपाणिनीय प्रयोग चालू रहे हों। छन्दोभंग के निवारणार्थ कतिपय व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ रह जाना संभव है।

भास ने काल की अन्विति पर ध्यान नहीं दिया। घटनाओं में दीर्घकालीन समय बिखरा रहता है। स्वप्नवासवदत्तम्, बालचरित, चारुदत्त आदि नाटकों में कालान्विति का अभाव लक्षित होता है। नाटकों में कञ्चुकी, धात्री और चेटी आदि का प्रवेश शीघ्रता से कराया गया है। यद्यपि कथानक में तीव्रता लाने के लिए ऐसा किया गया है तथापि इनका आधिक्य अवांछनीय है। आकाशभाषित का प्रयोग भी खटकने वाला है। इसमें निरर्थक विस्तार होने से बच जाता है पर वास्तविकता से दूर होने के कारण प्रभावशालिता नहीं रह पाती।

रंगमंच पर अनुपस्थित पात्रों द्वारा भाषण कराना अस्वाभाविक है। उदाहरणार्थ प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन का वासवदत्ता को लेकर भाग जाने की सूचना ऐसे व्यक्ति द्वारा मिलती है जो रंगमंच पर नहीं है। भास के नाटकों में ऐसे स्थलों की कमी नहीं है।

भास के नाटकों में कुछ चिरपरिचित उपमाओं तथा रूपकों का कई बार प्रयोग किया गया है जिनसे वे परम्परा से प्राप्त लगते हैं।

दक्षिण भारत के प्रदेशों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान बहुत सीमित था। रामकथा वर्णन में रामेश्वरम् जैसे तीर्थ का उल्लेख नहीं किया गया है जिससे

इस बात की पुष्टि होती है। प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत का जो कुछ भी उन्हें ज्ञान है वह प्रसिद्ध ग्रंथों पर ही आधारित है।

दूतवाक्य में कृष्ण के मुख से तथा पंचरात्र मे द्रोण के मुख से अपशब्द कहलवाना शोभा नही देता। अविमारक में पराक्रमी नायक-नायिका का आत्म-हत्या के लिए प्रस्तुत होना तथा प्रतिमानाटक में राम का वन जाते समय अपने पिता दशरथ से न मिलना एक ऐसी त्रुटि है जो पाठक एव दर्शक को खटकती है। पर उनकी ये न्यूनताएँ उनके विशाल साहित्य को देखते हुए नगण्य हैं। इन दोषों के कारण भास के महत्त्व मे किसी प्रकार की कमी नहीं हो सकती। वे एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र हैं जिनका प्रकाश देश तथा काल से परे है। ये दोष इतने साधारण हैं कि उनके गुणो के प्रकाश में विलीन हो जाते हैं।

भासविषयक प्रशस्तियाँ

भास की महनीयता

भास उन प्रसिद्ध नाटककारों में से हैं जिनकी प्रशंसा संस्कृत के प्राचीन कवियों तक ने की है। महाकवि कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक मे भास का उल्लेख इस प्रकार किया है—

(१) 'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।

अर्थात् लब्धप्रतिष्ठ भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों के प्रबन्धों को त्याग कर वर्तमान कवि कालिदास की रचना का इतना सम्मान कैसे (हो रहा है)?

महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित मे भास की इस प्रकार प्रशंसा की है :—

(२) सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

अर्थात् सूत्रधार से प्रारम्भ किये गये बहुत भूमिका वाले तथा पताका से सुशोभित देवालयों की भाँति भास ने अपने नाटकों द्वारा बहुत कीर्ति पाई।

भास के सम्बन्ध में राजशेखर का निम्नलिखित कथन है :—

(३) भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।।

अर्थात् भास के नाटकों की परीक्षा करने के लिए उन्हें विद्वानों द्वारा (समालोचनारूपी) अग्नि में डालने पर अग्नि स्वप्नवासवदत्तम् को न जला सका। इससे यह बात सिद्ध होती है कि भास की सभी रचनाओं में स्वप्नवासवदत्तम् ही श्रेष्ठ है। इसी से उनकी कीर्ति अद्यावधि अक्षुण्ण है।

(४) दण्डी ने सातवीं सदी के उत्तरार्ध में अपनी कृति अवन्तिसुन्दरी कथा की भूमिका के ग्यारहवें श्लोक में भास को नाटकों रूपी शरीर द्वारा अवस्थित माना है :—

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ।।

अर्थात् भास दिवंगत होते हुए भी मुख आदि अवयवों के समुचित विभाजन वाले तथा लक्षण और वृत्ति की उचित व्यवस्था वाले नाटक रूपी शरीर से अब भी जीवित हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे मुख आदि इन्द्रियों तथा वृत्तियों द्वारा शरीर का स्पष्ट दर्शन तथा उसकी सत्ता स्वीकार की जाती है, उसी प्रकार मुख आदि संधियों व अंकों के समुचित विभाजन के साथ नाटकीय लक्षणों एवं वृत्तियों की उचित व्यवस्था से विभूषित नाटकों की रचना करके भास अमर हो गये हैं।

(५) वाक्पतिराज ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'गउडवहो' में भास को जलणमित्त (ज्वलनमित्र) पद से अभिहित किया है :—

भासम्मि जलणमित्ते कुन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारिअन्दे अ आणंदो ।।
(भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ।।)

वाक्पतिराज का भास को 'ज्वलनमित्र' की उपाधि से विभूषित करना सर्वथा उपयुक्त है। भासरचित नाटकों की कथा में वर्णित अग्निदाह के दृश्य अनेक हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में लावाणकग्राम में अग्निदाह, पंचरात्र

में दावानल, अभिषेक नाटक में सीता का अग्नि-प्रवेश, अविमारक में नायक का स्वयं को अग्नि में फेंकने इत्यादि सर्वत्र अग्निदाह का वर्णन है पर सभी नाटकों में यह सहायक ही सिद्ध हुआ है। कहीं भी हानिकारक नहीं।

कथा का विकास होकर उदयन की राज्यप्राप्ति, सीता के सतीत्वरक्षा की घोषणा, अग्नि-स्फुलिंगों का चन्दनशीतल होना ये सब अग्निदाह के ही परिणाम हैं। इस प्रकार आग सर्वत्र मित्र बनकर व्यवहार करती रही है। अतः भास को ज्वलनमित्र (आग का मित्र) कहना सर्वथा युक्ति-संगत है। प्रसन्नराघव-कार जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास माना है।

(६) भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।

भास का हास तथा कविकुलगुरु कालिदास का विलास प्रशंसनीय है।

हास्यरस का चरम परिपाक भास के नाटकों में उपलब्ध होता है। वासवदत्तम् अविमारक आदि में वसन्तक का हास केवल आमोद-दायक ही नहीं है अपितु चिन्तित क्षणों में जीवनी शक्ति का भी संचार कर देता है। *हास्यरस के प्रयोग में भास सर्वोत्कृष्ट हैं। श्लिष्ट, साधारण एवं अनिन्द्य* हास्य प्रस्तुत करने में कोई भी कवि उनकी समानता नहीं कर सकता।

भास के बालचरित नाटक[1] की भूमिका में अज्ञात श्लोक उद्धृत किया गया है:—

(७) भासमानमहाकाव्यः कृतविंशतिनाटकः।
अनेकान्तविधाता च मुनिर्भासोऽभवत्कविः॥

इस श्लोक में भास को बीस नाटकों का रचयिता कहा गया है तथा अनेकान्तविधाता और उज्ज्वल महाकाव्यों के रचयिता भासमुनि नाम से अभिहित किया गया है।

(८) आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थ नाट्यवेदविवृति में (जो नाट्य शास्त्र की टीका है) वासवदत्ता उल्लेख किया है:—

'यथा क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।

१. बालचरित—एम० आर० गहगल, १९५९ संस्करण पृ० ३१

(९) काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में (व्याजोक्ति के उदाहरण में आचार्य वामन द्वारा) ईसा की नवीं शताब्दी में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है:—

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ।।

(१०) निम्नलिखित विद्वानों ने भास की रचनाओं से श्लोक उद्धृत किये हैं अथवा उनके विचारों के आधार पर अपनी भाषा में प्रस्तुत किये हैं:—

(क) भोजदेव ।
(ख) शारदातनय ।
(ग) रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र ।
(घ) सर्वानन्द ।
(ङ) सागरनन्दिन् ।
(च) साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ।

ईसा की ११ वीं शती में भोजदेव ने अपने ग्रन्थ शृंगारप्रकाश में स्वप्नवासवदत्तम् के भाव के प्रसंग का उद्धरण किया है, जैसे :—

पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः। पद्मावतीरहितं च तदवलोक्य तस्या एव शयने सुष्वाप ।

१२वीं शती मे शारदातनय ने 'भावप्रकाश' में प्रशान्त नाटक के प्रसंग मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' के कथानक का निर्देश किया है ।

१२वीं शती में रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक तथा उसके रचयिता का नाम उल्लिखित किया गया है । यथा—

भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिका-शिलातलमवलोक्य वत्सराजः·····

'अमरकोशटीकामर्वस्व' मे सर्वानन्द ने उदयन के विवाह-प्रसंग में शृंगाररस के तीन भेदों का उल्लेख किया है। यथा :—

'त्रिविधः शृंगारः धर्मार्थकामभिन्नः ।'

सागरनन्दिन् द्वारा अपने ग्रन्थ नाटक लक्षण रत्नकोश में स्वप्नवासवदत्तम् के भाव को ग्रहण करके अपनी भाषा में व्यक्त किया गया है, यथा:—

स्वप्ने वासवदत्ते नेपथ्ये सूत्रधारः उत्सारणां श्रुत्वा पठति अये कथं तपोवनेऽप्युत्सारणा……।

विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण मे नान्दी की परिभाषा के अनन्तर 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' का प्रसंग भी प्राप्त होता है जो भास की स्पष्टछाप प्रतीत होती है।

(ख) भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव

श्रव्यकाव्य के आदिकवि वाल्मीकि के समान भास ने नाटक के क्षेत्र में नई दिशा प्रदान की तथा नाट्यकला को उत्कृष्ट रूप दिया। कालिदास तक ने इनकी रचनाओं की उत्कृष्टता स्वीकार की है। संस्कृत के परवर्ती नाटककारों पर भास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जो उनकी रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्रमाणित है। कालिदास यों तो भरत-नाट्यशास्त्र की परम्परा के अनुयायी हैं पर भास के भावों, विचारों, घटनाओं, शब्दों, परिस्थितियों आदि के मूलतत्त्व उनमें पाये जाते हैं। कालिदास अपनी समुन्नत प्रतिभा के बल पर दूसरे के भावों को परिवर्तित या परिष्कृत रूप में ग्रहण करते हैं जिससे स्पष्ट साम्य दिखाना संभव नहीं। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त द्वारा आश्रमवासी तपस्वियों को कष्ट न देने का आदेश दिया जाता है। वही बात स्वप्नवासवदत्तं नाटक मे कांचुकीय के मुख से कहलाई गई है। दोनों नाटकों में तपोवन-वर्णन में पर्याप्त समानता लक्षित होती है। *तपोवन के मृगों*[1] *के प्रति स्नेहभाव दोनों में एक-सा मिलता है।* स्वप्नवासवदत्तम्[2] मे घोषवतीवीणोपलब्धि उदयन को वासवदत्ता के प्रति शोका-

---

१. विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्ययाः।
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥ स्वप्नवास० १-१२
यस्य त्वया व्रणविरोपणमिंगुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते॥ अ० शा० ४४
२. श्रुतिसुखनिनदे कथं नु देव्या…
प्रतिभयमप्युषिताऽस्यरण्यवासम्॥ स्वप्न० । ६।१.
तव सुचरितमंगुलीय नूनम् …यदंगुलीयु। अ० शा० ६।१२
कथं नु त बन्धुरकोमलांगुलिं अ० शा० ६।११

तुर बना देती है उसी प्रकार शाकुन्तल मे अंगूठी मिलने पर दुष्यन्त अत्यधिक शोकसंतप्त होता है। तपोवन-वर्णन के साथ अतिथिसत्कार की भावना दोनों नाटको मे समान रूप से व्यक्त[१] की गई है। प्रतिमानाटक में वल्कल धारण[२] की हुई सीता के सौन्दर्य की तुलना वल्कलधारिणी शकुन्तला से द्रष्टव्य है। अविमारक नाटक में शाप के कारण कुरंगी और अविमारक के विवाह मे बाधा पहुँचती है। उसी प्रकार दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त को शकुन्तला की विस्मृति हो जाती है।

अभिषेक नाटक मे वन, लताओं[३] के प्रति मन्दोदरी की स्नेहभावना अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला का लतादि के प्रति प्रेम-भावना से साम्य रखती है। इसके अतिरिक्त कालिदास की अन्य कृतियो में भावसाम्य के उदाहरण मिलते है। रघुवंश के श्लोकार्ध[४] भाग पर भास का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' दोनों मे पद्मावती तथा शकुन्तला दोनों को अपने-अपने सौभाग्य की चिन्ता है। कन्याभाव की रमणीयता दोनों मे समानरूप से दिखाई देती है। इस प्रकार भास के साथ

---

१. काञ्चुकीय:—प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः। भा० भा० च० पृ० ८
राजा—भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम् अ० शा० १·२३

२. सर्वशोभनीय सुरूपं नाम। अलंकरोतु भट्टिनी। तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्। भा० भा० च० पृ० २५३
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। अ० शा १।१६

६. यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी।
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात्। अभिषेक ३।१
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या, नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। अ० शा० ४·६

४. सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुलिम्
कृतार्थः खलु पाकशासनः। कर्णभार १।२३
हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रम-सुरद्विपास्फालनकर्कशाङ्गुली रघु० ३।५५

भाव-साम्य के अनेक उदाहरण कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभव तथा मेघदूत में प्राप्त होते हैं। यथा—

कौतुकमालां गुम्फत्वार्या । स्वप्न० अंक ३.
एव तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद् विस्रंसिदूर्वाङ्कमधूकमाला: । रघुवंश ६,२५
मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभि वपगूढा: स्वप्न० ४।३
मधुद्विरेफ: कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः । कुमार सं० ३·३६
दु:खं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः। स्वप्न० ४।६
विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् । कुमार० २।५५
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।
स्वप्न० १·४

कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रने-मिक्रमेण उत्तरमेघ ५२

मृच्छकटिककार शूद्रक भास से प्रभावित हैं। इसकी योजना भासरचित चारुदत्त के आधार पर की गई है। उन्होंने कथावस्तु तथा भावों का अंकन भी चारुदत्त के ही समान किया है तथा दोषों का परिहार करके उचित परिष्कार के साथ वाक्यों को भी अपने नाटक में स्थान दिया है। उदाहरणार्थ-मृच्छकटिक में भुजाओं के लिए 'करिकरसमबाहु'प्रयुक्त हुआ है जो भास द्वारा दी गई भुजाओं की उपमा 'हाथी की भुजाओं (सूँड़) के सदृश' से साम्य रखती है। स्वप्नवासवदत्तम् के छठे अंक में कंचुकी कहता है :—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥

इस श्लोक के उत्तरार्ध का भाव मृच्छकटिक में पाया जाता है जहाँ कहा गया है कि 'साहस में लक्ष्मी का वास है'।

भवभूति भी भास के प्रभाव से अछूते नहीं बचे हैं। उनके उत्तररामचरित में कतिपय स्थलों पर भास के भावों का साम्य पड़ता है। पंचरात्र में 'प्रीतिपूर्वक सेवन' अर्थ में द्रोणद्वारा प्रयुक्त 'समाजयति' का प्रयोग उत्तररामचरित के प्रथम अंक में इसी अर्थ में हुआ है, यथा:—

'स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि'।

स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक की इस पंक्ति की छाया उत्तररामचरित के द्वितीय अंक के निम्नलिखित सातवें श्लोक पर स्पष्ट लक्षित होती है :—

'आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।'

स्वप्न० अंक १.

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥'

मालतीमाधव में अविमारक से प्रेरणा ली गई है। दोनों नाटक लोक-कथा पर आधारित हैं। दोनों की प्रकृतिवर्णनशैली में समानता पाई जाती है। अविमारक नाटक में हाथी के उत्पात का वर्णन किया गया है। तो मालतीमाधव में व्याघ्र का उपद्रव वर्णित है। अविमारक में विद्याधर ने उसके जीवन की रक्षा की तो मालतीमाधव में योगिनी के द्वारा जीवन रक्षा होती है। इन दोनों नाटकों में दण्डक छन्द का प्रयोग हुआ है। स्वप्नवासवदत्तम् में अग्निदहनोपरान्त भी वासवदत्ता पतिस्नेह के कारण जीवित कही गई है 'दग्धाप्यदग्धा' जली हुई भी नहीं जली है। ऐसा ही वर्णन मालतीमाधव में दो स्थानों पर पाया जाता है। जैसे—

न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति । मा० मा० पृ० ३
उपरताप्यनुपरता । मा० मा० पृ० ५६

'प्रियङ्गुशिलापट्ट' का वर्णन स्वप्नवासवदत्तम् तथा मालतीमाधव में समानरूप से उपलब्ध होता है।

विशाखदत्तरचित मुद्राराक्षस नाटक भास की नाट्यकला के अनुसरण पर 'नान्द्यन्ते' से प्रारंभ होता है। भावों, विचारों तथा शब्दों के प्रयोग में भी पर्याप्त साम्य है। इस नाटक में अप्रमत्त, काशपुष्प, सबाष्पम्, निवापाञ्जलि आदि शब्द भास के समान ही प्रयुक्त हुए हैं। भास के 'सकाम' शब्द का प्रयोग मुद्राराक्षस में भी विशेष महत्त्व दिखाने के लिए किया गया है:—

सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु। स्वप्न०

स्वगतम्। एवमस्मासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकामः सकामो भवत्वार्यः
मुद्रा० ३।३३ से पूर्व

मुद्राराक्षस एक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक नाटक है। यह प्रतिज्ञायौगन्धरायण से प्रभावित है। इन दोनों नाटकों के प्रमुख पात्र चाणक्य और यौगन्धरायण में समान गुण लक्षित होते हैं।

भट्टनारायण ने वेणीसंहार नाटक, जो वीररस प्रधान है, की रचना महाभारत से उद्धृत आख्यान के आधार पर की है। यह नाटक भास के वीर रसप्रधान एकांकी ऊरुभंग तथा दूतवाक्य से अत्यन्त प्रभावित प्रतीत होता है, क्योंकि सम्पूर्ण आख्यान उसी प्रकार के प्रभावशाली वाक्यविन्यास में प्रस्तुत किया गया है। वेणीसंहार तथा पंचरात्र के पात्रों में समानता है। भास का प्रभाव हर्ष के नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका पर भी दृष्टिगोचर होता है। स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन के लिए 'शरचापहीनः कामदेवः' प्रयुक्त हुआ है वैसे ही रत्नावली में भी 'प्रत्यक्ष एवापूर्वः कुसुमायुधः' कहकर सादृश्य व्यक्त किया गया है। रत्नावली नाटिका में भास द्वारा चित्रित सान्ध्यकालीन चित्र की समानता द्रष्टव्य है :—

परिभ्रष्टो दूरान्नविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्। स्वप्न १.१६
सन्ध्यामृष्टविशिष्टरत्नकरपरिकरस्पष्टहेमारपंक्ति-
व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयतीवैषदिक्चक्रमर्कः॥
रत्नावली ३।५

प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में वर्णित अगस्त्यपूजा अविमारक के चतुर्थ अंक के आधार पर है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में सूक्ष्म मनोभावों का पात्ररूप में वर्णन किया गया है जो बालचरित के शापादि के पात्रत्व-कल्पना से मिलता-जुलता है। केरल के नाटकों पर भी भास का प्रभाव लक्षित होता है। उनके उदयन के आख्यान के आधार पर वीणावासवदत्ता, उन्मादवासवदत्ता तथा तापसवत्सराजचरित आदि नाटकों का प्रणयन हुआ है।

नाटककारों के अतिरिक्त भास का प्रभाव बाण, भारवि, माघ आदि कवियों पर भी पड़ा है। मरणोपरान्त वासवदत्ता के गुणों के स्मरण के समान ही बाणकृत कादम्बरी में भी गुणों का स्मरण वर्णित है, जैसे—

उपरतस्य तु न कमपि गुणमावहति । कादम्बरी पृ० २६५

भास द्वारा कतिपय स्थलों पर प्रयुक्त 'म्रियते' का प्रयोग शिशुपालवध (माघकृत) के द्वितीय सर्ग में पाया जाता है।

म्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम् । माघ० २३५

भारविकृत किरातार्जुनीयम् के तृतीय सर्ग में भास के 'नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है:—

'रम्या धरित्री तव विक्रमेण'

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि प्रायः सभी परवर्ती कवि भास से प्रभावित हुए हैं।

रंगमंच के पात्रों का परिचय

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
सूत्रधारः—नाटक का प्रारंभकर्ता रंगमंच का अध्यक्ष।	वासवदत्ता—राजा की पटरानी, प्रद्योत की कन्या, अवन्तिका।
	पद्मावती—मगधेश्वर दर्शक की बहन, उदयन की दूसरी पत्नी।
भटौ—पद्मावती के दो सेवक।	तापसी—तपोवन में रहने वाली एक वृद्धा स्त्री।
यौगन्धरायणः—राजा का प्रधान मंत्री।	
कांचुकीयः—महाराज दर्शक के अन्तःपुर में रहने वाला सेवक। महाराज प्रद्योत का रैभ्य नामक भृत्य।	चेटी—पद्मावती की विश्वासपात्र परिचारिका।
	पद्मिनिका—, मधुकरिका— } पद्मावती की दो सेविकायें।
	धात्री—पद्मावती की उपमाता।
ब्रह्मचारी—लावाणक ग्राम में वेदाध्ययन करने वाला एक विद्यार्थी।	धात्री—वासवदत्ता की वसुंधरा नाम की उपमाता।
राजा—वत्स देश का राजा उदयन।	विजया—उदयन की द्वारपालिका, प्रतीहारी।
विदूषकः—उदयन का मित्र वसन्तक।	

केवल कथा-प्रसंग में आने वाले पात्रों का परिचय

दर्शकः—मगधदेश का शासक, पद्मावती का भाई।

प्रद्योतः—उज्जयिनी का राजा महासेन, वासवदत्ता का पिता।

रुमण्वान्—वत्सराज का मन्त्री और सेनापति।

ब्रह्मदत्त—काम्पिल्य देश का शासक।

आरुणिः—उदयन का राज्य अपहरण करने वाला शत्रु।

गोपालकः—प्रद्योत का पुत्र।

पालकः—प्रद्योत का दूसरा पुत्र।

पुष्पकः— } भविष्यवाणी करने
भद्रकः— } वाले दो सिद्ध।

महादेवी—पद्मावती की माता।

अवन्तिसुन्दरी—एक यक्षी।

अङ्गारवती—प्रद्योत की राजमहिषी, वासवदत्ता की माता।

कुब्जरिका—पद्मावती की सेविका।

विरचिका—उदयन की एक प्रेमिका।

महाकविभासप्रणीतम्

स्वप्नवासवदत्तम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

(नान्दी-पाठ के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

(Benediction; then enter the stage-manager)

प्रथम अंक में महाराज उदयन के अपहृत राज्य को पुनः प्राप्त करने के निमित्त मंत्री यौगन्धरायण लावाणक ग्राम में आग लगवा कर रानी तथा अपने को जल मरने की वार्ता प्रसारित करा देता है। वह रानी वासवदत्ता के साथ मगध राज्य से एक तपोवन में पहुँच कर राजकुमारी पद्मावती के पास उसे अपनी भगिनी कह कर धरोहर रूप में रख देता है। लावाणक ग्राम से आये हुए एक ब्रह्मचारी के मुख से राजा के अपनी रानी के प्रति अनन्य प्रेम को सुनकर वासवदत्ता अत्यन्त सन्तुष्ट हुई साथ ही पद्मावती के मन में राजा के प्रति प्रेमांकुर उदय होता है।

टिप्पणी—(१) स्वप्नवासवदत्तम्—स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता स्वप्नवासवदत्ता मध्यमपदलोपी समास, स्वप्नवासवदत्ताम् अधिकृत्य कृतं नाटकम् इत्यर्थे स्वप्न-वासवदत्ता+अण्। इस नाटक का यह नामकरण पाँचवें अंक के स्वप्न-दृश्य के आधार पर हुआ है। यह स्वप्न-दृश्य अत्यन्त नाटकीय और भाव-विशिष्ट है। यहाँ उदयन वासवदत्ता के प्रथम प्रेम के चिन्तन में मग्न है, इतने में नींद आ जाती है। वासवदत्ता, जिसके विषय में वह स्वप्न देख रहा है प्रत्यक्ष रूप में आकर उसके प्रश्नों का उत्तर देती है। भास अपने इस दृश्य से इतने प्रसन्न हैं कि इसी के आधार पर नाटक का नाम रख देते हैं। (२) नान्द्यन्ते—नान्द्याः अन्ते इति षष्ठी तत्पुरुष समास। नन्दयतीति नन्दः√नन्द्+अच् पचादित्वात्, नन्द एव नान्दः नन्द+अण् प्रज्ञादित्वात्, नान्द+ङीप्=नान्दी। नाटक आरम्भ करने से पहले उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए देवता आदि की जो स्तुति की जाती है, उसे नान्दी कहते हैं। इसका लक्षण यह है—'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता'॥ (साहित्यदर्पण) अर्थात्, देवता, ब्राह्मण

और राजा आदि की आशीर्वाद युक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है, अतः इसका नाम नान्दी पड़ा, नाट्य-प्रदीप में नान्दी का लक्षण लिखा है—'नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः। यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी तस्मादियं सा कथितेह नान्दी'॥ अथवा मंगल गान-वाद्य को नान्दी कहते हैं जो इस नाटक में रंग-मंच पर न होकर नेपथ्य में (पर्दे के पीछे) होता है। अन्य नाटककारों से भास के नाटकों की यही विलक्षणता है। 'नान्द्यन्ते' मे भाव में सप्तमी है। ततः—उसके बाद। यह शब्द प्रकृत स्थल मे अनावश्यक प्रतीत होता है; क्योंकि 'नान्द्यन्ते' से ही 'ततः' का अर्थ प्रकट हो जाता है। ३) सूत्रधारः—सूत्रं प्रयोगानुष्ठान धारयतीति विग्रहे सूत्र√धृ+णिच्+अण् 'कर्मण्यण्' इति सूत्रेण। सूत्रधार उस प्रधान अभिनेता को कहते हैं, जो रंग-मंच पर घटित होने वाली घटना को *नियमित रूप से चलाता है। वह रंग-मंच का अधिष्ठाता होता है।* वह प्रस्तावना या स्थापना मे मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है। इसकी परिभाषा यह है—'नाट्यस्य *यदनुष्ठान तत्सूत्र स्यात् सबीजकम्। रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः'*॥ अर्थात् नाट्य की उत्पत्ति के साथ उसके अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं और (उसका धारण करने वाला तथा) रंग-मच के देवता का पूजन करने वाला सूत्रधार कहलाता है।

सूत्रधारः—उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्॥१॥

अन्वय—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्ताबलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ बलस्य भुजौ त्वा पाताम्॥१॥

संस्कृत टीका—उदये—उदयसमये, नवः—नवीनः, यः इन्दुः—चन्द्रः, तेन सवर्णौ—तुल्यवर्णौ तत्सदृशौ धवलौ इति यावत्, आसवदत्ताबलौ—दत्तः अर्पितः आसवः मद्य यस्यै सा आसवदत्ता तथाविधा अबला रेवती नाम्नी बलरामप्रिया याभ्यां तौ अथवा आसवेन मद्येन दत्तम् उत्पादितम् आ समन्तात् बल शक्तिः ययोः तौ पराक्रमशीलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ—पद्मा लक्ष्मीं शोभामिति यावत् अवतीर्णौ प्राप्तौ तथाविधौ च पूर्णौ सामुद्रिकोक्तशुभलक्षणसम्पन्नौ अथवा पद्मायाः लक्ष्म्याः अवतीर्णेन आविर्भावेन वासेन इति यावत् पूर्णौ सनाथौ सर्वदा श्रीसम्पन्नौ इत्यर्थः, वसन्तकम्रौ—वसन्तऋतुरिव कम्रौ मनोहरौ, बलस्य—बलरामस्य, भुजौ—बाहू, त्वा—नाटकद्रष्टृवर्गं, पाताम्—रक्षताम्॥१॥

सूत्रधार—उदयकालीन नवीन चन्द्र के समान (ललाई लिये हुई उजले) रङ्ग वाली, अपनी प्रिया रेवती को मद्य देनेवाली (अथवा मद्य पान से विशेष बलशाली), श्री तथा शुभ लक्षणों से सम्पन्न और वसन्त ऋतु के समान मनोहर बलदेव जी की दोनों भुजायें आप लोगों (दर्शक वृन्द) की रक्षा करें ॥१॥

Stage Manager—May the arms of Bala—which resemble the new rising moon, invigorated by the wine, satisfied by the incarnation of Padma (goddess of wealth) and beautiful like the spring season, protect you.

टिप्पणी—(१) उदयनवेन्दुसवर्णौ—उदीयमान नवीन चन्द्रमा के समान कान्ति वाली। नवश्चासौ इन्दुः नवेन्दुः कर्मधारय समास, उदयकालिकः नवेन्दुः उदयनवेन्दुः मध्यमपदलोपी समास, समानः वर्णः कान्तिः ययोः तौ सवर्णौ 'समानस्य च्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु' इति सूत्रेण समानस्य स आदेशः, उदयनवेन्दुना सवर्णौ इति उदयनवेन्दुसवर्णौ तृतीया तत्पुरुष समास (२) आसवदत्ताबलौ—दिया गया है मद्य जिसको ऐसी अबला बलरामपत्नी (रेवती) (१) अर्थात् अपनी प्रियतमा रेवती को मद्य देने वाली (२) (मद्यपान से विशेष बलशाली) दोनों भुजाएँ अथवा (३) जो (बलराम की) भुजाएँ मद्यपान के कारण बलहीन हो गई हैं। प्रथम व्याख्या से बलराम की भावुकता तथा प्रेमी-प्रकृति की सूचना मिलती है। दूसरी में मद्यपान से विशेष बलशाली भुजाएँ रक्षणक्षमता की द्योतक हैं। ये दो व्याख्यायें युक्ति-सगत हैं पर तीसरी व्याख्या उपयुक्त प्रतीत नहीं होती, क्योंकि बलहीन भुजाएँ रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकती। दत्तः आसवः यस्यै सा आसवदत्ता, बहुव्रीहिसमासे कृते 'वाहिताग्न्यादिषु' इति सूत्रेण दत्तशब्दस्य परनिपातः, आसवदत्ता चासौ अबला कर्मधारय समास। किन्तु इस प्रकार समास करने से 'आसवदत्ताबलौ' यह शब्द 'भुजौ' का विशेषण नहीं बनेगा। इसलिए आसमन्तात् बलम् आबलम् प्रादितत्पुरुष समास, आसवेन दत्तम् आसवदत्तम् तृतीया तत्पुरुष, तादृशम् आबलम् ययो बहुव्रीहि समास, तौ आसवदत्ताबलौ—इस प्रकार समास करना ही उचित होगा। कोई यहाँ आसवेन दत्तम् अबलं=बलाभावो याभ्यां तौ—इस प्रकार समास करते हैं। यद्यपि ऐसे समास से शब्दसिद्धि में कोई बाधा नहीं पहुँचेगी, पर इसका अर्थ मंगल के प्रधान उद्देश्य के विरुद्ध जाता है; क्योंकि बलहीन भुजायें किसी की रक्षा नहीं कर सकती। (३) आसव—मद्य। आङ् उपसर्गपूर्वक षुञ् (अभिषवे) धातु से अप् प्रत्यय। (४) अवतीर्ण—अवतार—पद्मायाः अवतीर्ण तेन पूर्णौ—लक्ष्मी के अवतार से युक्त

अर्थात् श्री (शोभा) से सम्पन्न। अथवा पद्मस्य अवतीर्णम् अवतारः कमल के अवतरण से पूर्ण अथवा कमल के समान कोमल। तृतीया तत्पुरुष। अव√तृ+क्त (त)। (५) वसन्तकम्रौ—वसन्त ऋतु के समान मनोहर। वसन्त इव कम्रौ उपमित समास। (६) कम्र—मनोहर, कमनीय√कम्+र 'नमिकम्पिस्यजसकमहिंसदीपो रः' इति सूत्रेण। (७) बलस्य—बलराम की। (८) त्वाम्—तुमको आप लोगों को अर्थात् दर्शकों को। (९) भुजौ—दोनों भुजाएँ। (१०) पाताम्—रक्षा करें अर्थात् बलराम की भुजाएँ तुम लोगों (दर्शकों) की रक्षा करें।

यहाँ 'उदयनवेन्दुसवर्णौ' इस विशेषण से स्वभावतः गौर तथा मद्य-पान के कारण कुछ ललाई लिए हुए बलरामजी की भुजाओं का सौन्दर्य प्रकट किया गया है। 'आसवदत्ताबलौ' इस विशेषण से उनकी भुजाओं की रक्षण-योग्यता सिद्ध होती है। 'पद्मावतीर्णपूर्णौ' इस विशेषण से यह दिखाया गया है कि बलरामजी की बाँहें आजानुलम्बी तथा शुभलक्षणशाली हैं। 'वसन्तकम्रौ' इस विशेषण से वसन्त के समान सर्वजनकमनीयता सूचित होती है।

इस श्लोक में कवि ने मुद्रालंकार द्वारा बड़ी निपुणता से उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती, वसन्तक आदि मुख्य पात्रों के नाम की सूचना दी है। उनमें भी उदयन प्रधान पात्र है। इसलिए पहले ही उसका नाम निर्दिष्ट हुआ है। मुद्रालंकार उसे कहते हैं, जहाँ प्रकृतार्थबोधक शब्दों से सूच्यार्थ की सूचना मिल जाती है या उन शब्दों से किसी नाम का बोध हो जाता है। यहाँ आर्या छंद है। इसका लक्षण यह है—'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि। अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सा आर्या' ॥१॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। अये! किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अंग! पश्यामि।

संस्कृत टीका—एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण, आर्यमिश्रान्—आर्याः कुलशीलदयाधर्मसत्यादिसद्गुणसम्पन्नाः सभ्याः ते च ते मिश्राः पूज्याः तान्, विज्ञापयामि आवेदयामि। अये! आश्चर्यम्, मयि—सूत्रधारे, विज्ञापनव्यग्रे—आवेदनतत्परे, सति, किं नु खलु—कुतो नु खलु, शब्द इव—अव्यक्तः कलकल इव, श्रूयते—आकर्ण्यते। अंग—सम्भ्रमे, पश्यामि—केन कुतः कीदृशः शब्दः कृतः इति सम्यक् प्रकारेण ज्ञास्यामि इति भावः।

आप श्रीमानों से मेरा यह निवेदन है कि······अरे ! निवेदन करने में मेरे व्यस्त होते ही यह शब्द कहाँ से सुनाई पड़ा ! अच्छा देखूँ ।

Thus I beg to inform the worthy gentlemen. Oh, why to be sure, some noise is heard when I am busy in making the request. Oh, I see.

टिप्पणी—(१) आर्यमिश्रान्—सम्मानित सदस्यों को। 'गौरवितास्त्वार्यमिश्राः' इति त्रिकाण्डशेषः। आर्याश्च ते मिश्राः इति आर्यमिश्राः तान् कर्मधारय समास। अर्यते सेव्यत्वेन गम्यते इति आर्यः√ऋ+ण्यत्। वशिष्ठ के अनुसार आर्य उसी को कहते हैं जो दृढ़ता से कर्तव्य कर्म का पालन और अकर्तव्य की उपेक्षा करते हुए अपने धर्म पर डटा रहता है—'कर्तव्यमाचरन् कर्म ह्यकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः॥' परन्तु भरत ने आर्य का लक्षण यह किया है—'कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता। अद्रोह इति येष्वेतत्ता- नार्यान् संप्रचक्षते ॥' मिश्र—यह एक उपाधि है जो सम्भ्रान्त व्यक्ति के नाम के साथ लगायी जाती थी। यह सदा बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रयोग विष्णुपुराण में भी मिलता है—'मरीचिमिश्रैः दक्षेण'√मिश्+अच्। (२) विज्ञापयामि—निवेदन करता हूँ। वि√ज्ञा+णिच्, पुक् आगम+लट्—मिप्। (३) अये—यह क्रोध, आश्चर्य विषाद द्योतक सम्बोधनवाची अव्यय है। √इण्+एच्। (४) अंग—सम्बोधनवाची अव्यय शब्द, जिसके अर्थ होते हैं—'बहुत अच्छा', 'श्रीमन् ! बहुत ठीक,' 'अवश्य', 'सत्य है,' 'अंगीकार है' इत्यादि। √अग्+अच् (अ)। (५) पश्यामि—देखता हूँ, पता लगाता हूँ। उ० पु० ए० व०। यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इस सूत्र से भविष्य के अर्थ में लट् लकार हुआ। (६) विज्ञापनव्यग्रे—निवेदन करने में व्यस्त होने पर। (७) शब्द इव श्रूयते—कुछ इस प्रकार का अव्यक्त शब्द सुनाई पड़ता है। इव का यहाँ पर अर्थ है 'कुछ इस प्रकार का।'

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह [उत्सरत उत्सरत आर्याः! उत्सरत।]

(नेपथ्य में) हटो, हटो, महाशयो ! हटो।

(Behind the Curtain) Get away, get away, gentlemen, get away.

टिप्पणी—(१) नेपथ्ये—नेपथ्य शब्द पर्दा और पर्दे के पीछे रूप-धारण-

स्थल दोनों को कहते हैं—'नेपथ्यं स्याज्जवनिका रङ्गभूमिः प्रसाधनम् इत्यजयः। 'आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्' इत्यमरः। इसका लक्षण यह है—'कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते' अर्थात् जहाँ अभिनेता अपने को सजाते और अभिनयोचित वेष धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं। √नी+क्विप्, नेः नेता तस्य पथ्यम्। (२) उत्सरत—हटो (मार्ग छोड़कर दूर हो) उत्+सृ+लोट् म० पु० बहु० व०। मार्गं परित्यज्य दूरे भवत। यहाँ सम्भ्रम (हड़बड़ी) सूचित करने के लिए इस क्रिया का दो बार प्रयोग हुआ है। कहा भी है—'सम्भ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टम् अनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः' अर्थात् उद्विग्नता, त्वरा या भय की अभिव्यक्ति में किसी शब्द को दो बार या उतने बार तक दुहराया जा सकता है जब तक कि वक्ता का तात्पर्य अभिप्रेत व्यक्ति को स्पष्ट न हो जाय।

सूत्रधारः—भवतु विज्ञातम्।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥२॥ (निष्क्रान्तः)

अन्वय—तपोवनगतः सर्वो जनः मगधराजस्य कन्यानुगामिभिः स्निग्धैः भृत्यैः धृष्टम् उत्सार्यते ॥२॥

संस्कृत टीका—तपोवनगतः—मुन्याश्रमस्थितः, सर्वः—स्त्रीवृद्धबालपुरुषादिः, जनः—लोकः, मगधराजस्य—मगधाधिपतेः, कन्यानुगामिभिः—पुत्रीपरिचारकैः, स्निग्धैः—स्नेहपात्रैः, भृत्यैः—सेवकैः, धृष्टम्—धृष्टतापूर्वकम् उद्धत यथा स्यात् तथा, उत्सार्यते—दूरीक्रियते ॥२॥

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया।

मगधराज की पुत्री के पीछे-पीछे चलने वाले प्रिय सेवकगण तपोवन में रहने वाले लोगों को धृष्टतापूर्वक हटा रहे हैं ॥२॥ (चला गया) प्रस्तावना समाप्त।

Stage Manager—Well ! I know. All the people in the penance grove are being rudely driven away by the loyal servants of the Magadh king who are following the princess. (Exit) (End of Prologue)

टिप्पणी—(१) भवतु विज्ञातम्—(विशेषेण ज्ञातम्) अच्छी तरह जान गया। भवतु—भू लोट्–प्र० पु० ए० व०। (२) तपोवनगतः—तप या तपस्या का वन अथवा तपस्या करने के लिए वन। तपोवन में रहने वाले। तपसः तपस्यार्थं वा वनम् तपोवनम् षष्ठी-तत्पुरुष समास, जैसे 'अश्वस्य घासः अश्वार्थं वा घासः अश्वघासः' प्रयोग होता है

उसी तरह यह भी है। फिर तपोवनं गतः तपोवनगतः इसमें द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ। (३) मगधराजस्य—मगध देश या मगध-निवासियों के राजा का। मगधस्य राजा मगधराजः षष्ठी तत्पुरुष, 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय। (४) कन्यानुगामिभिः—कन्या के पीछे चलने वाले (सेवकों) द्वारा। कन्याम् अनुगन्तुं शीलं येषामस्ति इति विग्रहे कन्या अनु√गम्+णिनि= कन्यानुगामिनः, तैः। (५) स्निग्धैः—स्नेही। √स्निह्+क्त (त)।(६) भृत्यैः— नौकरों से।√भृ+क्यप्, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इत्यनेन तुगागमः। (७) धृष्टम्—उच्छृंखलता से, योग्यायोग्य का बिना विचार किए गरदनियाँ आदि देकर। राजसेवक लोग राजकुमारी के कृपापात्र होने के कारण घमंडी थे। इसलिए वे तपोवनवासियों को अशिष्टता या बेमुरौवती से हटा रहे थे। उत्सार्यते—हटाया जा रहा है। उत्√सृ+णिच्+लट् (कर्मणि), यक्। (८) निष्क्रान्तः—निकल गया या चला गया। 'सभी लोग हटाये जा रहे हैं' यह कहता हुआ सूत्रधार रंग-मंच से चला जाता है। निस्√क्रम्+क्त (त)। (९) स्थापना—स्थाप्यते प्रस्तूयते कथावस्तु यस्या सा स्थापना, 'जिसमें नाटक की कथावस्तु स्थापित या प्रस्तावित की जाती है, उसे स्थापना या प्रस्तावना कहते हैं। इसी को आमुख भी कहा गया है। क्योंकि तीनों के लक्षणों में समानता है। 'प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेत्ततः।' (साहित्यदर्पण ६, २६) अर्थात् स्थापक प्रविष्ट होकर काव्य की (नाटकीय वस्तु की) स्थापना करे उसे 'स्थापना' कहते हैं। 'नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा। सूत्रधारेण सहिताः सल्लापं यत्र कुर्वते।। चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः। आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।।' (साहित्यदर्पण ६, ३२) 'सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम्। स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्।।' (दशरूपक) अर्थात् जहाँ सूत्रधार विचित्र प्रकार से नटी, मारिष, विदूषक या पारिपार्श्विक से ऐसी बात कहे, जिससे प्रस्तुत नाटक की कथा की सूचना हो जाय, उसे 'आमुख' कहते हैं, 'प्रस्तावना' भी उसी का नाम है। इस प्रस्तावना का नाम प्रयोगातिशय है। जैसा कि दर्पणकार ने लिखा है—'यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते। तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा।'

भास के तेरह नाटकों में से ग्यारह नाटकों में इस 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है। केवल 'बालचरित' और 'कर्णभार' में इसका प्रयोग नहीं हुआ है।

(प्रविश्य)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह। [उत्सरत उत्सरत आर्याः ! उत्सरत।]

(प्रवेश कर) दो सिपाही—हटो, हटो, लोगो ! हटो !

(Entering) Two soldiers—Get away, get away gentlmen, get away.

[ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायणः आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च]

(तदनन्तर संन्यासी का वेष धारण किये हुए यौगन्धरायण और मालवा की स्त्रियों का-सा पहिनावा पहने हुई वासवदत्ता का प्रवेश)

(Then enter Yougandharayana in the garb of an ascetic and Vasavadatta, in the disguise of Avantika.)

टिप्पणी—(१) परिव्राजकवेषः—(कार्यवश) संन्यासी का वेष बनानेवाला। परित्यज्य सर्वं व्रजतीति परिव्राजकः=संन्यासी' परि√व्रज्+ण्वुल्—अक तस्येव वेषो यस्य सः कार्यावशात् परिधृतसन्यासिरूप इत्यर्थः बहुव्रीहि समास। (२) यौगन्धरायण—वत्सराज उदयन का मन्त्री। (३) आवन्तिकावेषधारिणी—अवन्ति देश की स्त्रियों का-सा वेष धारण किये हुए। अवन्तिजनपदसम्भवाः अङ्गनाः आवन्तिकाः तासामिव वेषं धारयतीति आवन्तिकावेष√धृ+णिनि+ङीप्, अवन्त्या भवाः आवन्तिकाः, अवन्ति+ठञ्—इक। (४) वासवदत्ता—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री और उदयन की ज्येष्ठा पत्नी।

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ! कुतः,

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

अन्वय—धीरस्य, वन्यैः फलैः तुष्टस्य वसतः, वल्कलवतः, मानार्हस्य, आश्रमसंश्रितस्य जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते। भो उत्सिक्तः, विनयादपेतपुरुषः, चलैः भाग्यैः विस्मितः, अयं कः इदं निभृतम् तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति ॥३॥

संस्कृत टीका—(अत्र) धीरस्य—धैर्यवतः, वन्यैः=वनोत्पन्नैः फलैः, तुष्टस्य—तृप्तस्य, वसतः—कृतनिवासस्य, वल्कलवतः—वृक्षत्वग्धारिणः, मानार्हस्य सत्कारयोग्यस्य, आश्रमसंश्रितस्य—आश्रमे=तरुमूले पर्णादिनिर्मितं कुटीरम्, संश्रितस्य=आश्रितवतः, जनस्य—लोकस्य, (अपि) त्रासः—भयम्, समुत्पाद्यते—जन्यते। भोः—सर्वसाधारणसम्बोधनमिदम्, उत्सिक्तः—उद्दण्डः, विनयादपेतपुरुषः—विनयात्=नम्रतायाः, अपेतः=रहितः, पुरुषः=जनः, चलैः—चञ्चलैः, विनाशशीलैरित्यर्थः, भाग्यैः—भाग्यलभ्यैः सम्पदादिभिः, विस्मितः—गर्वितः अयं कः—एषः कः, (अस्ति, यः) इदं—दृश्यमानं निभृतं—शान्तं, तपोवनम्—आश्रमस्थानम्, आज्ञया—आदेशेन, ग्रामीकरोति—ग्रामतुल्यता जनयति ?।।३।।

यौगन्धरायण—(कान लगाकर) क्या यहाँ भी लोगों को हटाया जाता है। क्योंकि, (यहाँ) स्थिर चित्तवाले, वन के फूलों से सन्तुष्ट रहने वाले, वृक्षों की छाल के वस्त्र पहनने वाले और आदर करने योग्य आश्रमनिवासी जनों को भी भयभीत किया जा रहा है। अरे! उद्दण्ड, नम्रता से रहित और नश्वर धन आदि से गर्वीला यह कौन आदमी है जो इस शान्त उपवन को (अपनी) आज्ञा से दूषित कर रहा है ? ।।३।।

Yaug. (listening) what ! are the people being turned away even from here.? Why

Alarm the sober, respectable inmates of this sanctuary, subsisting on and pleased by the wild fruits and clothed in the bark of trees ? Oh, who is this unmannerly man lacking in modesty and puffed up with pride of fickle fortune that is turning this quiet place of hermitage into a (busy) village.

टिप्पणी—(१) कथमिहाप्युत्सार्यते—यौगन्धरायण के कहने का आशय है कि यह तो तपोवन है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को विचरण करने की स्वतन्त्रता है, आश्चर्य है यहाँ भी लोग हटाये जा रहे हैं। कैसे (क्या) यहाँ भी हटाया जा रहा है। (२) कुतः—कहाँ से क्योंकि। (३) धीरस्य—सांसारिक भोग-पदार्थों के परित्याग रूप धैर्य से युक्त। कालिदास ने कुमारसम्भव में 'धीर' उसी को कहा है, जिसका चित्त विकारोत्पादक साधनों के रहते हुए भी विकृत नहीं होता है—'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः'। वस्तुतः धीर पुरुष का लक्षण तो इस श्लोक में मिलता है—'कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः। कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशाःलोकत्रय जयति कृत्स्नमिदं स धीरः'।। धियं=बुद्धिं राति=ददाति इति धी√रा+क

(४) वन्यैः फलैः तुष्टस्य वसतः—वन मे उत्पन्न होने वाले फलों से ही संतुष्ट होकर रहने वाले। वने जातानि इति वन्यानि वन+यत्, तैः वन्यैः। (५) आश्रम-संश्रितस्य—(ससार से छुटकारा पाने के लिए) आश्रम का सहारा लेने वाले। आश्रमं सश्रितः इति आश्रमसश्रितः तस्य। 'द्वितीया श्रितातीत'—इत्यादि सूत्र से द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ। (६) मानार्हस्य—आदर पाने योग्य व्यक्ति का। मानं अर्हतीति मानार्हः तस्य। (७) वल्कलवतः—वृक्ष की छाल धारण करने वाले के। वल्कलम् अस्ति अस्य इति वल्कलवान् तस्य प०ए०व० वल्कल+मतुप् (वत्)। (८) त्रासः—भय। (९) समुत्पाद्यते—उत्पन्न किया जा रहा है। सम्+उत्+पद्+णिच् (कर्मणि)। (१०) उत्सिक्तः—मर्यादा का उल्लघन करने वाला। उत्√सिच्+क्त (त)। (११) विनयादपेतपुरुषः—विनयहीन मनुष्य। विनयात् अपेतः इति विनयादपेतः अलुक् समास विनयादपेतश्चासौ पुरुष इति विनयादपेतपुरुषः कर्मधारय समास। यहाँ 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस नियम के अनुसार समास हुआ। यदि 'विनयाद्यपेतः' पाठ रखे तो इसकी आवश्यकता न पड़े। (१२) भाग्यैः—भाग्य से प्राप्त होने वाली सम्पदाओं से। सम्पत्तिको क्षणभंगुर माना गया है—'अर्थाः पादरजोपमाः'। इसलिए इसका विशेषण 'चलै.' दिया। (१३) विस्मितः—घमंडी। वि√स्मि+क्त (त)। धन आदि का घमंड करना अनुचित है—'मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम्'। (१४) निभृतम्—शान्त, एकान्त। नि+भृ+क्त (त)। (१५) ग्रामीकरोति—गाँव के समान अशान्त बना रहा है अर्थात् जैसे गाँव का वातावरण अशान्त रहता है उसी तरह इस पवित्र एवं शान्तिमय आश्रम के वातावरण को भी क्षुब्ध कर रहा है। अग्राम ग्रामं करोति इति ग्राम+च्वि√कृ+लट्—ति, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः (अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्)' इत्यनेन च्वि प्रत्ययः, 'अस्य च्वौ' इति सूत्रेण ग्रामाकारस्य ईत्वम्? यहाँ तात्पर्य यह है कि जहाँ उजड्ड लोग वास करते हैं ऐसे गाँवों में ही इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये न कि मुनियो के शान्त आश्रमों में। अतएव यह धृष्टता अत्यन्त अनुचित है। इस श्लोक में परिकर और शार्दूलविक्रीडित छद है। 'विशेषणैर्यत्सा कूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः' अर्थात् अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा जो कथन किया जाय वह परिकर अलंकार होता है। तल्लक्षण वृत्तरत्नाकरे—सूर्याश्वैर्मसजा-स्ततताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥३॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]

वासवदत्ता--आर्य ? यह कौन (लोगों को) हटा रहा है ?

Vasava—Venerable Sir, who is he that is away (people) ?

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

यौगन्धरायण—महारानी ! जो अपने को धर्म से हटा रहा है (अर्थात् जो लोगों को यहाँ से हटा रहा है, वह पाप-भागी होगा) ।

Yong —ladyship whoever keeps himself away from duty.

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उस्सार-इदव्वा होमि त्ति । [आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नमोत्सारयितव्या भवामीति ।]

वासवदत्ता—आर्य ! मैं यह नहीं कहना चाहती, मेरा मतलब यह है कि क्या मैं भी हटाई जाऊँगी ।

Vasava.—Venerable Sir I did not intend that (I meant) whether I too would have really to keep aside.

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

यौगन्धरायण—महारानी ! इस प्रकार विदित न होने पर तो देवताओं का भी अपमान होता है ।

Yong —Your ladyship unknown deities are thus disregarded.

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि, जह अअं परिभवो । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः ।]

वासवदत्ता--आर्य ! थकान (मुझे) उतना दुःख नहीं दे रही है जितना यह अपमान !

Vasava:—Revered Sir, fatigue does not cause as much worry as this insult.

टिप्पणी--(१) नह्येवं वक्तुकामा—इस प्रकार (कहने की मेरी इच्छा नहीं है । अर्थात् मेरे पूछने का यह तात्पर्य नहीं है कि कौन वह व्यक्ति है जो इस प्रकार एकान्त शान्त तपोवन में भी लोगों को मार्ग से हटा रहा है और क्या वह इस

१. पाठान्तर—विज्ञातानि······ध्यद ।

अत्याचार का परिणाम जानता है कि नहीं । मैं तो यह सोच रही हूँ कि जब मैं यात्रा करती थी तब मेरे रक्षक गण मेरी सुविधा के लिये दूसरे लोगों को मार्ग से हटा देते थे आज मैं भी साधारण लोगों की तरह किसी के भृत्यों द्वारा हटायी जाऊँगी । मैं यही अपना दुर्दैव आपसे पूछना चाहती हूँ । वक्तुं कामः=अभिलाषः यस्याः सा वक्तुकामा बहुव्रीहि समास । यहाँ 'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुंकाममनसोरपि । समो वा हिततत्योर्मांसस्य पचि युड्घञोः' इस कारिका के बल से 'वक्तुम्' का म् लुप्त हो जाता है । (२) नामोत्सारयितव्या भवामीति–क्या मैं भी हटाई जाऊँगी । वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि महारानी होकर भी मैं क्या साधारण व्यक्तियों की भाँति अपमानपूर्वक यहाँ से हटाई जाऊँगी । (३) एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते—इस प्रकार बिना पहचाने देवता भी फटकारे जाते हैं । अर्थात् देवता की सब उपासना करते हैं और कोई स्वप्न में भी उसका अपमान नहीं चाहता, परन्तु यदि वह भी अज्ञात वेष में सामने आये तो उसका अपमान हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है । (४) दैवतानि—देवता । देव एव इति देव+तल् (स्वार्थे)+टाप् स्त्रियाम्=देवता; देवता एव दैवतम्, देवता+अण् (स्वार्थे) तानि दैवतानि । (५) अवधूयन्ते–तिरस्कृत होते हैं, अपमानित किये जाते हैं । तिरस्क्रियन्ते । अव√धू+लट् (कर्मणि), यक् प्रत्यय । (६) तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः–यहाँ वासवदत्ता यौगन्धरायण से कहती है कि मैं इतनी दूर चलकर आई हूँ । पहले कभी चलने का अभ्यास नहीं था, अतः मुझे भारी थकावट है । परन्तु मेरे विचार में यह थकावट इतनी दुःखदायिनी नहीं है जितना यह हटाये जाने का अपमान । हमारे जैसे व्यक्ति के लिए अपमान मृत्यु के तुल्य है । अतः इस भावी अपमान से मुझे बड़ा क्लेश हो रहा है ।

यौगन्धरायणः—भुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या । नात्र चिन्ता कार्या । कुतः,

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ॥४॥

अन्वय—पूर्वं त्वया अपि एवं श्लाघ्यम् अभिमतं गतम् आसीत् । पुनः भर्तुः विजयेन गमिष्यसि । जगतः भाग्यपंक्तिः चक्रारपंक्तिः इव कालक्रमेण परिवर्तमाना गच्छति ॥४॥

संस्कृत टीका—पूर्वं—पूर्वस्मिन् काले नगर-निवास-समये इत्यर्थः, त्वया अपि—श्रीमत्या अपि, एवम्—ईदृशं, श्लाघ्यं—प्रशंसनीयम्, अभिमतम्—अभीष्टम्, गतं—प्राप्तम्, आसीत् । पुनः—भूयः, भर्तुः—स्वामिनः, विजयेन—राज्यप्राप्तिलक्षणेन जयेन (पूर्वोक्तां दशां) गमिष्यसि—यास्यसि । (यतो हि) जगतः—लोकस्य, भाग्यपंक्तिः—अदृष्टपरम्परा, चक्रारपंक्तिः—चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणाम् नाभिनेम्यन्तरालवर्तिकाष्ठखण्डानां पंक्तिः श्रेणिः, इव—तद्वत्, कालक्रमेण—समयानुसारेण, परिवर्तमाना—भ्रमन्ती, गच्छति—चलति । कविकुलगुरुणा तत्र भवता कालिदासेनायमेव भावः स्वरचितमेघदूते व्यक्तः—कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण । अपरञ्चाभिज्ञानशाकुन्तले—तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥४॥ अथ भावः—पूर्वं कौशाम्बी-निवासकाले पद्मावती इव भवती अपि परिजनाचरितसमुचितसमुदाचारपूर्वकं स्वेच्छया गता आसीत् । अग्रेऽपि स्वामिनि विजयश्रिया समलङ्कृते सति इत्थमेव गमनसुखमनुभविष्यति । नात्र संदेहः कार्यः यतो हि मनुष्याणां शुभानि अशुभानि च भाग्यानि समयगत्यनुसार तथैव परिवर्तन्ते यथा चक्रगतानि अराणि क्रमेण उपरि अधश्च गच्छन्ति दृश्यन्ते । अतएवास्मिन् विधुरे काले त्वया धैर्यं धार्यम् । अपमानात् बिभेतव्यम् तथा चोक्तम्—'आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ।' हर्षे शोके च समभावेन वर्तितव्यमिति विशदार्थः ॥४॥

यौगन्धरायण—महारानी ने इस विषय का उपभोग करके (कार्यवश) छोड़ दिया है । इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि,

पहले आप भी इसी प्रकार श्लाघनीय मनोरथ को प्राप्त करती थी । (अर्थात् इसी तरह राजसी ठाट-बाट से चलती थीं ।) और पुनः पतिदेव की विजय होने पर (इसी प्रकार) चलेंगी । (क्योंकि) लोगों का भाग्य-चक्र पहिये के अरों की भाँति समयानुसार घूमता हुआ चलता है (अर्थात् जिस प्रकार रथ के पहिये के अरे कभी नीचे जाते हैं कभी ऊपर उसी प्रकार मनुष्य का भाग्य भी कभी सुख देता है कभी दुःख) ॥४॥

Youg.—This thing has been enjoyed and left by your ladyship. You should not worry now, why.

Formerly you had enjoyed your (mind's) desires and your husband's triumph will again restore these praise-worthy things

to you. For human fortunes have their rise and fall like the spokes in a revolving wheel.

टिप्पणी—(१) भुक्तोज्झितः—भोग लेने के बाद त्यागा हुआ। यहाँ यौगन्धरायण के कहने का तात्पर्य यह है कि पहले वासवदत्ता भी इसी प्रकार राजकीय समारोह से चलती थी, जब कि उसके भी भृत्यगण लोगों को रास्ते से हटा दिया करते थे। किन्तु इस समय कार्य-विशेष की सिद्धि के लिए उसने अपने स्वरूप को छिपा कर राजसी ठाट-बाट का परित्याग कर दिया है। अतएव उसने जो कार्य स्वेच्छा से किया है, उसमें खेद का अनुभव करना अनुचित है। पूर्वं भुक्तः पश्चात् उज्झितः इति विग्रहे 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः' इति सूत्रेण समासः। (२) विषयोऽस्त्रभवत्या—पूज्य आपके द्वारा यह विषय अर्थात् राजसी ठाट-बाट से चलना। भवान् अथवा भवती के पूर्व अत्र या तत्र का प्रयोग सम्मानसूचक होता है यथा तत्र भवान् कालिदासः। राजमहिषी वासवदत्ता के लिए 'अत्रभवती' का प्रयोग किया गया है। तृ० ए० व०। (३) नात्र चिन्ता कार्या—इस विषय मे चिन्ता नही करनी चाहिए। यौगन्धरायण वत्सेश्वरी वासवदत्ता से कहता है कि आप भी पहले इसी राजकीय मर्यादा का पालन करती थी। सेवक लोग आगे-आगे यह घोषणा करते थे कि मार्ग से दूर हटो, महारानी जी आ रही हैं पर इस समय किसी विशेष कार्यसिद्धि के निमित्त आपने वास्तविक स्वरूप को छिपाकर स्वेच्छा से राजसी ठाट-बाट का परित्याग कर किया है इसलिए आपको दु खी नही होना चाहिए। (४) श्लाघ्यम्—प्रशंसनीय। (५) भर्तुः विजयेन—अपने पति महाराज उदयन के विजय (पुनः वत्सदेश का राज्य प्राप्त करने) से। (६) अभिमतम्—अभीष्ट, मनोरथ। अभि√मन्+क्त (त)। (७) परिवर्तमाना—बदलती हुई। परि√वृत्+लट्—शानच् मुक् आगम। (८) चक्रारपंक्तिः—पहिये की तीलियों की श्रेणी। चक्रस्य अराः तेषां पंक्तिः। ष० तत्पु०। (९) भाग्यपंक्तिः—भाग्यदशा। भाग्यस्य पंक्तिः ष० तत्पु०। (१०) कालक्रमेण—जैसे समय बीतता है उसके अनुसार। कालस्य क्रमेण तृ० तत्पु०। यहाँ तात्पर्य यह है कि मनुष्य की भाग्यदशा परिवर्तनशील है। वह घूमते हुए पहिये के अरों के समान ऊपर-नीचे आती-जाती रहती है। उसमें नियतता नहीं है। वह कभी दुःख देती है तो कभी सुख। इसलिए मनुष्य को जब दुःख आवे तो उसको धैर्यपूर्वक भोग लेना चाहिये और जब सुख आवे तो उसका भी उपभोग कर लेना चाहिए। यही बात पञ्चतन्त्र में कही है—'सुखमापतितं

सेव्यं दुःखमापतितं तथा। चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च' ॥ इसी का छायाभाव कालिदास के मेघदूत में मिलता है—'कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा। नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण'। इस श्लोक में उत्तरार्ध के सामान्य अर्थ से पूर्वार्ध के विशेष अर्थ का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है और वसन्ततिलका छन्द है। तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे 'सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते। यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ॥—॥४॥

भटौ—उस्सरह अय्या! उस्सरह। [उत्सरत आर्याः। उत्सरत।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—सम्भषक! न खलु न खलूत्सारणा कार्या। पश्य—

परिहरतु भवान् नृपापवादं न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्।
नगरपरिभवान्[1] विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥५॥

अन्वय—भवान् नृपापवाद परिहरतु। आश्रमवासिषु परुष न प्रयोज्यम्। एते मनस्विनः नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति ॥५॥

संस्कृत टीका—भवान्—सम्भषकः, नृपापवादं नृपस्य (राज्ञः दर्शकस्य) अपवादं—कलङ्क, परिहरतु—दूरीकरोतु। आश्रमवासिषु—तपोवनवास्तव्येषु परुषं—कठोरं, न—नहि, प्रयोज्यम्—व्याहर्तव्यम्। (यतो हि) एते—इमे मनस्विनः—महानुभावाः, नगरपरिभवान्—नगरसुलभान् अपमानान्, विमोक्तु—निराकर्तुं, वनम्—अरण्यम्, अभिगम्य—आगत्य, वसन्ति—निवास कुर्वन्ति (अयं भावः—उत्सरत, उत्सरत—इत्येवविध परुषवचनं तपस्विजनेषु त्वया न प्रयोक्तव्यम्। यतो ह्येते शान्तचित्ताः तापसाः नगरे सम्भाव्यमानेभ्योऽपमानेभ्य आत्मान मोचयितुं तपोवनमधिवसन्ति। अत्रापि चेत् एभिः एतादृशी तिरस्क्रिया लभ्या तर्हि लोकाः त्वत्कृतापराधान् राज्ञि समारोप्य त कलङ्कयेयुः) ॥५॥

(तदनन्तर कञ्चुकी का प्रवेश) कचुकी—समपक! मत हटाओ, मत हटाओ। देखो, राजा पर कलक न लगने दो। तुम्हें आश्रम मे रहने वालों को कठोर वचन नही कहना चाहिए। (क्योंकि) ये महानुभाव नगरो मे होने वाले अपमानो से बचने के लिए वन मे आकर रह रहे हैं ॥५॥

Soldiers—Keep aside, keep aside, gentlemen, keep aside.

(Then enter the Chamberlain) **Chamberlain**—Sambhashaka forbid not their approach forbid it not. See—You should

---

१. पाठान्तर परिभवासि।

remove the king's approach. Nothing harsh should be allowed to happen in the case of the dwellers in the hermitage. Those high souled people come to live in the forest to avoid the slights and *injuries of city life.*

टिप्पणी—(१) काञ्चुकीयः—रनिवास का रक्षक, अन्तःपुराध्यक्ष। इसका लक्षण यह है—'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥' अर्थात् अन्तःपुर में विचरण करने वाला, वृद्ध, गुण-समूह से युक्त और सब कार्यों के करने में निपुण ब्राह्मण कंचुकी कहलाता है। मातृगुप्ताचार्य ने काञ्चुकीय का लक्षण किया है—'ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः। ज्ञानविज्ञानकुशलाः कांचुकीयास्तु ते स्मृताः ॥' अर्थात् जो सर्वदा सात्त्विक गुणों से सम्पन्न, काम आदि दोषों से रहित और ज्ञानविज्ञान में पारगत होते हैं। उन्हें कांचुकीय कहते हैं। 'कञ्चुकी भक्तिः अस्य' इस अर्थ में कंचुक शब्द से 'वेणुकादिभ्यश्छण् वाच्यः' इस वार्तिक से छण् प्रत्यय, 'आयनेयीनीयियः'—इत्यादि सूत्र से छ् को ईय् आदेश और णित्वात् आदि वृद्धि हुई। यद्यपि प्रसिद्ध शब्द कंचुकी है, किन्तु भास ने कांचुकीय शब्द का प्रयोग किया है। कंचुक शब्द का अर्थ है 'चोगा, लम्बा कुर्ता'। उसको धारण करने वाला कंचुकी हुआ। कंचुक+इनि। (२) संभषक—दो सिपाहियों में से एक का नाम। न खलु न खलु—'खलु' शब्द निश्चयार्थक अव्यय है। दो 'न' का प्रयोग निषेध की दृढ़ता को सूचित करता है। (३) उत्सारणा—हटाना। उत√सृ+णिच्+युच्—अन, टाप्। (४) नृपापवादम्—राजा की निन्दा। क्योंकि तुम्हारे इस अशिष्ट व्यवहार से लोग सोचेंगे कि यहाँ का राजा बहुत ही अविवेकी है, अन्यथा उसका नौकर शान्त तपस्वियों के प्रति ऐसा कटु वचन नहीं बोलता। (५) परिहरतु—दूर करो। यहाँ प्राप्त काल में लोट् लकार हुआ है। अर्थात् अभी तुम्हारे इस कार्य से राजा की निन्दा का अवसर उपस्थित हो है, ऐसा समझो। (६) परुषम्—कठोर, कटु या रूखा वचन। यहाँ 'विशेषणमात्रप्रयोगः विशेष्यप्रतिपत्तौ' इस नियम से विशेष्य के बोध के लिए केवल विशेषण का प्रयोग हुआ है। (७) मनस्विनः—उच्च हृदय या विचार के लोग। प्रशस्तं मनः येषाम् इति विग्रहे मनस्+विनि 'अस्मायामेधास्रजोविनिः' इत्यनेन। (८) नगरपरिभवान्—नगरों में होने वाले अपमान। नगरजायमानाः परिभवाः मध्यमपदलोपी समास, तान्। इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है और पुष्पिताग्रा छन्द है। तल्लक्षण काव्यप्रकाशे—'काव्यलिंगं हेतोर्वाक्यपदार्थता।' अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ अथवा

पदार्थ रूप में कहना काव्यलिंग अलंकार होता है। यहाँ पर हेतु का वाक्यार्थ रूप में कथन किया गया है। इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है और पुष्पिताग्रा छंद है (९) आश्रमवासिषु—आश्रम में रहने वाले (तपस्वियों) में। आश्रमे वसन्ति इति आश्रमवासिनः तेषु। स० तत्पु०। (१०) प्रयोज्यम्—प्रयोग करना चाहिए। (११) विमोक्तुम्—दूर करने के लिए। वि+मुच्+तुमुन् (तुम्)। (१२) अभिगम्य—आकर; अभि+गम्+क्त्वा (ल्यप्)। पुष्पिताग्रा का लक्षण वृत्तरत्नाकर में लिखा है—'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'।।५।।

उभौ—अय्य ! तह। [आर्य ! तथा।] (निष्क्रान्तौ।)

दोनों—आर्य ! वैसा ही होगा। (दोनों का प्रस्थान।)

Both—Yes, revered sir, (Both retire)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम्। वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम्।

संस्कृत टीका—हन्त ! हर्षस्य विषयः दिष्ट्या उत्सारणाभयं निवृत्तमित्यर्थः। अस्य—काञ्चुकीयस्य, दर्शनं—बुद्धिः ज्ञानं वा, सविज्ञानं—विज्ञानेन सहितं कर्तव्यविवेकेन युक्तमिति यावत् (अस्ति। अतएव) वत्से! वासवदत्ते! तावत्—इदानीम्, (आवाम्) एनम्—काञ्चुकीयम्, उपसर्पावः—समीपे गच्छावः।

यौगन्धरायण—अहा ! इसकी बुद्धि परिष्कृत है (अर्थात् विवेक से पूर्ण है)। बेटी ! हम लोग इसके पास चलें।

Youg.—Ha ! his inspection (darshan) shows understanding let us then approach him, child.

टिप्पणी—(१) हन्त ! हर्ष की बात है ! 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः इत्यमरः'। √हन्+त (औणादिक)। 'हन्त' अव्यय है। यह हर्ष, अनुकम्पा, वाक्य के आरम्भ में तथा विषाद में प्रयुक्त होता है। इस सन्दर्भ में 'हन्त' का प्रयोग 'हर्ष' के अर्थ में हुआ है। हर्ष होने का कारण स्पष्ट है। क्योंकि उत्सारण का भय दूर होने से पद्मावती के सान्निध्य में रहने का अवसर प्राप्त हो गया है। (२) दर्शनम्—बुद्धि। दृश्यते ज्ञायते तत्त्वम् अनया इति दृश्+ल्युट् (करणे)—अन। 'दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु' इति मेदिनी। वत्से !—बेटी। यौगन्धरायण राजा उदयन का वृद्ध एवम् आदरणीय प्रधान मंत्री था। इसलिए उसकी रानी वासवदत्ता को 'बेटी' कहकर सम्बोधित किया तो कोई अनुचित नहीं कहा।

जा सकता। (३) सविज्ञानम्—विज्ञानेन कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकेन सहितम् (४) तावदेनमुपसर्पावः—तावत्+एनम्=उपसर्पावः। पहले इसके (काञ्चुकीय के) पास चलें। तावत् अव्यय है। इसका प्रयोग वाक्य की शोमा बढ़ाने के लिए किया गया है। उपसर्पावः—निकट चलें। उप+सृप्+लट्-उ०पु०द्वि०व० (५) उपसर्पावः—नजदीक चलें। यहाँ लिङर्थ मे लट्लकार हुआ है। (६) तावत्—यह एक अव्यय है। वाक्य की शोभा बढ़ाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। तत्+डावतु।

वासवदत्ता—अय्य ! तह [आर्य ! तथा।]

वासवदत्ता—आर्य ! ऐसा ही करें।

Vasava.—Sir, as you will,

यौगन्धरायणः—[उपसृत्य] भोः ! किं कृतेयमुत्सारणा !

यौगन्धरायण—(निकट जाकर) अजी ! यह हटाना किस लिए है?

Young.—What is the reason, sir, for this expulsion ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

कंचुकी—हे तपस्वी !

Chamberlain—Revered hermit.

टिप्पणी (१)—किं कृतेयमुत्सारणा—यह हटाना किसलिए है। किंकृत्या। किसलिए। उत्सारणा—हटाना उत्+सृ+णिच्+युक्(अन)+टाप् (आ)। (२) भोस्तपस्विन्—अधिक तपस्या वाले। सम्बोधन है। प्रशस्तं तपः यस्य सः तत्संबुद्धौ। तपस+विन्।

यौगन्धरायण—[आत्मगतम्] तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः। अपरिचयात् न श्लिष्यते मे मनसि।

यौगन्धरायण—(मन मे) 'तपस्विन्' यह सम्बोधन तो बहुत ही आदरसूचक है। परन्तु इसका परिचय न होने के कारण मुझे जँचता नहीं है।

Young.—(aside) It is a title that signifies much merit yet it falls strangely upon my unaccustomed ear.

टिप्पणी—(१) आत्मगतम्—जब वक्ता यह चाहता है कि उसका कथन दूसरों द्वारा न सुना जाय तब यहाँ नाटककार 'आत्मगतम्' या 'स्वगतम्' का प्रयोग

करता है। इसका लक्षण साहित्यदर्पणकार ने किया है—'अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्' अर्थात् जो बात सुनने योग्य नहीं होती है, उसे 'स्वगत' (मन में) कहते हैं। इसको 'आत्मगत' भी कहते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है कि साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही उसे सुन पावें (२) गुणवान्—प्रशस्त गुणों से युक्त, सम्मानसूचक। गुण+मतुप् (प्रशंसायाम्)। (३) आलापः—आभाषण, सम्बोधन। आङ्+लप्+घञ् (अ)। (४) अपरिचयात्—अभ्यास न होने से। न परिचयः अपरिचयः तस्मात्। हेतौ पंचमी। (५) न श्लिष्यते—न संलगति; जमता नहीं है। श्लिष् धातु दिवादिगणीय परस्मैपदी है। तदनुसार 'श्लिष्यति' प्रयोग होना चाहिए। किन्तु भास ने यहाँ आत्मनेपद का प्रयोग किया है, जिससे च्युतिसंस्कार नामक काव्य-दोष उत्पन्न होता है।

काञ्चुकीयः—भोः! श्रूयताम्। एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम। सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद्भवन्तः—

संस्कृत टीका—भोः! इति यौगन्धरायणस्य सम्बोधनम्, श्रूयताम्—आकर्ण्यताम्, एषा—इयम्, खलु इति वाक्यालंकारे, गुरुभिः—पूज्यजनैः, अभिहितनामधेयस्य—अभिहितम् उच्चारितं कृतमिति यावत् नामधेयं नाम यस्य तस्य, अस्माकं—मगधनिवासिनां, महाराजदर्शकस्य—दर्शकसंज्ञकस्य मगधाधिपतेः, भगिनी—स्वसा, पद्मावती नाम—पद्मावतीति नाम्ना प्रसिद्धा। सा एषा—पद्मावती, नः—अस्माकं, महाराजमातरं—दर्शकजननीं, महादेवीम्, आश्रमस्थाम्—आश्रमवासिनीम्, अभिगम्य—मिलित्वा, तत्रभवत्या—पूज्यया (मात्रा), अनुज्ञाता—(पुनर्गृहं गन्तुम्) आदिष्टा, राजगृहमेव—मगधराजधानीमेव, यास्यति—गमिष्यति। तत्—तस्मात्, अद्य—अस्मिन् दिवसे, अस्याः—राजकुमार्याः, वासः—निवसनम्, अस्मिन्, दृश्यमाने, आश्रमपदे—आश्रमस्थाने, अभिप्रेतः—अभिमतः इषितः इति यावत्। तत्—तस्मात् कारणात्, भवन्तः—यूयं सर्वे। (अयं भावः—दर्शकनाम्नोऽस्माकं महाराजस्य भगिनी इयं पद्मावती तपोवनमधिवसन्त्याः स्वमातुः महादेव्याः दर्शनं कृत्वा तया आदिष्टा पुनः राजभवनं

गमिष्यति । अस्मात् कारणात् अद्य अस्मिन्नेवाश्रमे राजकुमार्या निवासोऽभिलषितः । अतएव भवन्तः—)

कंचुकी—भगवन्! सुनिये । ये हमारे महाराज की, जिनका नाम गुरुजनों ने दर्शक रखा है, बहन पद्मावती हैं। ये हमारे प्रभु की माता महादेवी से, जो आश्रम में रह रही हैं, मिलकर उनकी आज्ञा से राजधानी को ही लौट जाएँगी। इसलिए आज इनका पड़ाव इसी आश्रम में डाला गया है। अतएव आप लोग,—

Chamberlain—Sir, hear, Padmavati, the sister of our great King, Darshaka, is here, She came to visit the queen-mother. who is a votaress of the hermitage and none, being permitted by her ladyship, she is going to Rajgriha. Therefore to-day she is pleased to stay in this hermitage. Therefore, you.

टिप्पणी—(१) **गुरुभिः**—पिता आदि पूज्य व्यक्तियों द्वारा । 'गुरुर्महत्याङ्गिरसे पित्रादौ' इति हैमः । यहाँ 'पूज्यानां नाम न ग्राह्यम्' तथा 'गुरवो नामकरणं कुर्वन्ति' इन दोनों आचार-सरणियों का निर्देश किया गया है। (२) **अभिहितनामधेयस्य**—कहा जाता है नाम जिसका उसकी अर्थात् महाराज दर्शक नाम वाले की (भगिनी)। अभिहितं नामधेयं यस्य तस्य । अभि+धा+क्त (त)। कर्मणि । (३) **महाराजदर्शकस्य**—महाराज दर्शक अजातशत्रु का पुत्र और बिम्बसार का पौत्र था। महान्+राजा इति महाराजः कर्मधारय समास । 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' से टच् प्रत्यय, महाराजश्चासौ दर्शकः इति महाराजदर्शकः तस्य । (४) **आश्रमस्थाम्**—आश्रमे तिष्ठति या सा आश्रमस्था ताम् आश्रम√स्था+क—टाप्। वृद्धावस्था और वैधव्य के कारण दर्शक की माता तपोवन में निवास करती थी। (५) **अभिगम्य**—अभि+गम्+ल्यप्—मिलकर। (६) **अनुज्ञाता**—आज्ञा दी हुई। अनु+ज्ञा+क्त (त) +टाप् (आ)। (७) **राजगृहम्**—यह उस समय मगधदेश की राजधानी था। आजकल पटना जिले में प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के स्थान से थोड़ी दूर पर राजगृह बसा हुआ है। (८) **आश्रमपदे**—आश्रम के स्थान में। 'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु' इस अमरकोश के प्रमाण से पद शब्द का अर्थ स्थान होता है। (९)**अभिप्रेत**—पसन्द है। अभि+प्र+इ+क्त (त) ।

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।

धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥६॥

अन्वय—तपोधनानि तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् वनात् स्वैरम् उपनयन्तु। हि नृपसुता धर्मप्रिया, तपस्विषु धर्मपीडाम् न इच्छेत् एतत् अस्याः कुलव्रतम् ॥६॥

संस्कृत टीका—तपोधनानि—तपश्चर्यासाधनानि तपःसाधनीभूतान् पदार्थानित्यर्थः, तीर्थोदकानि—तीर्थस्य नद्यादेः उदकानि जलानि, समिधः—हवनीयकाष्ठानि, कुसुमानि—पुष्पाणि, दर्भान्—कुशान्, वनात्—अरण्यात्, स्वैरम्—इच्छानुसारम्। उपनयन्तु—आनयन्तु। हि—यस्मात्, नृपसुता—राजकन्या, धर्मप्रिया—धर्मानुरागिणी, (अस्ति, अतएव एषा), तपस्विषु—तापसजनेषु, धर्मपीडाम्—धर्मक्रियाव्याघातम्, न—नहि, इच्छेत्—कांक्षेत्। एतत्—तपोविघ्नेच्छाराहित्यम्, अस्याः—राजपुत्र्याः कुलव्रतम्—वंशपरम्परागतो नियमः (विद्यते)। (अयं भावः—भवन्तः सर्वे तपःसाधकान्—तीर्थजलानि, पालाशतरोः काष्ठखण्डानि, पुष्पाणि, कुशान्—इत्यादिपदार्थान् वनात् यथेच्छं समाहरन्तु। यतः इयं राजकुमारी धर्मशीला वर्तते। तपस्विनां क्रियाकलापे मनागपि विघ्नं न सहते। मुनिजनतपश्चरणाभिरक्षणं तु अस्याः कुलपरम्परागतधर्मो वर्तते)॥६॥

अनुवाद—तपस्या के साधन—तीर्थ-जल, समिधा पुष्प और कुश वन से बे-रोक-टोक ले जायें। राजकुमारी धर्मात्मा हैं। ये तपस्वियों के धर्म में बाधा डालना नहीं चाहती। यह इनके वंश का नियम है ॥६॥

May at your will bring holy waters, faggots, flowers and Darba grass the valuable articles of penance. The princess loves piety and indeed she does not want disturbance in the duty of sages, this is her family vow.

टिप्पणी—(१) तपोधनानि—तपसे धनानि तपोधनानि। तपस्या के निमित्त द्रव्य अर्थात् वे पदार्थ जिनका उपयोग तपस्या के लिए किया जाता है। (२) तीर्थोदकानि—तीर्थस्य उदकानि—षष्ठी तत्पुरुष—तीर्थ का जल। (३) स्वैरम्—अपनी इच्छा के अनुसार। स्वस्य आत्मनः ईरः गमनम् इति स्वैरः (स्व+ईरः) 'स्वादीरेरिणोः' इति वार्तिकेन वृद्धिः। यहाँ पर क्रियाविशेषण है। अतएव द्वितीया हुई। (४) उपनयन्तु—लाइये। यहाँ प्रार्थना में लोट् लकार हुआ है। (५) धर्मप्रिया—जिसे धर्म प्रिय हो। धर्मः प्रियो यस्याः सा, बहुव्रीहि समास में

'वा प्रियस्य' इस वार्तिक से प्रिय शब्द का पूर्व प्रयोग विकल्प से होता है। इसीलिए 'धर्मप्रिया' प्रयोग हुआ, अन्यथा 'प्रियधर्मा' होता है। (६) धर्मपीडाम्—धर्मस्य तपोरूपस्य पीडा बाधा। 'पीडा बाधा'. इत्यमरः। (७) इच्छेत्—यहाँ अभीष्ट=सत्कारपूर्वक व्यापार में विधिलिङ् लकार हुआ है। (८) एतत्—यहाँ विधेय की प्रधानता से नपुंसक लिंग हुआ है। इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है और वसन्ततिलका छंद है॥६॥

यौगन्धरायणः—[स्वगतम्] एवम्! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति। ततः,—

संस्कृत टीका—एवम्—इत्थम् काञ्चुकीयेन यथार्थमेवोक्तमिति यावत्। एषा सा—इयं सैव, मगधराजपुत्री—मगधेश्वरस्य दुहिता, पद्मावती नाम—पद्मावतीत्याख्यया प्रसिद्धा या पुष्पकभद्रादिभिः, आदेशिकैः—दैवज्ञैः, आदिष्टा—कथिता, स्वामिनः—अस्माकं प्रभोः उदयनस्य, देवी—भार्या, भविष्यति—सम्पत्स्यते।

यौगन्धरायण—(मन मे) ऐसा! यह वही मगधनरेश की कन्या पद्मावती है, जो पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार महाराज (उदयन) की रानी होने वाली है। इसी कारण—

Youg.—(to himself) So this is that Padmawati, the Magadha princess who was predicted to become the queen of our monarch by astrologers like Pushpakbhadra and others then :—

टिप्पणी—(१) एवम्—ऐसा। (२) एषा सा—यह वही। (३) मगधराजपुत्री—मगधानां राजा मगधराजः तस्य पुत्री। (४) पुष्पकभद्रादिभिः—पुष्पकभद्र आदि के द्वारा। पुष्पकभद्रः आदिर्येषां ते पुष्पकभद्रादयः तैः। (५) आदेशिकैः—भविष्यद्वक्ता सिद्धपुरुष या ज्योतिषी। (६) आदेश=ज्योतिःशास्त्र का फल। 'ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते' (सिद्धान्तशिरोमणि)। 'आदेशेन दीव्यन्ति वा आदेशः शिल्पमेषाम्' इन विग्रहों में आदेश शब्द से क्रमशः 'तेन दीव्यति' या 'शिल्पम्' सूत्र से ठक् प्रत्यय और उसको इक आदेश हुआ।

प्रद्वेषो बहुमानो या सङ्कल्पादुपजायते।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता॥७॥

अन्वय—प्रद्वेषः वा बहुमानः सङ्कल्पात् उपजायते । भर्तृदाराभिलाषित्वात् अस्या मे महती स्वता (अस्ति) ॥७॥

संस्कृत टीका—प्रद्वेषः—द्वेषातिशयः, वा—अथवा, बहुमानः—अत्यादरः, सङ्कल्पात्—मानसात् कर्मणः, उपजायते—उत्पद्यते। भर्तृदाराभिलाषित्वात्—भर्तुःस्वामिनः उदयनस्य दाराः पत्नी तान् अभिलषति इति भर्तृदाराभिलाषी तस्य भावः तस्मात्, अस्यां—पद्मावत्या, मे—मम, महती—गुर्वी, स्वता—आत्मीयता (अस्ति)। (अयं भावः—जनस्य कस्मिंश्चित् विषये द्वेषाधिक्यं वा सम्मानाधिक्य स्वकीयमनोव्यापारादेव उत्पद्यते अर्थात् यस्य चित्ते यादृशो भावः सम्पद्यते तद्विषये, स तद्भावानुसारेणैव तं प्रद्वेष्टि वा बहु मन्यते। अतएव पूर्वम् अस्यां पद्मावत्याम् 'अनुचितोत्सारणाप्रवर्तिकेयम्' इति सङ्कल्पात् मम विद्वेषः आसीत्। अधुना तु 'इयं मे महाराजस्य राजमहिषी भवतु' इति सङ्कल्पात् अस्याम् मे महती आत्मीयताबुद्धिः जायते) ॥७॥

अनुवाद—घृणा या लगाव मन के भाव से ही उत्पन्न होते हैं। (अतएव अपने) स्वामी की पत्नी (बनाने) की इच्छा के कारण इस (पद्मावती) में मेरा भारी अपनापन हो रहा है ॥७॥

Liking and dislike are based on motive. On account of my ardent desire that she should become the wife of my lord, I feel next kinship towards her.

शब्द आत्मीय अर्थ का बोधक है—'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये' इत्यमरः। इस शब्द का प्रयोग कालिदास ने भी किया है—'कामी स्वतां पश्यति'। इस पद्य में अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग अलंकार हैं तथा अनुष्टुप् छंद है। इसमें कवि ने एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का निरूपण किया है। भिन्न-भिन्न समयों पर एक ही व्यक्ति एक ही वस्तु को अपनी धारणा या आवश्यकता के अनुसार अच्छा या बुरा समझता है। क्योंकि यौगन्धरायण पहले पद्मावती को मुनियों के हटाये जाने की प्रवर्तिका मान कर बुरा समझता था पर बाद में जब उसकी यह धारणा बनी कि इसी पद्मावती का विवाह महाराज उदयन से होगा और इस सम्बन्ध से महाराज की पुनः राज्य-प्राप्ति में सुविधा हो जायगी तो उसके मन में पद्मावती का महत्त्व बढ़ गया ।।७।।

वासवदत्ता–[स्वगतम्] राअदारिअति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ संपज्जइ। [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।]

वासवदत्ता—(मन में) 'राजकुमारी' यह सुनकर मुझे इसके प्रति बहन का-सा स्नेह भी हो रहा है।

Vasava.—(to herself) None that I hear thar this is she, a wave of sisterly affection floods my heart.

टिप्पणी—(१) राजदारिका—राजा की पुत्री। दारिका√दृ+णिच्+ण्वुल्—अक, टाप्, इत्व। (२) भगिनिकास्नेहोऽपि—भगिनी एव भगिनिका, भगिनी+क—टाप्, ह्रस्व। तस्याः स्नेहः=भगिनिकास्नेहः। वासवदत्ता और पद्मावती दोनों राजकुमारी थीं। इसलिए वासवदत्ता का पद्मावती के प्रति भगिनी तुल्य स्नेह होना स्वाभाविक था। यहाँ अपि शब्द से अत्यन्त सम्मान सूचित होता है। क्योंकि दोनों के कुलीन होने के कारण एक दूसरी का सम्मान करना उचित ही था। (३) सम्पद्यते—होता है। सम्+पद् (दिवादि)+लट् प्र० पु० ए० व०।

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ, इदं अस्समपदं पविसदु। [एतु एतु भर्तृदारिका, इदमाश्रमपदं प्रविशतु ।]

(अनन्तर परिवार सहित पद्मावती और चेटी का प्रवेश)

दासी--आइये, राजकुमारी जी ! आइये ! इस आश्रम में चलें।

(Then enter Padmawati and the maid with retinue.)

Maid--Come on, come on, princess, here is the hermitage, please enter.

टिप्पणी--(१) सपरिवारा--सखीवर्ग के साथ। परिवारेण सहिता इति सपरिवारा। परि परितः वारयति इति परिवारः, परि√वृ+घञ् (अ)। (२) चेटी--प्रधान परिचारिका, दासी। √चिट्+अच्=चेट+ङीप्। यद्यपि 'सपरिवारा' कहने से परिवार के अन्तर्गत दासी भी आ जाती है इसलिए इसका पृथक् उपादान करने की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु विशिष्ट दासी का बोध कराने के लिए नाटककार ने इसका प्रयोग किया है, ऐसा कथञ्चित् कह सकते हैं। (३) एदु एदु--आइए आइए। यहाँ वीप्सा में 'नित्यवीप्सयोः' सूत्र से द्वित्व हुआ है। इससे आदर सूचित होता है। अतएव अभीष्ट में लोट् लकार भी हुआ। (४) भत्तृदारिका--राजा की पुत्री। 'राजा भट्टारको देवस्तत्सुता भर्तृदारिका' इत्यमरः।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी)

तापसी--साअदं राअदारिआए [स्वागतं राजदारिकायाः।]

(तदनन्तर बैठी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी--राजकुमारी का स्वागत हो।

(Then enter a seated lady-ascetic)

Lady ascetic--Welcome to princess.

वासवदत्ता--[स्वगतम्] इअं सा राअदारिआए। अभिजणाणुरूवं खु से रूवं। [इयं सा राजदारिका। अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।]

वासवदत्ता--(मन में) यह वही राजकुमारी है। इसका सौन्दर्य कुलीनता के अनुरूप ही है।

Vasava.—(To herself) So she is the princess. Her form indeed conforms to her high birth.

टिप्पणी—(१) उपविष्टा—बैठी हुई। उप+विश्+क्त (त)+टाप् (आ)। यद्यपि आश्रम में राजकुमारी के पधारने पर उचित यह था कि तापसी उठकर उसकी अगवानी करती, किन्तु वह वृद्धा एवं तपः सिद्धा होने के कारण अपना गौरव बनाये रही और बैठे-बैठे ही उसने राजकुमारी का अभिनन्दन किया। (२) अभिजनानुरूपम्—अभिजनस्य=कुलस्य अनुरूपम्=योग्यम्। 'सन्ततिर्गोत्र-जननकुलान्यभिजनान्वयौ' इत्यमरः। अनुरूपम्—अनुगतं रूपमिति विग्रहे 'अव्ययं विभक्ति'—इत्यादिसूत्रेण अव्ययीभावसमासः। यहाँ पूरी पंक्ति का तात्पर्य यह है कि जहाँ पद्मावती का कुल ऊँचा है वहाँ उसका सौन्दर्य भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है।

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि ।[आर्ये ! वन्दे ।]

पद्मावती—आर्ये ! प्रणाम करती हूँ।

Padmavati—Revered lady, I salute.

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अदिहिजणस्स सग्रगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्वगेहम् ।]

तापसी—चिरजीवी होओ। आओ बेटी ! आओ ! तपोवन तो अतिथियों का अपना घर है।

Lady ascetic—Long life be yours. Come in my child, come in. A visitor is ever welcome to this hermitage.

टिप्पणी—(१) प्रविश प्रविश—आओ आओ। विशेष हर्ष सूचित करने के लिए 'प्रविश' का दो बार प्रयोग हुआ है। चूँकि राजकन्या रूपी विशिष्ट अतिथि का लाभ होने से तापसी का प्रमुदित होना उचित ही था। (२) नाम—यह प्रसिद्धार्थक अव्यय है। 'नाम प्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः। (३) अतिथिजनस्य—अभ्यागत लोगों का। अतति गच्छति बहुकालं न तिष्ठति इति अतिथिः,√अत्+इथिन्। मनु ने कहा है—'एकरात्रं तु निवसन् अतिथिः ब्राह्मणः स्मृतः'। यहाँ भावार्थ यह है कि तपोवन अतिथियों का अपना घर ही होता है। अतः जो यहाँ पर आता है, उसका भी यहाँ की वस्तुओं पर समान ही अधिकार होता है। अतएव राजकुमारी निःसंकोच प्रवेश करें।

पद्मावती—भोदु भोदु। अय्ये! विस्सत्यह्मि। इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि। [भवतु। भवतु। आर्ये! विश्वस्तास्मि। अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीतास्मि।]

पद्मावती—बस, बस! आर्ये! मुझे विश्वास हो गया। (आपके) इस सम्मानसूचक वचन से मैं अनुगृहीत हूँ।

Padmavati—Revered lady this welcome puts me at my ease. By this address of neat respect I feel favoured.

टिप्पणी—(१) भवतु-भवतु—बस बस। यहाँ सम्भ्रम से द्वित्व हुआ है। तापसी के औपचारिक वचनों से पद्मावती को संकोच हो रहा है। इसलिए वह आगे उपचार-प्रदर्शन को रोकने के लिए शीघ्रता से कह बैठती है कि 'हो गया, हो गया' अर्थात् अब इसकी आवश्यकता नहीं है। (२) विश्वस्ता—वि+श्वस्+क्त (त)+टाप् (आ)। निश्चिन्त 'शंकारहित' (३) बहुमानवचनेन—अत्यधिक आदरसूचक वचन से। बहु+मन्+घञ् (अ) बहुमानः तस्य वचनं तेन—करणे तृतीया।

वासवदत्ता—(स्वगतम्) ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा। [नहि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा।]

वासवदत्ता—(मन में) केवल रूप ही नहीं इसकी वाणी भी मधुर है।

Vasav.—(To herself) Not only the form but her address also is sweet.

तापसी—भद्दे। इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोच्चिराआ ण वरेदि? [भद्रे! इमां तावत् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद्राजा न वरयति?]

संस्कृत टीका—भद्रे!—कल्याणि! भद्रमुखस्य—सौम्यदर्शनस्य महाराजदर्शकस्येत्यर्थः, इमाम्—एताम्, भगिनिका—स्वसारम् तावत् इति वाक्यालंकारे, कश्चित्—कोऽपि, राजा—नरेशः, न—नहि, वरयति—विवाहार्थं प्रार्थयते (अय भाव—केनचित् भूपतिना सह महाराजदर्शकभगिन्याः पद्मावत्याः वैवाहिको वार्तालापो न भवति किम्)?

तापसी—शुभे! क्या कोई राजा महाराज दर्शक की इस बहन (पद्मावती) का वरण नहीं करता (अर्थात् किसी के साथ इसके विवाह की चर्चा नहीं चल है)।

Lady-ascetic—Good girl, is there no King that seeks your prince's sister for a bride,

टिप्पणी—(१) भद्रे !—यह सम्बोधन चेटी के लिए है। (२) भद्रमुखस्य—सौम्य आकृति वाले। भद्र मुखं यस्य स भद्रमुखः तस्य जिसका मुख कल्याणसूचक हो अर्थात् प्रियदर्शन। साहित्यदर्पणकार ने कहा है—'सौम्यभद्रमुखेत्येवमधमैस्तु कुमारकाः' अर्थात् निम्नश्रेणी का पात्र किसी राजकुमार को "सौम्य' या 'भद्रमुख' इस प्रकार के शब्दों से सम्बोधित करे। इस नियम के अनुसार तापसी को किस श्रेणी का पात्र माना जाय, यह शोचनीय है। ध्यान रहे कि इससे पूर्व यही तापसी अपनी मान्यता के कारण राजकुमारी के स्वागत के लिए भी उठकर खडी नहीं होती है। (३) भगिनिकाम्—अनुकम्पिता भगिनी इति भगिनिका ताम्, भगिनी+कन् (अनुकम्पायाम्) टाप् (आ)। (४) न वरयति। म० पु० 'ए० व०। नहीं चाहता है ? ईप्सार्थक वर् धातु से चौरादिक णिच्+लट्—तिप्।

चेटी—अत्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जइणीए। सो दारअस्स कारणादो दूदसंपादं करेदि। [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणात् दूतसम्पातं करोति।]

दासी—उज्जैन के राजा प्रद्योत हैं। उन्होंने (अपने) पुत्र के वास्ते दूत भेजा है।

Maid—There is a King of Ujjain by name Pradyota on behalf of his son he sends ambassadors.

टिप्पणी—(१) प्रद्योत=चण्ड महासेन प्रद्योत। यह पांचवी शताब्दी ई० पू० में मालवा का शक्तिशाली शासक था और यही वासवदत्ता का पिता था। (२) दारकस्य=पुत्रस्य (शेषे षष्ठी)। (३) कारणात्—हेतौ पंचमी। (४) दूतसम्पातं—करोति=बार-बार दूत भेजते हैं। दूतस्य सम्पातः=सम्प्रेषणम्। दूत=सन्देश पहुँचाने वाला। 'स्यात् सन्देशहरो दूतः' इत्यमरः। यहाँ भावार्थ यह है कि उज्जैन के राजा प्रद्योत अपने पुत्र के साथ पद्मावती का विवाह-सम्पन्न करना चाहते हैं। प्रद्योत के दो पुत्र थे—गोपालक और पालक।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु। एसा अ अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता।]

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा अच्छा! यह तो अब (मेरी) अपनी हो गई।

Vasav—(To herself) she is now ours indeed.

टिप्पणी—(१) भवतु भवतु—यहाँ हर्षातिरेक मे द्विरुक्ति हुई है। (२) आत्मीया=अपनी, स्वकीया। आत्मनः इयम् इति आत्मन्+छ—ईय, टाप् (स्त्रियाम्)। (३) संवृत्ता=सम्+वृत्+क्त (त)=टाप् (आ)। संजाता=हुई।

तापसी—अहाँ खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि। [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

तापसी—निःसन्देह (पद्मावती का) यह रूप लावण्य इस सम्मान के योग्य है। सुनते हैं कि दोनों राजवंश बड़े ऊंचे हैं।

Lady ascetic—Her beauty proves her worthy of such honour Both the royal houses are of high fame.

टिप्पणी—(१) अर्हा=योग्य। √अर्ह्+अच्—टाप् (आ) (स्त्रियाम्) (२) खलु—यह निश्चयार्थक अव्यय है। (३) राजकुले—दर्शक का राजवंश और प्रद्योत का राजवंश। (४) महत्तरे—अत्यन्त महान्। अतिशयेन महती इति महत्तरे महत्+तरप्। यहाँ पहली पंक्ति का आशय यह है कि पद्मावती का अनिन्द्य सौन्दर्य इतना बढ़ा-चढ़ा है कि इसे अतिशय प्रतापशाली राजा प्रद्योत की पुत्रवधू होने का गौरव मिलना ही चाहिए।

पद्मावती—अय्य! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं? अभिप्पेदप्पदाणेण तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति। [आर्य! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम्? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमिच्छतीति।]

संस्कृत-टीका—आर्य! काञ्चुकीय, आत्मानम्—माम्, अनुग्रहीतुम्—कृतार्थयितुम्, मुनिजनः, दृष्टः—अवलोकितः, किम्?, अभिप्रेतप्रदानेन—वांछितवस्तुदानेन हेतुना, तपस्विजनः—मुनिजनः, उपनिमन्त्र्यताम्—अभ्यर्थ्यताम् तावत् इति वाक्यालंकारे, (यत्) अत्र—अस्मिन् स्थाने, कः किम्, इच्छति—वाछति (अय भावः भवता केऽपि मुनयो दृष्टाः, ये मत्तः किञ्चित् गृहीत्वा माम् अनुगृह्णीयुः? दृष्टाश्चेत्, तान् स्वस्वामीप्सितार्थकथने प्रवर्तयतु भवान्)।

अनुवाद—पद्मावती—आर्य! क्या आपको ऐसे कोई ऋषि-मुनि दिखाई

दिये हैं, जो (कुछ लेकर) मुझे अनुगृहीत करें ? अभीष्ट वस्तु दी जाने की घोषणा करते हुए आप तपस्वियों से प्रार्थनापूर्वक पूछें कि कौन क्या चाहते हैं।

Padmavati—(To Chamberlain)—has any holy anchorite been found, whom I may gratify myself by serving. Let all the ascetics be called near for gifts they desire and enquire "Does any body want any thing ?"

टिप्पणी—(१) आत्मानमनुग्रहीतुम्—मुझ पर कृपा करने के लिए। चूँकि राजकुमारी सात्त्विक दान देना चाहती है, इसलिए वह इस दान से प्रतिग्रहीता को कृतार्थ न समझ कर स्वयं को कृतकृत्य समझती। सात्त्विक दान का लक्षण गीता में लिखा है—'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥' (२) 'अभिप्रेतप्रदानेन—अभीष्ट वस्तु देने के कारण अभिप्रेत—अभि-प्र+इ+क्त(त) कर्मणि तस्य प्रदानेन। यहाँ हेतु में तृतीया हुई। (३) उपनिमंत्र्यताम्—उप+नि+मन्त्+लोट् कर्मणि (प्र० पु० ए० व०)। (४) तावत्—अव्यय। इसका प्रयोग वाक्य-शोभावर्धक है।

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या। भो भो आश्रमवासिनस्तपस्विनः! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः। इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विश्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।

संस्कृत टीका—भवत्या—राजकुमार्या, यत्, अभिप्रेतम्—इष्टम्। शृण्वन्तु—आकर्णयन्तु, भवन्तः—श्रीमन्तः। इह—अत्र, अत्रभवती—माननीया, मगधराजपुत्री—मगधेश्वरकुमारी, अनेन—एतेन तापस्या प्रदर्शितेनेति यावत्, विस्रम्भेण—स्वागतोपचाररूपविश्वासेन, उत्पादितविस्रम्भा—जनितविश्वासा, (भूत्वा), धर्मार्थम्—पुण्याय, अर्थेन—द्रव्येण (हेतुना), उपनिमन्त्रयते-आह्वयते (भवतः) (अयं भावः—तापसीकृतेन सत्कारेण समुत्पन्नविश्वासा मान्या मगधराजकुमारी पुण्यकामाय भवद्भ्यः तपोवनेभ्यः भवदभिलषितवस्तूनि दित्सति। अतो भवन्तः कृपया स्वस्वाभिलाषं प्रकटयन्तु)।

कञ्चुकी—आपकी जो इच्छा। हे आश्रमनिवासी मुनिवृन्द! आप लोग (कृपा करके) सुनें। यहाँ माननीय मगधराजकुमारी अपने स्वागत से सन्तुष्ट होकर पुण्य की कामना से आप लोगों को दान देने के लिए बुला रही हैं।

Chamberlain—It shall be as your ladyship desires. Oh! . residing in this hermitage, listen, Padmavati, the royal

maid of Magadh, gratified by the reception here is inviting you, to receive gifts (from her) in a religious largers.

टिप्पणी—(१) यदभिप्रेतम्—जसी इच्छा। यत् और तत् शब्द बुद्धिस्थ-परामर्शक होते हैं। अर्थात् तत् शब्दघटित वाक्य यत् शब्दघटित वाक्यान्तर की आकांक्षा रखता है और तत् शब्दघटित वाक्य यत् शब्दघटित वाक्यान्तर की। इस नियम के अनुसार यहाँ 'तद्विधीयते मया' इस वाक्य का अध्याहार किया जायगा। फलतः अर्थ होगा—'आपकी इच्छा के अनुसार मैं करूँगा'। (२) विस्रम्भेण—विश्वास से। 'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः। (३) धर्माय—पुण्य के लिए। धर्माय इदम् इति धर्मार्थम् मयूरव्यंसकादित्वात् नित्यसमास। 'अविग्रहो नित्य-समासः अस्वपदविग्रहो वा'। (४) अर्थेन—धन से। 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजन-निवृत्तिषु' इत्यमरः।

> कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
> दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद्भवेत् ॥
> आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
> यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

अन्वय—कस्य कलशेन अर्थः? कः वासः मृगयते? पुनः यथानिश्चितं दीक्षां पारितवान् (कः) किम् इच्छति, यत् गुरोः देयं भवेत्। धर्माभिरामप्रिया नृपजा इह आत्मानुग्रहम् इच्छति। यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तत् वदतु, अद्य कस्य किम् दीयताम् ॥८॥

संस्कृत टीका—कस्य—तपस्विनः, कलशेन—ताम्रादिघटेन कमण्डल्वादिना पात्रेणेति यावत्, अर्थः प्रयोजनम्, (विद्यते)? कः, वासः—वस्त्रं मृगयते अन्विष्यति वाञ्छतीत्यर्थः? पुनः—भूयः, यथानिश्चितं—यथासंकल्पितं, दीक्षा—ब्रह्मचर्यपूर्वकं वेदाध्ययनव्रतं, पारितवान्—समापितवान्, (कः) कि—वस्तुविशेषम् इच्छति—वाञ्छति, यत्—वस्तु, गुरोः—आचार्यस्य, देयं—दातव्यं, भवेत्—स्यात्? धर्माभिरामप्रिया—धर्मे अभिरामः अभिरुचिः येषां ते धर्माभि-रामाः=तपस्विनः ते प्रियाः यस्याः सा, नृपजा—राजकन्या, इह—अस्मिन् आश्रमपदे, आत्मानुग्रहम्—आत्मनः कृतार्थताम्, इच्छति—अभिलषति। यस्य—तपस्विनः यत्—वस्तु, समीप्सितम्—अभीष्टम्, अस्ति—विद्यते, तत्—वस्तु, वदतु—कथयतु, अद्य—अस्मिन् दिवसे, कस्य—तपस्विनः, किं—वस्तु दीयताम्—समर्प्यताम्? (अयं भावः—अद्य मगधराजकुमारी इहत्यानां सर्वेषां

तपस्विनाम् आवश्यकानि वस्तूनि दातुमिच्छति । अतएव यः तपस्वी कमण्डल्वादि पात्रं वांछति स निःशंकमागत्य गृह्णातु । यः वस्त्रमिच्छति स तत् लभेत । यः गुरुगृहवासपूर्वकं वेदाध्ययनव्रतं समापितवान् स गुरवे देयां दक्षिणामपि प्राप्नुयात् । भवत्सु प्रीतिं कुर्वाणा राजकुमारी भवद्भ्यः दानानि दत्त्वा आत्मनः कृतार्थतां कामयते । अतएव भवन्तः सर्वे स्वस्वाभिलषित प्रकाशयन्तु आज्ञापयन्तु च अनया कस्मै किं देयमिति) ॥८॥

किसे जलपात्र की आवश्यकता है । कौन वस्त्र खोज रहा है ? और नियम के अनुसार पढाई को पूरा कर लेने वाला क्या चाहता है, जो (उसे) गुरु को देना हो । धर्म मे आनन्द लेने वालों से प्रेम करने वाली राजकुमारी इस तपोवन मे अपने ऊपर (आपकी) कृपा चाहती हैं । (अतएव) जिसको जो अभीप्ट हो, वह बताएँ कि आज किसको क्या दिया जाय ॥८॥

Who lacks the hermit's bowl or who requires the russet that this rule prescribes ? Does any one want to make a present to his preceptor after having fulfiled the investiture the princess devoted to the lovers of duty desires favours to herself. Therefore say whatever is desired, what should be given today and to whom ?

टिप्पणी—(१) कलशेन—घड़े अथवा जलपात्र से । फल भी हेतु माना जाता है इसलिए यहाँ 'अध्ययनेन वसति' की तरह हेतु मे तृतीया हुई । (२) अर्थः—प्रयोजन । अर्थात् किसको जलपात्र की आवश्यकता [है । (३) यथानिश्चितम्—निश्चय एव निश्चितम्, भाव मे क्त प्रत्यय । निश्चय=निर्धारण या संकल्प । निश्चितम् अनतिक्रम्य इति यथानिश्चितम्, यथार्थ में अव्ययीभाव समास । (४) दीक्षाम्—वेदाध्ययन कर्म । √दीक्ष्+अ (गुरोश्च हलः इति सूत्रेण)+टाप् । (५) पारितवान्—समाप्त किया हुआ । पार् तीरकर्मसमाप्तौ धातु से क्तवतु प्रत्यय । (६) गुरोः देयम्—गुरु को देने योग्य । यहाँ 'राज्ञः करं ददाति' की भाँति सम्बन्ध सामान्यमात्र की विवक्षा मे षष्ठी हुई । पहले स्नातक अध्ययन-समाप्ति के पश्चात् गुरु को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देता था-'स्नास्यस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्' इति मनुः । दक्षिणा का विधान तो यहाँ तक है कि यदि न कुछ हो सके तो एक नारियल या एक जोड़ा यज्ञोपवीत ही गुरु को समर्पित कर दे । (७) इह—इस वन मे अथवा इस दान के वितरण के विषय मे । (८) आत्मानुग्रह—अपने प्रति की गई कृपा न कि दानग्रहीता के प्रति ।

राजकुमारी पद्मावती की यह भावना कि दान ग्रहण करने से ग्रहीता द्वारा दाता उपकृत होता है उसकी निष्कपट एवं शुद्ध दानशीलता की द्योतक है। (९) धर्माभिरामप्रिया—धर्म में रुचि रखने वालों से प्रीति करने वाली अथवा स्वयं धर्म में रुचि रखने के इच्छुक अथवा धर्म मे रुचि रखने के कारण सबको प्रिय।

धर्मे अभिरमन्ते इति धर्माभिरामा: ते प्रिया: यस्या: सा यद्वा धर्मे अभिराम: धर्माभिराम: स: प्रिय: यस्या: सा धर्माभिरामप्रिया। (१०) यद् यस्यास्ति समीप्सितम्—जिसकी जो इच्छा हो। यहाँ 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से 'यस्य' में षष्ठी हुई (११) समीप्सितम्—सम्√आप्+सन्+क्त। (त) भावे। इच्छित। यहाँ विशेष 'वस्तु' छिपा हुआ है। 'विशेष्योपपत्ती विशेषणमात्रप्रयोग:' से यहाँ केवल 'समीप्सितम्' विशेषण ही प्रयुक्त हुआ है। (१२) दीयताम्—दिया जाय। दा+लोट् कर्मणि प्र० पु० ए० व०। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है।।८।।

यौगन्धरायण:—हन्त! दृष्ट उपाय:। (प्रकाशम्) भो:! अहमर्थी।

यौगन्धरायण:—अहा! उपाय सूझ गया। (प्रकट) अजी! मैं प्रार्थी हूँ।

Youg—Oh ! a way is found out (loudly) Sir, I am a supplicant.

टिप्पणी—हन्त! यह अव्यय है। इसका अर्थ हर्ष होता है 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः' इत्यमरः। उपाय: युक्ति, मार्ग। उपायते अनेन इत्युपाय: उप√अय्+घञ् (२) प्रकाशम्—सुना कर। इसका सरल पहले 'आत्मगतम्' के साथ बताया जा चुका है। यहाँ 'प्रकाशम्' से पहला वाक्य 'स्वगत' ही है यह अर्थापत्ति से सिद्ध होता है। (३) अर्थी—याचक। अर्थ:—प्रयोजनम् अस्ति यस्य इति अर्थी, अर्थ+इनि।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं। [दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम्।]

पद्मावती—भाग्य से तपोवन में मेरा आना सफल हुआ।

Padmavati—O Joy ! my Journey to this hermitage has not been in vain.

टिप्पणी—(१) दिष्ट्या—सौभाग्य से। यह हर्षवाची अव्यय है। 'दिष्ट्या

समुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः। पद्मावती को हर्ष इसलिए हुआ कि तपोवन में याचक का मिलना कठिन था।

तापसी—संतुट्ठतवस्सिजणं इदं अस्समपदं। आअन्तुएण इमिणा होदव्वं। [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम्। आगन्तुकेनानेन भवितव्यम्।]

तापसी—इस आश्रम के सभी तपस्वी सन्तुष्ट हैं, यह कोई आगंतुक होगा।

Lady ascetic—In this hermitage all the sages are satisfied. This must be some outsider.

टिप्पणी—(१) संतुष्टतपस्विजनम्—जहाँ सबके सब तपस्वी सन्तुष्ट हों ऐसा। सन्तुष्टः तपस्विजनः यस्मिन् तत् तथाविधम्। (२) आगंतुकेन—नवागत, अजनबी। आगच्छति इति आगन्तुः, आ√गम्√तुन् 'सितनिगमि' इत्युणादिसूत्रेण, आगन्तुरेव आगन्तुः, आगन्तु+क। (३) भवितव्यम्√भू+तव्यत् (भावे)।

काञ्चकीयः—भोः! किं क्रियताम्?

कंचुकी—अजी, क्या चाहते हैं?

Chamberlain—Sir, what should be done for you.

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम्। कुतः—

संस्कृत टीका—इयं—मत्समीपवर्तिनी, मे—मम, स्वसा—भगिनी (अस्ति)। प्रोषितभर्तृकाम्—प्रोषितः=विदेश गतः भर्ता=पतिः यस्याः ता तथाभूताम्, अत्रभवत्या—मान्यया मगधेशकुमार्या, कञ्चित्कालं—किञ्चित्कालपर्यन्तं, परिपाल्यमाना—परिरक्ष्यमाणाम्, इच्छामि—वाञ्छामि। कुतः—यस्मात् कारणात्। (अयं भाव.—अस्याः मे स्वसुः पतिः विदेश गतोऽस्ति। तम् अन्विष्य यावदहं प्रत्यानयामि तावत्कालपर्यन्तं मान्या पद्मावती इमा परिपालयतु—इत्येव मम याचना।)

अनुवाद—यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है। इसके पति परदेश गये हुए हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कुछ समय तक माननीय राजकुमारी जी इसको अपनी देख-रेख में रखें।

Youg.—Here is my sister. I desire that your ladyship should look after her, as her husband has gone abroad, why.

टिप्पणी—(१) स्वसा—बहन। 'स्वसारमादाय विदर्भनाथः' रघुवंश। सु√अस्+ऋन्। (२) प्रोषितभर्तृकाम्—वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो। साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण किया है—'नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः। सा मनोभवदुःखार्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका॥' प्रोषितो भर्ता यस्याः ताम् बहुव्रीहिसमासे कृते 'नद्यृतश्च' इत्यनेन कप् ततष्टाप्। प्रोषितः-प्र√वस्+क्त (त); 'वसतिक्षुधोरिट्' इति सूत्रेण इडागमः, यजादित्वात् सम्प्रसारणं च। (३) कञ्चित्कालम्—कुछ समय तक। यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया हुई। (४) परिपाल्यमानाम्=सुरक्षित। परि√पाल्=णिच्+लट् (कर्मणि)—शानच्, यक्, मुमागम।

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः॥६॥

अन्वय—न एव अर्थैः, न अपि भोगैः, न वस्त्रैः (मम) कार्यम् (अस्ति)। न अहं वृत्तिहेतोः काषायं प्रपन्नः। इयं कन्या दृष्टधर्मप्रचारा धीरा (अस्ति अतः) भगिन्याः चारित्रं रक्षितुं शक्ता (अस्ति)॥६॥

संस्कृत टीका—न एव—नहि एव, अर्थैः—धनैः, न अपि भोगैः—भोग्यवस्तुभिरपि न, न वस्त्रैः—न वासोभिः, (मम) कार्यम्—प्रयोजनम् (अस्ति), न अहं—न यौगन्धरायणः, वृत्तिहेतोः—जीविकार्थम्, काषायं—गैरिकरक्तं वस्त्रं सन्यासमिति यावत्; प्रपन्नः—स्वीकृतवान्। इयं—पुरो दृश्यमाना, कन्या—कुमारी, दृष्टधर्मप्रचारा—दृष्टः=अवलोकितः धर्मप्रचारः=धर्माचरणं यस्याः सा, धीरा—पण्डिता मनस्विनीत्यर्थः (अस्ति अतः) मे—मम, भगिन्याः—स्वसुः, चारित्रं—चरित्रं सतीत्वमिति यावत्, रक्षितुं—पालयितुं, शक्ता—समर्था (वर्तते)। (अयं भावः—यौगन्धरायणः काञ्चुकीयं कथयति—मम धनैः वस्त्रैः भोग्यपदार्थैश्च प्रयोजनं नास्ति। अहं जीविकार्थं प्रव्रज्यां न गृहीतवानस्मि। इयं राजकुमारी धर्माचरणशीला विदुषी च वर्तते। अतः मम भगिन्याः चरित्रं रक्षितुं समर्था भवेदिति मे परो विश्वासः)॥६॥

अनुवाद—न तो धन-सम्पत्ति से, न सांसारिक सुखों से और न वस्त्रों से ही (मुझे कोई) प्रयोजन है। न मैंने आजीविका के लिए गेरुआ वस्त्र धारण किया है। यह राजकुमारी धर्मात्मा तथा विदुषी हैं। मेरी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकती हैं (अतएव मेरी प्रार्थना स्वीकार करें)॥६॥

I have no need ; of money, clothes, or chattells. It's not to gain a earning. that I wear these ochre garments. This wise lady knowing the path of duty will be able to guard the chastity of my sister.

टिप्पणी--(१) अर्थैः, भोगैः, वस्त्रैः--यहाँ फल को भी हेतु मानकर हेतु मे तृतीया हुई है। (२) काषायम्--कषायेण रक्तम् इति काषायम्, कषाय+अण् 'तेन रक्तं रागात्' इत्यनेन। इसका अभिधेय अर्थ है--गेरुआ रंग मे रँगा हुआ। पर लाक्षणिक अर्थ होगा--गेरुआ वस्त्र, संन्यास जीवन। यहाँ यौगन्धरायण के कहने का भाव यह है कि उसने जीविका के लिए गेरुआ वस्त्र धारण नही किया है। वह तो त्यागी है और वैराग्य के कारण इस रूप को धारण किया है। अतः उसे वस्त्र और भोग आदि की चाह नही है। वह तो केवल अपनी बहन को ही राजकुमारी के पास सुरक्षित रखना चाहता है। (३) वृत्तिहेतोः--जीविका के लिए। वृत्तिः जीविका तस्याः हेतुः तस्य। (४) प्रपन्नः--ग्रहण किया। प्र+पद्+क्त (त)। (५) धीरा--विदुषी। 'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः। (६) दृष्टधर्मप्रचारा--जिसका धर्माचरण देखा गया हैं अर्थात् धर्म-कर्म मे निरत रहने वाली। (७) चरित्रम्--चर्यते अनेन इति चरित्रम्,√चर्+इत्र 'अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः' इत्यनेन। चरित्रमेव चारित्रम्, चरित्र+अण् स्वार्थे। यहाँ तात्पर्य यह है कि जो स्वय चरित्रवान् और धर्मपरायण है वही दूसरे के चरित्र और धर्म की रक्षा कर सकता है। पद्मावती ने अभी-अभी अपनी धार्मिक वृत्ति का परिचय दिया है। अतः यौगन्धरायण को उससे पूरी आशा है कि वह उसकी बहन के चरित्र की रक्षा कर सकेगी। इसी कारण वह पद्मावती के हाथ अपनी बहन को थाती रखना चाहता है। इस श्लोक मे पद्मावती की न्यासरक्षणयोग्यता का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है और वैश्वदेवी नामक छन्द है। इसका लक्षण है--'पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ' ॥६॥

वासवदत्ता--[आत्मगतम्] हं,[१] इह मं णिक्खिविदुकामो [२]अय्यजोगन्धरायणो। होदु, [३]अविआरिअ कमं ण करिस्सदि। [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः। भवतु, अविचार्य कर्म न करिष्यति।]

१. हा। २. अय्यो इति केवलम। ३. स मवि।

वासवदत्ता--(मन में) उँह, आर्य यौगन्धरायण मुझे यही सौंपना चाहते हैं। अस्तु, बिना विचारे वे कोई काम नहीं करेंगे।

Vasav.—(To Herself) Humph; The revered Yougandharayan wishes to entrust me to her care. Well! he will do nothing without due thought.

टिप्पणी--(१) हुम्--यह वेदनासूचक अव्यय है। (२) इह--पद्मावती के पास। (३) निक्षेप्तुकामः--धरोहर रखने को इच्छुक। निक्षेप्तुं कामो यस्य स निक्षेप्तुकामः। यहाँ 'तुकाममनसोरपि' इस कारिका के बल से 'निक्षेप्तुम्' में 'म्' का लोप हो जाता है। (४) अविचार्य क्रमं न करिष्यति--बिना सोचे-समझे कदम नहीं उठायेंगे। क्रमम्=पादविन्यासम्।

काञ्चुकीयः--भवति! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रतिजानीमः। ? कुतः--

संस्कृत टीका--भवति!--माननीये!, अस्य--यौगन्धरायणस्य, व्यपाश्रयणा--आश्रययाचना, खलु--निश्चयेन, महती--गुर्वी (अस्ति)। कथ--केन प्रकारेण, प्रतिजानीमः? कुतः--यतः--

अनुवाद--कंचुकी--राजकुमारी जी! इसकी आश्रय-प्रार्थना बहुत बड़ी अर्थात् कठिन है। हम कैसे स्वीकार करें? क्योंकि--

Chamberlain—Your ladyship, his expectation seems very high. How can we promise? because!

टिप्पणी--(१) व्यपाश्रयणा--आश्रय-प्राप्ति की इच्छा। वि-अप-आ√श्रि+युच् (बाहुलकात्)--अन, टाप्। यहाँ कंचुकी कहना चाहता है कि इसकी प्रार्थना को स्वीकार करना टेढ़ी खीर है। क्योंकि पहले तो न्यास की रक्षा ही दुष्कर होती है, फिर यह तो विचित्र न्यास है। यह लड़की है और रूपवती भी। इसके चरित्र का भी पता नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि विपत्ति में फँस जायें। अतएव इसकी अभिलाषा पूर्ण करना दुःसाध्य है।

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥१०॥

अन्वय--अर्थः दातु सुख भवेत् प्राणाः सुखम् तपः सुखम् अन्यत् सर्वम् सुखं भवेत् न्यासस्य रक्षण दुःखम् ॥१०॥

संस्कृत टीका—अर्थः—धनम्, दातुं—समर्पयितुम्, सुखम्—अनायासं, भवेत्—स्यात्, प्राणाः—असवः, (दातुं सुखम्) तपः—तपस्या तपःफलमिति यावत् (दातुं सुखम्) अन्यत्—इतरत्, सर्वं—सकलं, सुखं—सुकरं, भवेत् (किन्तु) न्यासस्य—निक्षेपस्य, रक्षणं—धारणं, दुःखं—दुष्करम् (अयं भावः—धनप्राणतपःफलादीनां दानं सुकरं भवति किन्तु न्यासस्य रक्षणं सर्वथा दुष्करमेव। अतएव यौगन्धरायणस्य अभिलाषपूरणम् अस्माभिः अशक्यमस्ति) ॥१०॥

अनुवाद—धन देना आसान है। प्राण, तपस्या का फल और सब कुछ दे देना सरल है; किन्तु अमानत की रक्षा करना कठिन है॥१०॥

It is easy to give away wealth, life or even (power of) penance. All other things are easy (but) to keep a trust safe is difficult.

टिप्पणी—(१) दातुं भवेत्—दातुम्—दान। 'तुम्' प्रत्यय यहाँ भाव मे हुआ है अतः इसका अर्थ होगा 'दानम्' अर्थात् धन देना। यहाँ 'शकधृषज्ञाग्लाघट-रमलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्' सूत्र से अस्त्यर्थ मे तुमुन् प्रत्यय हुआ।(२) प्राणाः-'पुंसि भून्यसवः प्राणाः' इस कोश-वाक्य के प्रामाण्य से 'प्राण' शब्द का प्रयोग पुंल्लिंग और बहुवचन मे ही होता है। (३) न्यासस्य—धरोहर का। (४) दुःखम्—दुष्करम्, कठिन। इस श्लोक मे अर्थान्तरन्यास अलंकार है, क्योंकि 'सब कुछ देना सरल है' इस सामान्य का समर्थन 'न्यासरक्षण कठिन है' विशेष से होता है।) और अनुष्टुप् छन्द है ॥१०॥

पद्मावती—अय्य, पढमं उग्घोसिअ को कि [१]इच्छदित्ति अजुत्तं दाणिं विआरिदुं। जं एसो [२]भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो। [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम्। यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः।]

अनुवाद—पद्मावती—आर्य ! पहले यह घोषणा करके कि कौन क्या चाहता है, अब उसमे आगा-पीछा करना अनुचित है। ये जो कहते हैं, उसे आप करें।

Padmavti—Having proclaimed that all might ask a boon, It is not proper to hesitate pray, therefore, see that this man desires is done.

टिप्पणी—(१) उद्घोष्य—'कस्यार्थः कलशेन' इत्यादि द्वारा 'किसकी क्या

---

१. एत्थ इच्छ० (अत्र इच्छ०)।

२. आणवेदि (आज्ञापयति)।

अभिलाषा है, वह निःसंकोच प्रकट करें इस प्रकार घोषणा करके। उत्√घुष्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। (२) अनुतिष्ठतु—सम्पन्न करें।

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याहितम्।

कंचुकी—यह आपने समीचीन कहा।

Chamberlain—Your ladyship has said the proper thing.

टिप्पणी—(१) अनुरूपम्—उचित अर्थात् कुल, शील आदि के योग्य। अनुगतं रूपमिति अनुरूपम्, 'अव्ययं विभक्ति—इत्यादिसूत्रेण अव्ययीभावसमासः।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी।]

दासी—इस प्रकार सत्य बोलने वाली राजकुमारी चिरकाल तक जीएँ।

Maid—Long live the princess who thus truly sticks to her word

टिप्पणी—(१) सत्यवादिनी—सत्य भाषण करने वाली। सत्यं वदितु शील यस्या. सा सत्यवादिनी, सत्य√वद्+णिनि—ङीप् (ई)। कंचुकी को प्रतिज्ञापालन करने का आदेश देने के कारण पद्मावती के लिए चेटी ने यह विशेषण प्रयुक्त किया है। (२) चिरं जीवतु—दीर्घायु हों। यद्यपि दासी को आशीर्वाद देने का अधिकार नहीं है, किन्तु यह दासी पद्मावती की सखी के समान थी। अथवा इसने आशीर्वाद नहीं दिया बल्कि आनन्दातिरेक में अपना मानसिक उद्गार प्रकट किया।

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे! [चिरं जीवतु भद्रे।]

तापसी—मंगलमयी! (आप, दीर्घायु हों।

Lady ascetic—Long live good girl.

काञ्चुकीयः—भवति! तथा। (उपगम्य) भोः! अभ्युपगतमत्र भवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या।

कंचुकी—अच्छा, देवी! (समीप जाकर) भगवन्! माननीया राजकुमारी ने आपकी बहन की देखभाल करना स्वीकार कर लिया है।

Chamberlain—Your ladyship (alright) (Approaching) Sir, her ladyship has agreed to be the guardian of your sister,

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्र-भवतीम् ।

यौगन्धरायण—राजकुमारी जी ने मुझ पर बड़ी कृपा की। बच्ची ! देवी जी के पास जा।

Youg.—I am favoured by the princess. Go, girl, to the lady.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] का गई। एसा गच्छामि मंदभाआ।
[का गतिः एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

वासवदत्ता—दूसरा उपाय ही क्या है। मैं अभागी अब जाती हूँ।

Vasav—(Aside) what help ? unhappy that I am, I go.

टिप्पणी—(१) भवति–हे माननीय पद्मावती। भवत्+ङीप् (ई)–भवती। सम्बोधन एकवचन में 'हे भवति' रूप होता है। (२) तथा—ऐसा ही हो। यहाँ 'अस्तु' क्रिया छिपी हुई है। वास्तव मे 'तथास्तु' होना चाहिए। (३) अभ्युपगतम्—स्वीकार कर लिया गया है अभि+उप्+गम्+क्त (त) कर्मणि। (४) अत्रभवतः—पूज्य आपकी (भगिनी)। (५) का गतिः—दूसरा उपाय क्या है। अर्थात् पद्मावती की संरक्षकता मे जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही है। (६) मन्दभागा—मन्दः=अल्पः भागः=भाग्य यस्याः सा। 'भागो रूप्यार्धके भाग्यैकदेशयोः' इति हैमः। यहाँ वासवदत्ता अपने को अभागिन इसलिए कह रही है कि एक तो पति और बन्धु-बान्धवों का वियोग वह सहन कर ही रही थी, अब दूसरा एकमात्र अवलम्बन यौगन्धरायण का भी वियोग सहन करना पडेगा, इससे बढकर दुर्भाग्य क्या होगा।

पद्मावती—भोदु भोदु। अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु । आत्मीयेदानीं संवृत्ता ।]

पद्मावती—अच्छा, अच्छा। अब यह अपनी हो गई।

Padmavati—It's well, it's well, Now you are one of us.

टिप्पणी—(१) भवतु भवतु—अच्छा अच्छा। यह अव्यय है। इस द्विरुक्ति से हर्ष प्रकट हो रहा है। दुःखित वासवदत्ता को आश्वासन देती हुई पद्मावती कहती है भवतु भवतु अर्थात् अलमलम् खेदेन (दुःख मत करो)। (२) आत्मीया—अपनी। आत्मनः इयम् आत्मीया। आत्मन्+छ—ईय। (३) संवृत्ता—हो गई। सम्+वृत्+क्त (त)+टाप् (आ)।

तापसी—जा ईदिसी से आइदो, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि ।
[या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।]

तापसी—जब इसकी ऐसी आकृति है तो मेरा अनुमान है कि यह भी राजकुमारी है ।

Lady ascetic—For this form of hers, I think, she too is a princess.

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि ।
[सुष्ठु आर्या भणति । अहमपि अनुभूतसुखेति पश्यामि ।]

दासी—आर्या ठीक कह रही हैं। मैं भी समझती हूँ कि यह सुख में पली है।

Maid—Rightly says the Madam. I too can see that she has *enjoyed prosperity.*

टिप्पणी—(१) अनुभूतसुखा—जिसने सुख भोगा हो। अनुभूतम्=उपभुक्तं सुखं=राजकन्यकोचितमैश्वर्यं यया सा । वासवदत्ता के शरीर की सुकुमारता, रमणीयता आदि देख कर दासी अनुमान करती है कि अवश्य ही यह राजकुल की कन्या है । अनुभूत—अनु+भू+क्त (त) कर्मणि।

यौगन्धरायणः—[आत्मगतम्] हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । कुतः—

संस्कृत टीका—हन्त भोः—हर्षसूचकमव्ययद्वयम्, भारस्य—उत्तरदायित्वपूर्णकार्यस्य, अर्धम्—अर्धभागः, अवसितम्—सम्पन्नम् । मन्त्रिभिः सह—रुमण्वदादिभिः सार्कं, यथा—यादृश, समर्थितं—निर्धारितं, तथा—तादृश, परिणमति—कार्यं फलति । ततः—तदनन्तरं, प्रतिष्ठिते—राज्यसिंहासनमधिरूढे, स्वामिनि—उदयने, तत्रभवतीम्—वासवदत्ताम्, उपनयतः—स्वामिनो निकटं प्रापयतः, मे—मम, इह—वासवदत्तायाश्चारित्र्यविषये, अत्रभवती—माननीया, मगधराजपुत्री—मगधेश्वरदुहिता पद्मावती, विश्वासस्थानं—विश्वसनीया साक्षिणी, भविष्यति सम्पत्स्यते । (अर्धभागः—महाराजोदयनस्य राज्य विपक्षिणः प्रत्याहरणीयम् इति संकल्परूपभारस्य अर्धो भागः वासवदत्तायाः पद्मावतीहस्ते न्यासेन मम शिरसोऽवतीर्णः । रुमण्वदादिभिः मन्त्रिभिः सह मन्त्रयित्वा येन प्रकारेण

कार्यं कर्तुम् अवधारितं तेनैव प्रकारेण कार्यं फलति। क्रमेण पुनः स्वामिनि स्वराज्य-सिंहासनारूढे तेन सह वासवदत्तां संयोजयिष्यन्नहं तस्याः चारित्र्यशुद्धिविषये पद्मावतीमेव विश्वसनीयां साक्षिणीं कर्तुं प्रभविष्यामि।)

अनुवाद--यौगन्धरायण--(मन में) अहा! आधा भार तो उतर गया। मंत्रियों के साथ जैसा निश्चय किया गया था वैसा ही हो रहा है। क्रमशः स्वामी (महाराज उदयन) के राजसिंहासन पर बैठ जाने के पश्चात् जब मैं वासवदत्ता को उनके पास ले जाऊँगा तो माननीया मगधराजकुमारी ही इस सम्बन्ध में अर्थात् (वासवदत्ता की चरित्र-शुद्धि के बारे में) साक्षिणी होगी। क्योंकि--

Yong.--(To himself) so half of my burden is thus discharged. The scheme, which my ministers devised is upon the high road to success a[illegible] e princess of [illegible] I take her ladyship (Vasav) in possession. How.

टिप्पणी--(१) अर्धम्--खंडवाची अर्ध शब्द पुल्लिग है, जैसे--ग्रामार्धः, नगरार्धः। किन्तु समान अंश (भाग) वाची अर्ध शब्द नित्य नपुंसक लिंग है। 'अर्धं समेऽशके' इत्यमरः। (२) अवसितम्--समाप्त हो गया। 'अवसीयते स्म' इस विग्रह में अव उपसर्गपूर्वक षो अन्तकर्मणि धातु से क्त प्रत्यय होने पर 'द्यति-स्यतिमास्थामित्ति किति' सूत्र से इत्व हुआ। (३) उपनयतः--निकट ले जाते हुए। उप√नी+लट्--शतृ। यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से लट् हुआ है।

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

अन्वय--यैः प्रथमं विपत्तिः दृष्टा (तैः) अथ पद्मावती नरपतेः महिषी पत्नी भवित्री प्रदिष्टा। तत्प्रत्ययात् इदं कृतम्। हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि उत्क्रम्य न गच्छति ॥११॥

संस्कृत टीका--यैः--पुष्पकभद्रादिभिः सिद्धपुरुषैः, प्रथमं--पूर्वम्, विपत्तिः--विपत् उदयनस्य राज्यनाश इति यावत्, दृष्टा--अवलोकिता संसूचितेति यावत्, (तैः) अथ--अनन्तरम्, पद्मावती--मगधराजपुत्री, नरपतेः--उदयनस्य, महिषी--

पत्नी भवित्री—भाविनी, प्रदिष्टा—निगदिता सूचितेति यावत् । तत्प्रत्ययात्—तेषु सिद्धेषु प्रत्ययात् विश्वासात्, इदं—पद्मावत्या हस्ते वासवदत्ताया निक्षेपणं, कृत—विहितम् । हि—यस्मात्, विधिः—भाग्यम् सुपरीक्षितानि—अनेकधा सत्यत्वपरीक्षया वीक्षितानि, सिद्धवाक्यानि—सिद्धपुरुषाणां वचनानि, उत्क्रम्य—उल्लंघ्य, न गच्छति—न व्रजति । अयं भावः—यैः सिद्धपुरुषैः पूर्वम् अस्मन्महाराजस्योदयनस्य राज्यनाशः उक्तः तैरेव पश्चात् पद्मावत्या सह महाराजस्य परिणयोऽपि निगदितः । तेषाम् एका भविष्यवाणी सत्या अभूत्, अपरापि तथैव स्यात् इति विश्वासादेव मया पद्मावत्याः सन्निधौ न्यासरूपेण वासवदत्ता स्थापिता । विधिरपि सिद्धोक्तिम् उल्लंघ्य गन्तुं न प्रभवति, अपि तु तदनुसारमेव फलं ददाति । तथा तति स्वराज्ञया पद्मावत्या सूच्यमान चिरवियुक्ताया अपि वासवदत्तायाः चारित्र्यशुद्धिविषयक साक्ष्यं राज्ञो विश्वासमुत्पादयिष्यत्येव ।) ॥११॥

अनुवाद—जिन्होंने पहले (आने वाली) विपत्ति को बताया था, उन्होंने (ही) पश्चात् पद्मावती राजा उदयन की पटरानी होंगी—यह भविष्यवाणी की थी। उन्हीं मे विश्वास के कारण यह (वासवदत्ता का सौंपना) किया है। क्योंकि भाग्य अच्छी तरह परखे हुए सिद्धों के वचनों का उल्लंघन करके नहीं चलता है ॥११॥

That this same Padmavati would be the queen of the lord was declard by those seers, who prophesied our present adverse fortune. I acted from faith in them. Fate does not go beyond the divine oracles which have been tried already and found to be true.

टिप्पणी—(१) महिषी—पटरानी, पट्टाभिषिक्ता महाराज्ञी । 'कृताभिषेका महिषी' इत्यमरः । (२) भवित्री—होने वाली । भू धातु से भविष्यत् के अर्थ में तृच् प्रत्यय और ऋदन्तत्वात् ङीप् हुआ । (३) प्रदिष्टा—कही गई । प्र+दिश्+क्त (त) टाप् (आ) । (४) तत्प्रत्ययात्—उनमें विश्वास रखने के कारण । तेषु प्रत्ययः तत्प्रत्ययः तस्मात् हेतु मे पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । (५) सुपरीक्षितानि—भली भाँति परखे हुए । (६) सिद्धवाक्यानि—ऋषिकल्प प्राप्त पुरुषों के वचन । सिद्धानां वाक्यानि । प० तत्पु० । (७) उत्क्रम्य—उल्लंघन करके, उत्+क्रम्+ल्यप् । परि+ईक्ष्+क्त (त) (कर्मणि) सुष्ठु परीक्षितानि । सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि का विशेषण है । (८) उत्क्रम्य—अतिक्रमण करके । उत्+क्रम्+ल्यप् । यहाँ तात्पर्य यह है कि भाग्य भी सिद्धों की वाणी के अनुसार ही चलता है, क्योंकि वे सोच-विचार कर ही कहते हैं । तो अब सिद्धों

की उदयन की राज्यच्युति रूप एक बात ठीक हो चुकी है तो कोई कारण नहीं है कि उनकी दूसरी बात—पद्मावती उदयन की पटरानी होगी—ठीक न हो। इसलिए पद्मावती के पास वासवदत्ता को थाती रखने में कोई भय नहीं है, ऐसा यौगन्धरायण सोच रहा है। इस श्लोक में काव्यलिंग अलकार और वसन्ततिलका छन्द है ॥१॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—[ऊर्ध्वमवलोक्य] स्थितो मध्याह्नः। दृढमस्मि परिश्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये? [परिक्रम्य] भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथाहि—

संस्कृत टीका—ऊर्ध्वम्—उपरि, अवलोक्य—दृष्ट्वा, मध्याह्नः—दिनस्य मध्यभागः, स्थितः—वर्तते। दृढम्—अत्यन्तम्, परिश्रान्तः—क्लान्तः, अस्मि—विद्ये, अथ—प्रश्नवाचकमव्ययमिदम्, कस्मिन् प्रदेशे—कस्मिन् स्थाने, विश्रमयिष्ये?—विश्रान्ति प्रापयिष्ये आत्मानमिति शेषः? परिक्रम्य—इतस्ततः परिभ्रम्य, भवतु—अस्तु तावत्, दृष्टम्—अवलोकितम् विश्रामयोग्यस्थलमिति शेषः। अभितः—निकटे, तपोवनेन—तापसाश्रमेण, भवितव्यम्—भाव्यम् (इत्यनुमीयते) तथा हि—तदेव दर्शयामि—

अनुवाद—(तदनन्तर ब्रह्मचारी का प्रवेश) ब्रह्मचारी—(ऊपर देखकर) मध्याह्नकाल हो गया। मैं बहुत थक चला हूँ। किस स्थान में विश्राम करूँ? (घूमकर) अच्छा, (स्थान) देख लिया। तपोवन समीप ही जान पड़ता है। क्योंकि—

(Then enters a religous student.) (Looking upwards) It's now high noon and I am very weary. Where shall I go to find a resting place? (goes about) well I see. A penance grove seems to be near-by Because :—

टिप्पणी—(१) मध्याह्नः—दोपहर। 'अह्न. मध्यम्' इस विग्रह में 'सर्वोऽयेकदेशोऽह्ना समस्यते 'सख्याविसाय' इति ज्ञापकात्' इस नियम के बल से 'पूर्वापराधोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' सूत्र से समास हुआ और 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' सूत्र से 'अहन्' को 'अह्न' आदेश हो गया। (२) दृढम्—यह क्रियाविशेषण है। (३) अथ—यह प्रश्नवाची अव्यय है। 'मंगलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ' इत्यमरः। (४) विश्रमयिष्ये—विश्राम करूँगा—वि+श्रम्+णिच् (स्वार्थे)+लृट्। उ० पु० ए० व०। (५) परिक्रम्य—घूमकर परि+क्रम्+ल्यप्।

(६) अभितः—समीप में। 'समीपोभयतः शीघ्रसाकल्याभिमुखेऽभितः' इत्यमरः (७) ब्रह्मचारी—वेदाध्ययन का व्रती—ब्रह्म चरितुं शीलं यस्य सः। ब्रह्म+चर्+णिनिः ताच्छील्ये। (८) दृष्टम्—देख लिया।

विस्रब्धं[1] हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया[2]
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः[3] सर्वे दयारक्षिताः।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं ततोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥१२॥

अन्वय—देशागतप्रत्ययाः अचकिताः हरिणाः विस्रब्धं चरन्ति दयारक्षिताः सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः। कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम्। दिशः अक्षेत्रवत्यः। हि अयं धूमः बह्वाश्रयः। इदं निःसन्दिग्धं तपोवनम् ॥१२॥

संस्कृत-टीका—देशागतप्रत्ययाः—देशे अस्मिन् प्रदेशे आगतः प्राप्तः प्रत्ययः विश्वासः येषां ते तादृशाः, (अतः) अचकिताः—निर्भयाः (सन्तः), हरिणाः—मृगाः, विस्रब्धं—विश्वस्तं यथा स्यात् तथा, चरन्ति—विचरणं कुर्वन्ति। दयारक्षिताः—दयया करुणया रक्षिताः, सर्वे—निखिलाः, वृक्षाः—तरवः, पुष्पफलैः—पुष्पैः फलैश्च, समृद्धविटपाः—समृद्धाः परिपूर्णाः विटपाः शाखाः येषां ते तथाभूताः (सन्ति)। कपिलानि—कपिलवर्णानि, गोकुलधनानि—गवां धेनूनां कुलानि समूहाः धनानि अर्थाः इव, भूयिष्ठम्—बहुतमम् बाहुल्येनेति यावत् (सन्ति)। दिशः—दिग्भूमयः, अक्षेत्रवत्यः—क्षेत्राणि केदाराः परितः कृष्टा भूमय इत्यर्थः तैः शून्याः (सन्ति)। हि—निश्चयेन, अयं—समक्षवर्ती, धूमः—अग्नेर्बाष्पः, बह्वाश्रयः—बहवः अनेके आश्रयाः उद्गमस्थानानि यस्य स तथाभूतः (अस्ति अतएव) इदं—पुरोदृश्यमानं, निःसन्दिग्धं—निश्चितं, तपोवनं—तपस्विनामाश्रमः (अस्ति) [अथ भावः—अस्मिन् प्रदेशे मृगाः अकुतोभयाः सन्तः विचरन्ति, वृक्षाः फलपुष्पाढ्याः वर्तन्ते, कपिला गावः भूयस्त्वेन दृश्यन्ते, प्रांतभूमिषु कृषिप्रयोजनानां क्षेत्राणां नामापि नास्ति, हवनीयद्रव्याश्रयो धूमः सर्वतः प्रसरति। एभिः, कारणैः नूनमिदं तपोवनमेवेति] ॥१२॥

अनुवाद—इस प्रदेश में विश्वस्त एवं भयरहित मृगगण निःशंक होकर चर रहे हैं। दया से पाले हुए वृक्षों की डालियाँ फूलों और फलों से लदी हुई हैं। कैली गायों के समूह रूपी धन की प्रचुरता दिखाई दे रही है। चारों दिशाओं में खेतों का अभाव है। निश्चय ही यह धुआँ अनेक स्थानों से ऊपर उठ रहा है। अतएव यह निःसंदेह तपोवन है ॥१२॥

१ विस्रब्धाः। २. प्रत्ययात्। ३. विभक्ता।

With confidence engendered by this region, the deer are calmly moving about undisturbed. The trees nurtured tenderly, have branches full of flowers and fruits: great is the wealth of the herds of tawny cows; no signs of tilth are seen in any quarter Beyond all doubt is a hermitage This is proved by the smoke rising from many directions

टिप्पणी—(१) देशागतप्रत्ययाः—देशात्=तपोवनस्थानात् वा तत्रत्यजनात् आगतः प्रत्ययो येषां ते। जिनमे तपोवन के स्थान से या वहाँ के प्राणी से विश्वास उत्पन्न हो गया है। देशागतप्रत्ययात् पाठ में 'हेतौ पंचमी' से पंचमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। (२) विश्रब्धम्—विश्वस्त। वि+स्रम्भ्+क्त (त)। क्रिया-विशेषण है तथा 'चरन्ति' क्रिया की विशेषता बतलाता है। विस्रब्धाः पाठ मे हरिणाः का विशेषण है। (३) पुष्पफलैः—पुष्पाणि च फलानि च तैः, इतरेतर-योगद्वन्द्व-समास अथवा पुष्पसहितानि फलानि तैः, मध्यमपदलोपी समास। (४) समृद्धविटपाः—भरी हुई हैं शाखायें जिनकी। समृद्धाः विटपाः येषां ते। (५) कपिलानि—पिंगल वर्ण या पीले रंग की। 'कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ' इत्यमरः। कपिला गाय का दर्शन बहुत पवित्र माना गया है—'अग्निचित् कपिलासत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः। दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत्तु नित्यशः"। (६) गोकुलधनानि—गवां कुलानि गोकुलानि तानि धनानि इव उपमित समास। गायें ऋषियों का एकमात्र धन है। (७) भूयिष्ठम्—अधिकता से। यह क्रिया-विशेषण है। यहाँ 'सन्ति' यह क्रिया आक्षेपलभ्य है। बहु शब्द से अत्यंत बहुत के अर्थ मे 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' सूत्र से इष्ठन् प्रयत्य और 'इष्ठस्य यिट् च' सूत्र से बहु शब्द को भू आदेश और यिट् का आगम करने पर भूयिष्ठ शब्द की सिद्धि होती है। (८) बह्वाश्रयः—बहुत से आश्रय उद्गम—स्थान हैं जिसके (धुआँ) अर्थात् धुआँ अनेक स्थानों मे उठ रहा है। इस श्लोक मे स्वभावोक्ति तथा वाक्यार्थ-हेतुक काव्यलिंग अलंकार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है। 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्'। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते।'॥१२॥

यावत्प्रविशामि। [प्रविश्य] अये! आश्रमविरुद्धः खल्वेव जनः। [अन्यतो विलोक्य] अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र। निर्दोषमुपसर्पणम्। अये! स्त्रीजनः।

तो भीतर चलूँ। [प्रविष्ट होकर] अरे! यह आदमी तो आश्रम के विरुद्ध (अर्थात् रहने वाला नहीं) मालूम होता है। [दूसरी तरफ देखकर] या यहाँ

तपस्वी लोग भी हैं। जाने में कोई दोष नहीं। अरे! स्त्रियाँ (भी हैं)।

I shall just enter. (Entering) Oh! the person does not accord with a hermitage (looking in another direction). But here are ascetics also. Approaching them would be no fault Oh. there are women.

टिप्पणी (१) यावत्--यह एक अव्यय है, जिसका प्रयोग वाक्य को अलंकृत करने के लिए किया जाता है। (२) प्रविशामि--भीतर चलता हूँ। उ० पु० ए० व० । लट् लकार । यहाँ 'वर्तमानसमीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से लट् लकार हुआ। (३) अये--यह आश्चर्य तथा शङ्कासूचक अव्यय है। नागरिक वेष में कंचुकी को देखकर ब्रह्मचारी शङ्का प्रकट करता है कि यह तपोवन है या नहीं। (४) स्त्रीजनः--पद्मावती, वासवदत्ता आदि।

काञ्चुकीयः--स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

कंचुकी--बिना सोचे-अटके चले आइये। आश्रम तो सभी के लिए खुला है।

Chamberiain—You may enter freely in perfect ease. The region of a hermitage is really free to all people.

टिप्पणी--(१) स्वैरं स्वैरं--स्वच्छन्द, निःशङ्क। यहाँ प्रवेश-शङ्का-निवारण की उतावली दिखाने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है। (२) सर्वजन-साधारणमाश्रपदं नाम--यहाँ कंचुकी के कहने का तात्पर्य यह है कि तपोवन सब व्यक्तियों के लिए एक समान होता है। जैसे उसमें तपस्वी प्रवेश कर सकते हैं वैसे ही अन्य भी। अतएव यहाँ स्त्रियों के उपस्थित होने से ब्रह्मचारी किसी प्रकार का सङ्कोच न करें। निःशङ्क आएँ।

वासवदत्ता--हम् !

वासवदत्ता--उँह ।

Vasav.—Hum.

टिप्पणी--हम्--यह असम्मतिसूचक अनुकरण शब्द है। कंचुकी के कहने से बेधड़क घुसते हुए ब्रह्मचारी को देखकर परपुरुष के दर्शन से लज्जित होने वाली वासवदत्ता ने अपनी असम्मति या अरुचि जताने के लिए इस शब्द का उच्चारण किया।

पद्मावती--अम्मो! परपुरुसदंसणं परिहरदि अय्या। भोदु, सुपरिवाल-

णीओवलु मण्णासो । [अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः ।]

पद्मावती—अहा ! आर्या (वासवदत्ता) दूसरे पुरुष को देखना नही चाहती। अच्छा, अब मेरे घरोहर की रक्षा बहुत सरल हो गई ।

Padmavati—Look how the lady shuns the sight of strangers. It is well. My charge can be easily protected.

टिप्पणी—(१) परपुरुषदर्शनम्—(अपने पति को छोड कर) अन्य पुरुष का दर्शन। (२) परिहरति—त्यागती है। परि+हृ+लट्। प्र० पु० ए० व०। (३) सुपरिपालनीयः—आसानी से पालन करने योग्य। क्योंकि जब वह एक तपस्वी पुरुष तक का मुँह देखना नही चाहती तो भला लम्पट पुरुषो के बहकावे में कैसे पड़ सकती है। इसलिए ऐसी पतिव्रता स्त्री के चरित्र की रक्षा करने में कठिनाइयाँ न होंगी। अथवा यहां इस प्रकार अर्थ करना चाहिए—'मेरी घरोहर की देख-रेख बड़े यत्न से होनी चाहिए अर्थात् हम लोग ऐसा कार्य कदापि न करें जो इसकी इच्छा के प्रतिकूल हों। (४) मन्न्यासः—मेरी घरोहर।

काञ्चुकीयः—भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

कंचुकी—महोदय ! हम लोग पहले से आये हुए हैं। (इसलिए आप हमारा) आतिथ्य सत्कार स्वीकार करें।

Chamberlain—Sir, we are the first comers. Pray accept such hospitality as I can offer.

ब्रह्मचारी—[आचम्य] भवतु-भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि

ब्रह्मचारी—[आचमन करने] बस-बस ! मेरी थकावट दूर हो गई।

Brahmchari—(Sipping water). My weariness is gone.

यौगन्धरायणः—भोः ! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य !

यौगन्धरायण—महोदय, कहाँ से आ रहे हैं ? कहाँ जाना है ? और कहाँ आपका शुभ स्थान है ?

Yaug.—Sir, whence do you come ? where are you going ? where is your residence.

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

ब्रह्मचारी—श्रीमन् ! सुनें। मैं राजगृह से आ रहा हूँ। (महाराज वत्स) के राज्य में लावाणक नाम का एक गाँव है, वहाँ मैं वेद का विशेष अध्ययन करने के लिए रह चुका हूँ।

Brahmchari—Sir, hear. I am from Rajgriha. For specialising in shruti I lived in a village named Lavanak in the country of vatsa.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] हा लावाणअं णाम । लावाणअसंकित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [हा लावाणकं नाम । लावाणकसंकीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

वासवदत्ता—(मन में) हाय ! लावाणक ! लावाणक के नामोच्चारण ने मेरे सन्ताप को फिर ताजा-सा कर दिया।

Vasava.—(To herself) Oh, by name Lavanak my distress is as it were intensified by the respected utterance of Lavanak.

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

यौगन्धरायण—क्या अध्ययन समाप्त हो गया ?

Young—Are your studies finished.

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

ब्रह्मचारी—अभी नहीं।

Brahmchari—Not yet.

यौगन्धरायण—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

यौगन्धरायण—यदि अध्ययन समाप्त नहीं हुआ तो चले क्यों आये ?

Yaug.—If your studies are not completed why have you come ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

ब्रह्मचारी—वहाँ बड़ी भारी विपत्ति पड़ गई ।

Brahmchari—There cropped up indeed a great calamity

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

यौगन्धरायण—कैसी (विपत्ति) ?

Yaug.—What calamity.

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामक राजा रहते थे ।

Brahmchari—A king Udayana dwelt there.

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

यौगन्धरायण—महाराज उदयन का नाम सुना है। उन्हें क्या हुआ ?

Yaug.—Yes I have heard the name. What of him ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

ब्रह्मचारी—उनकी मालवराजकुमारी वासवदत्ता नाम की पत्नी बड़ी प्यारी थी ।

Brahmchari—He had a bride, the princess of Ujjain, Vasvaadatta, whom he dearly loved.

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

यौगन्धरायण—होगी । तब क्या हुआ ?

Yaug.—Well, further ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

ब्रह्मचारी—जब (एक दिन) राजा के शिकार खेलने के लिए चले जाने पर गाँव मे आग लगने से वह जल मरी ।

Brahmchari—When once the king had been out for a hunting, she was burnt in a village-fire.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अलिअं अलिअं खु एदं । जीवामि मन्दभाआ । [अलीकम् अलीकं खलु एतत् । जीवामि मन्दभागा ।

वासवदत्ता—(मन मे) मिथ्या है ! यह बिलकुल मिथ्या है । मैं अभागिन जी रही हूँ ।

Vasava.—(To herself) False indeed. It is false. I am alive, ill-fated (though I am).

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

Yaug.—Well then ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः ।

ब्रह्मचारी—तब उसको बचाने के लिए यौगन्धरायण नाम का मंत्री उसी आग में गिर पड़ा।

Brahmchari—Then the, minister named Yaugandharayan fell in the same fire desirious of rescueing her.

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति । ततस्ततः ?

यौगन्धरायण—सचमुच गिर पड़ा ? फिर क्या हुआ ?

Yaug.—Did he really fall ? What then ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः ।

संस्कृत टीका—ततः—मृगयातः, प्रतिनिवृत्तः—प्रत्यागतः, राजा–उदयनः, तद्वृत्तान्तं—तत् तादृशं वासवदत्तायौगन्धरायणयोर्दाहविषयकं वृत्तान्तं समाचारं, श्रुत्वा—आकर्ण्य, तयोः—पत्न्यमात्ययोः, वियोगजनितसन्तापः—वियोगेन विरहेण जनितः उत्पन्नः सन्तापः प्रतिक्लेशः यस्य स तथाभूतः, (सन्) तस्मिन् एव—तत्रैव, अग्नौ—वह्नौ, प्राणान्—असून्, परित्यक्तुकामः—हातुमिच्छन्, अमात्यैः—मन्त्रिभिः, महता—अत्यन्तेन, यत्नेन, वारितः—निषेधितः ।

अनुवाद—ब्रह्मचारी—शिकार से लौटने पर जब राजा ने उन दोनों का समाचार सुना तब वह उनके वियोग से सन्तप्त होकर उसी आग में (कूद कर) प्राण छोड़ने को उतारू हो गया। किन्तु मन्त्रियों ने बड़े यत्न से उसे रोक रखा।

Brahmchari—Then when the King returnad and heard the news, he was heart-broken by the loss of these and sought to end his life in the same flame but by main force his ministers restrained him.

टिप्पणी—['सुपरिपालनीयः' के आगे के शब्दों की टिप्पणियाँ यहीं दी जा रही हैं—] (१) प्रतिगृह्यताम्—स्वीकार कीजिए प्रति+ग्रह्+लोट् कर्मणि। म० पु० ए० व०। (२) अतिथिसत्कारः—पाहुन की आवभगत। अतिथेः सत्कारः वा अतिथियोग्यः सत्कारः मध्यमपदलोपी समास। अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति की बड़ी विशेषता रही है। लिखा है—'अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति। अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते। छेत्तुः पार्श्वगतां छाया नोपसंहरते द्रुमः' (३) आचम्य—आचमन करके। आङ्+चम्+ल्यप्। (४) निवृत्तपरिश्रमः—जिसकी थकावट दूर हो गई है। नि+वृत्+क्त(त) कर्त्तरि। परिश्रमः—परि+श्रम्+घञ्। निवृतः=अपगतः परिश्रमः=क्लान्तिः यस्य सः, बहुव्रीहि समास। (५) अधिष्ठानम्—स्थान। अधि+स्था+ल्युट् अधिकरणे। (६) क्व—कहाँ? किम्+ङि+अत्, कु आदेश। (७) राजगृहतः—यहाँ 'अपादाने चाहीयरुहोः' सूत्र से 'तत आगतः' इस अर्थ में तसि प्रत्यय हुआ। (८) श्रुतिविशेषणार्थम्—वेद का विशिष्ट ज्ञान करने के लिए। श्रुतेः विशेषणम्=विशिष्टज्ञानोत्पत्तिः तदर्थम्। (९) वत्सभूमौ—उदयन के राज्य में। यह राज्य प्रयाग के चारों ओर यमुना के दक्षिणी किनारे पर फैला हुआ था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी, जो प्रयाग के लगभग २५ मील दक्षिण-पश्चिम कोने में है। (१०) उषितवान्—निवास किया। √वस्+क्तवतु कर्तरि, 'वसतिक्षुधोरिट्' इति सूत्रेण इडागम; यजादित्वात् सम्प्रसारणम्। (११) नवीकृतः—नया कर दिया। अनवोऽपि नव इव कृतः इति नवीकृतः, नव+च्वि; ईत्व√कृ+क्त (त)। (१२) अनवसिता—समाप्त नहीं। अव√सो+क्त—टाप्, (आ) न अवसिता अनवसिता। (१३) व्यसनम्—विपत्ति। 'व्यसनं विपदि भ्रंशे' इत्यमरः। (१४) संवृत्तम्—पड़ गई है। सम+वृत्+क्त (त)। (१५) दृढमभिप्रेता—अत्यन्त प्रिया। (१६) किल—लोगों में यह प्रसिद्ध है, लोकप्रसिद्धि, लोकवार्ता। (१७) ग्रामदाहेन—गाँव में आग लग जाने से, गाँव के अग्निकांड से। 'हेतौ तृतीया' से तृतीया हुई है। (१८) मृगयानिष्क्रान्ते—मृगया के लिए निकलने पर। निस्+क्रम्+क्त (त) कर्तरि (गत्यर्थत्वात्) भावे सप्तमी। (१९) अलीकम् अलीकम्—सरासर झूठ। 'अलीकं त्वप्रियेऽनृते' इत्यमरः। यहाँ मृषार्थ में द्वित्व हुआ है। (२०) अभ्यवपत्तुकामः—विपत्ति में बचाने की इच्छा रखने वाला। अभ्यवपत्तुं व्यसने साहाय्य दातुं कामः अभिलाषः यस्य स तादृशः। तुमुन् के म् का 'तुङ्काममनसोरपि' से लुप्त हो गया है।

'व्यसनसाहाय्यमध्यवपत्तिः' इति कौटिलीयमर्थशास्त्रम् । (२१) प्रतिनिवृत्तः—लौटा हुआ (२२) तद्वृत्तान्तम्—तयोर्वृत्तान्तः तम् अथवा स चासौ वृत्तान्तः तम् । (२३) वियोगजनितसन्तापः—वियोगेन जनितः सन्तापः यस्य सः त्रिपद-बहुव्रीहि समास।(२४) अमात्यैः—मन्त्रियों ने, अमा सह वर्तते इति विग्रहे अमा+त्यप् 'अव्ययात्त्यप्' इति सूत्रेण । (२५) वारितः—रोका गया ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं । [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम् ।]

वासवदत्ता—[मन में] जानती हूँ, जानती हूँ, (अर्थात् मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि) आर्यपुत्र मुझ पर कृपा रखते हैं।

Vasava.—(aside) such is my prince's tender love for me.

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

Yaug.—Yes, yes proceed.

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः

संस्कृत टीका—ततः—तदनन्तरम्, तस्याः—वासवदत्तायाः, शरीरोपभुक्तानि—शरीरे देहे उपभुक्तानि परिहितानि, दग्धशेषाणि—दग्धेभ्यः शेषाणि दग्धावशिष्टानि इति यावत्, आभरणानि—आभूषणानि, परिष्वज्य—आलिङ्ग्य राजा—उदयनः, मोहम्—मूर्च्छाम्, उपगतः—प्राप्तः ।

ब्रह्मचारी—पश्चात् वासवदत्ता के पहने हुए गहनों को, जो जलने से बच गये थे, छाती से लगाकर राजा मूर्च्छित हो गये।

Brahmchari—Then the King fell in a Swoon embracing the burnt remains of her ornaments that she used to put on.

टिप्पणी—(१) जानामि जानामि—सम्यक् प्रकार से जानती हूँ। यहाँ मुख्यार्थ में द्वित्व हुआ है । ज्ञा धातु—लट्—उ० पु० ए० व० । (२) आर्यपुत्रस्य—स्वामी का। आर्यस्य श्वशुरस्य पुत्रः आर्यपुत्रः, तस्य। (६) सानुक्रोशत्वम्—दयायुक्त होना । अनुक्रोशः=दया, अनु+क्रुश्+घञ् (अ) भावे । तेन सहितः सानुक्रोशः, तस्य भावः इत्यर्थे सानुक्रोश+त्व । 'कृपा दयानुकम्पा

स्यादनुक्रोशोऽपि' इत्यमरः। (४) शरीरोपभुक्तानि—शरीर पर धारण किये गये। उप+भुज्+क्त (त)। (५) दग्धशेषाणि—जलने से बचे हुए। दह्+क्त (त) कर्मणि-दग्ध (६) मोहम्—मूर्च्छा को। (७) उपगत—प्राप्त हुए। उप+गम्+क्त (त)। (८) आभरणानि—जेवरों का। 'अलङ्कारस्त्वाभरणम्' इत्यमरः। (९) परिष्वज्य—आलिंगन करके। परि√स्वञ्ज्+क्त्वा—ल्यप्।

सर्वे हा!

समी—हाय! हाय!

All—Alas! alas!

वासवदत्ता—[स्वगतम्] सकामो दाणि अय्य जोअंधराअणो होदु। [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु।]

वासवदत्ता—(मन में) अब आर्य यौगन्धरायण की अभिलाषा पूर्ण हो।

Vasava.—(To herself) Let revered Yaugandharayan be satisfied now.

चेटी—भट्टिदारिए! रोदिदि खु इअं अय्या। [भर्तृदारिके! रोदिति खलु इयम् आर्या।]

दासी—राजकुमारी जी! ये श्रीमती जी तो रो रही हैं।

Maid—Look, princess. The lady is in tears.

पद्मावती—साणुक्कोसाए हो दव्वं। [सानुक्रोशया भवितव्यम्।]

पद्मावती—ये दयालु (अर्थात् भावुक प्रकृति की) होंगी।

Padma.—She must be tender.

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम्। प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी। ततस्ततः?

यौगन्धरायणः—और क्या, और क्या। मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु है। तब क्या हुआ?

Yaug.—Why, of course, my sister had always a tender heart.

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः।

ब्रह्मचारी—अनन्तर धीरे-धीरे राजा की मूर्च्छा दूर हुई।

Brahmchari—The King came to himself at last.

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ। मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं? [दिष्ट्या ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्?

पद्मावती—भाग्य से वे जी रहे हैं। 'मूर्च्छित हो गये' यह सुनकर मेरा हृदय शून्य-सा हो गया था।

Padmavati—It is well he lives. My heart became dejected when I heard that he fell in a swoon.

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

यौगन्धरायण—तब क्या हुआ ?

Yaug.—And then ? What then, Sir ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते! हा अवन्तिराजपुत्रि! हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये!' इति किमपि किमपि बहु प्रलपितवान्। किं बहुना—

संस्कृत टीका—ततः—तत्पश्चात्, सः—पूर्वोक्तः, राजा—भूपतिः उदयन इति यावत्, महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः—महीतले भूतले यत् परिसर्पणं परिलुण्ठनं तेन लग्नाः ये पांसवः रजांसि तैः पाटलं श्वेतरक्तं शरीरं देहो यस्य स तथाविधः सन्, सहसा—हठात्, उत्थाय—उत्थितो भूत्वा, 'हा वासवदत्ते!' इत्यादि, बहु—अत्यन्तं, प्रलपितवान्—विलापम् अकरोत्। किं बहुना—किमधिककथनेन—

अनुवाद—तदनन्तर जमीन पर लोटने से राजा का शरीर धूलिधूसरित हो गया। फिर वे एकाएक उठ कर 'हाय वासवदत्ता! हाय मालवराजकुमारी! हाय प्यारी! हाय प्रिय शिष्ये' इत्यादि बहुत विलाप करने लगे। अधिक क्या कहूँ—

Brahmachari—Then the King, his body ...

टिप्पणी—(१) सकामः—कामेन=अभिलाषेण सह=समृद्ध इति सकामः 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति सूत्रेण तुल्ययोगस्य प्रायिकत्वात् समासः। 'कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' इत्यमरः। यहाँ वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि महाराज

ने मुझे अवश्य ही मरी हुई समझ लिया, अन्यथा उन्हें मूर्च्छा न होती। अब वे पद्मावती से विवाह कर लेंगे और उसके भाई की सहायता से राज्य भी उन्हें मिल जायगा। बस, यही तो यौगन्धरायण चाहते थे। सो उनकी मनःकामना पूर्ण होगी। कोई टीकाकार यहाँ वासवदत्ता की व्यग्योक्ति बताते हैं। उनके अनुसार वासवदत्ता के कहने का अभिप्राय है—'महाराज मूर्च्छित हो गये। आगे न जाने क्या हो। अब यौगन्धरायण राज्य-प्राप्ति की कामना पूरी कर लें। इस शब्द का प्रयोग अभिज्ञानशाकुन्तल में मिलता है—'अनसूया—कामः इदानीं सकामो भवतु'। मुद्राराक्षस में भी देखा जाता है—राजा—एवमस्मासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकामः सकामो भवत्वार्यः। (२) किम् अथ किम्—यह द्विरुक्ति पद्मावती के तर्क को दृढ करने के लिए हुई है। (३) प्रकृत्या—स्वभाव से। 'प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानम्' इस वार्तिक से यहाँ तृतीया हुई। (४) शनैः शनैः—यहाँ वीप्सा में द्वित्व हुआ। (५) प्रतिलब्धसंज्ञः—प्रतिलब्धा=प्राप्ता संज्ञा=चेतना येन स तथाविधः। (६) ध्रियते—अवस्थित हैं अर्थात् जी रहे हैं। दिवादिगणीय धृङ् अवस्थाने धातु के लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है। इसका प्रयोग अन्यत्र भी द्रष्टव्य है, यथा—ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्' शिशुपालवध। 'ध्रिये आर्यपुत्र ध्रिये' उत्तररामचरित। (७) शून्यम्—चेतनारहित। यह अवस्था पद्मावती के मन में उदयन के प्रति प्रेमांकुर की उत्पत्ति सूचित करती है। (८) महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः—धरती पर लोटने के कारण धूल लग जाने से जिसका शरीर लाल तथा श्वेत रङ्ग का हो गया है। परि+सृप्+ल्युट् भावे परिसर्पणम्। पांसु—धूल। 'स्त्रियां धूलिः पांसुर्ना' इत्यमरः। पाटल—लाल तथा सफेद। 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः। (९) उत्थाय—उठ कर। उत्√स्था+क्त्वा—ल्यप्। 'उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इस सूत्र में 'स्' को 'त्' और 'झरो झरि सवर्णे' इस सूत्र से 'त्' का लोप। (१०) प्रियशिष्ये—विवाह से पूर्व उदयन ने वासवदत्ता को वीणा-वादन की शिक्षा दी थी। इसका कारण यह था कि वासवदत्ता के पिता प्रद्योत वत्सराज उदयन से अपनी पुत्री का विवाह कराना चाहते थे। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उन्हें सफलता न मिली तो उन्होंने छल से उदयन को अपने राजमहल में ले जाकर वासवदत्ता को वीणा सिखाने के लिए अनुरोध किया। क्रमशः परिचय होने पर दोनों में परस्पर प्रेम हो गया। तब एक दिन यौगन्धरायण की नीति से उदयन वासवदत्ता को उड़ा कर अपनी राजधानी ले आये। यही कारण है कि

उसने वासवदत्ता को प्रिय शिष्या कहकर सम्बोधित किया है। कालिदास ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है--'प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ'। (११) किमपि किमपि--'वीप्सायां द्वित्वम्'। वीप्सा में द्वित्व का प्रयोग हुआ है। (१२) प्रलपितवान्--विलाप किया। प्र+लप्+क्तवत्। (१३) दिष्ट्या--भाग्य से। दिष्टिः भाग्यम् तया हेतौ तृतीया। अथवा यह अव्यय है। (१४) किं बहुना--बहुत कहने से क्या। गम्यमानसाधनादिक्रियापेक्षया करणे तृतीया।

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि[१] दग्धाप्यदग्धा ॥१३॥

अन्वय--इदानीं तादृशाः न एव चक्रवाकाः, न एव स्त्रीविशेषैः वियुक्ताः अन्ये अपि। सा स्त्री धन्या यां भर्ता तथा वेत्ति। हि भर्तृस्नेहात् दग्धा अपि सा अदग्धा ॥१३॥

संस्कृत टीका--इदानीम्--अधुना, तादृशाः--तथाविधाः उदयनसदृशशोकातुरा इति यावत्, न एव--न तु, चक्रवाकाः--कोकाः, (सन्ति), न एव--नहि, स्त्रीविशेषैः--विशिष्टरमणीभिः, वियुक्ताः--विरहिताः, अन्ये अपि--इतरे अपि, (सन्ति)। सा, स्त्री--नारी धन्या--अभिनन्दनीया, या--स्त्री, भर्ता--पतिः, तथा--तेन प्रकारेण, वेत्ति--मन्यते। हि--निश्चयेन, भर्तृस्नेहात्--पत्युः प्रेम्णा, दग्धा अपि--दाहं प्राप्ता अपि, सा--नारी, अदग्धा--अभस्मीभूता जीविता इति यावत् अस्ति [अयं भावः--अधुना अस्मिन् लोके उदयनसदृशाः विरहिणः न तु चक्रवाकाः सन्ति न अन्ये सीतादमयन्तीशकुन्तलाप्रभृतिभिः वियुक्तः रामनलदुष्यन्तप्रभृतयः एव। किञ्च या (वासवदत्ता) पतिः लोकोत्तरस्नेहदृशा पश्यति सा नारीरत्नेषु विशिष्टा विद्यते। अतः भस्मीकृता अपि वासवदत्ता भर्तुः प्रणयात् जीवन्ती एव तिष्ठति।] ॥१३॥

इस समय उस (राजा) के समान न तो चकवे हैं और न विशिष्ट रमणियों से अलग हुए दूसरे ही (कोई) हैं। वह नारी धन्य है, जिसे (उसका) पति उस तरह समझता है। निःसन्देह पति के प्रेम के कारण जली हुई भी वह (वासवदत्ता) न जली हुई (ही) है ॥१३॥

Now not even the chakravakas are so in sorrow. Not even others separated from their beloveds. Blessed is the lady whom

१ पाठान्तर--साग्निदग्धा।

her husband so (dearly) loves, On account of the love of her husband she is indeed not burnt though burn.

टिप्पणी (१) तादृशाः—उसके (राजा के) समान। (प्रियावियोग-जनित दुःख मे)। (२) चक्रवाकाः—चकवा पक्षी। 'कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः' इत्यमरः। प्रकृति का यह विधान है कि रात्रि मे चकवा अपनी चकवी से अलग हो जाता है और फिर प्रातःकाल होते ही दोनों आपस में मिल जाते हैं। तो इस प्रकार विरही चकवा के हृदय में अपनी प्रिया से मिलने की आशा बनी रहती है, पर गतमार्य उदयन के हृदय में तो यह आशा भी नहीं रही। इसलिए चकवा इसकी बराबरी नहीं कर सकता। (३) स्त्रीविशेषैः—विलक्षण स्त्रियों से वियुक्त। स्त्रीणां विशेषाः तैः। इन्दुमती, दमयन्ती, सीतादि प्रियतमाओं से वियुक्त होने पर अज, नल, रामादि भी इतने शोक संतप्त नहीं हुए थे। (४) धन्या—धनं लब्धा इत्यर्थे धन+यत् 'धनगणं लब्धेति' सूत्रेण, ततष्टाप्। (५) दग्धाप्यदग्धा—जल जाने पर भी जली नहीं है, अर्थात् पाञ्च-भौतिक शरीर को छोड़ देने पर भी प्रियतम का दिया हुआ प्रेम रूप दूसरा शरीर धारण करके जी रही है। इस श्लोक में चक्रवाक आदि उपमानों को उपमेय बनाया गया है, इसलिए प्रतीप नामक अलंकार है। तल्लक्षणं—प्रतीप-मुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः अर्थात् उपमेय।(उदयन) से उपमान चक्रवाक की हीनता दिखाने से प्रतीपालंकार है। और शालिनी नामक छन्द है। तल्लक्षणं—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः॥१३॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः? तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः?

यौगन्धरायण—क्यों महाशय! उन्हें प्रकृतिस्थ करने के लिए कोई मंत्री प्रयत्नशील नहीं है?

Yaug.—Well, Sir, did no minister try to console him?

टिप्पणी—(१) अथ—यह प्रश्नार्थक अव्यय है। तु—यह वाक्यालंकारार्थ है। (२) पर्यवस्थापयितुम्—आश्वासन आदि से प्रकृति में लाने के लिए। परि-अव√स्था+णिच्, पुक्+तुमुन्। (३) यत्नवान्—प्रयत्न करने वाला। यत्नः अस्ति यस्य इति विग्रहे यत्न+मतुप्।

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो[1] दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं

१. पाठान्तर—समण्वानामामात्यो।

पर्यवस्थापयितुम् । स हि—

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नाम का एक मंत्री है, महाराज को होश में लाने के लिए खूब प्रयत्न कर रहा है। वह तो—

Brahmchari—Yes the minister named Rumanwana did try his utmost to console his honour, since he.

अनाहारे तुल्यः सतत[1]रुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपति
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

अन्वय—अनाहारे तुल्यः, सततरुदितक्षामवदनः, नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन्, दिवा वा रात्रौ वा नरपतिं यत्नैः परिचरति। यदि नृपः प्राणान् त्यजति अस्य अपि उपरमः सद्यः ॥१४॥

संस्कृत टीका—अनाहारे—अभोजने, तुल्यः—सदृशः सततरुदितक्षामवदनः—सततं निरन्तर यत् रुदित रोदन तेन क्षामं क्षीणं वदनं मुख यस्य स तथाभूतः, नृपतिसमदुःखं—नृपतिना राज्ञा समं तुल्यं दुःख कष्टं यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात् तथा, शरीरे—देहे, संस्कारं—मार्जनं, परिवहन्—धारयन्, दिवा वा रात्रौ वा—दिने रात्रौ च, नरपतिं—राजानं, यत्नैः—प्रयत्नैः, परिचरति—सेवते। यदि—चेत्, नृपः—राजा, प्राणान्—असून्, त्यजति—मुञ्चति, तस्य—रुमण्वतो अपि, उपरमः—मृत्युः, सद्यः—तत्क्षणं (भवेत्)। [अयं भावः—वासवदत्ताशोकविकलो राजा इव भोजन परित्यजन् रुमण्वान् निरन्तररोदनेन म्लानमुखः संवृत्तः। यथा राजा कष्टाधिक्येन कथञ्चिदत्यावश्यक स्नानादिसंस्कारम् आचरति तथा रुमण्वानपि कथञ्चित् शरीरसंस्कारं स्वीकरोति। स च रात्रिन्दिवम् राजानं महता क्लेशेन शुश्रूषते। यदि दुःसहेन वासवदत्ताशोकेन राज्ञः प्राणवियोगः स्यात् तर्हि तत्कालमेव रुमण्वतोऽपि मृत्युर्भवेत्, इत्यत्र नास्ति सन्देहलवः।] ॥१४॥

अनुवाद—भोजन न करने मे (राजा के) समान और निरन्तर रोते रहने से सूखे चेहरे वाला मंत्री राजा के समान ही दुःख से शरीर का संस्कार (स्नान आदि क्रियाएँ) करता हुआ दिन-रात यत्नपूर्वक राजा की सेवा मे लगा रहता है। अगर राजा जीवन को छोड़ दे तो उसकी भी मृत्यु तुरन्त हो जाय ॥१४॥

[1]. प्रतत ।

He shared his master's fastings, and his face, like, his, was wasted with incessant weeping; the garb of woe which the king wore, he also wore, with all devotion he waited on his lord by night and day. If the king had died he too would have died on the instant.

टिप्पणी--(१) सततरुदितक्षामवदनः--लगातार रोते रहने से जिसका चेहरा फीका पड़ गया हो। सतत--निरन्तर। 'सततानारताश्रान्तसन्ततविरतानिशम्' इत्यमरः। रुदितम्--√रुद्+क्त भावे। क्षामम्√क्षै+क्त कर्तरि 'क्षायो मः' इति सूत्रेण तस्य मः। (२) शरीरे संस्कारम्--स्नान आदि से शरीर को स्वच्छ करना। 'संस्कारो मार्जनं मृजा' इत्यमरः। संस्कारम्--सम्√कृ+घञ् 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे' इति सूत्रेण सुडागमः। यहाँ 'शरीरेऽसंस्कारम्' भी पाठ हो सकता है। तब अर्थ होगा--शरीर की सजावट अर्थात् वस्त्रालंकार से शरीर को भूषित न करता हुआ (३) नृपतिसमदुःखम्--राजा के समान दुःखानुभूति। नृपतिना समम्। (तृ०तत्पु०) तादृश दुःखं यस्मिन्, कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा। अथवा सम दुःख यस्मिन् सः समदुःखः नृपतेः समदुःखः तम्। यह मस्कार का विशेषण है। क्रियाविशेषण 'परिवहन' की विशेषता बतलाता है। आशय यह है कि जब राजा शोक संतप्त होता था तो मन्त्री रुमण्वान् भी तदनुकूल चेष्टा करता था। (४) परिवहन्--धारण करता हुआ। परि+वह्+शतृ। (५) दिवा--यह दिनवाची अव्यय है। 'दिवाह्नीति' इत्यमरः। (६) वा--यह चकारार्थक या समुच्चयार्थक है। (७) उपरमः--मृत्यु। उप√रम्+घञ्(अ)। निपातनात् वृद्धयभावः। इस श्लोक मे रुमण्वान् की अपूर्व राजभक्ति का वर्णन किया गया है। इसमें शिखरिणी छन्द है। रसैं रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ॥१४॥

वासवदत्ता--[स्वगतम्] दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो। [दिष्ट्या सुनिक्षिप्तः इदानीम् आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता--[मन में] सौभाग्य से इस समय पतिदेव अच्छे पुरुष के हाथ में सौंपे गये हैं।

Vasava.--(To herself)--Happily the king is well cared for.

यौगन्धरायणः--[आत्मगतम्] अहो महद्भारमुद्वहति रुमण्वान्! कुतः--

यौगन्धरायण—(मन में) अहा ! रुमण्वान् भारी बोझा ढो रहा है। क्योंकि—

Yaug.—(To himself) Oh ! Rumanwana is bearing a great burden; because ;—

टिप्पणी—(१) सुनिक्षिप्तः—भली भाँति रक्षित, अर्थात् परम राजभक्त मन्त्री के हाथ में पतिदेव की रक्षा का भार है, इसलिए मुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। (२) महद्भारम्—यहाँ 'महाश्चासौ भारः' इस विग्रह में कर्मधारय समास करने पर 'आन्महतः'—इत्यादि सूत्र से आत्व अनिवार्य है। तब रूप होना चाहिए 'महाभारम्'। किन्तु 'निरंकुशाः कवयः' इस दृष्टि से महद्भारम् का प्रयोग हुआ है, ऐसा कह सकते हैं। अथवा 'महत्' को 'उद्वति' क्रिया का विशेषण मान लीजिए। अथवा 'महतः=विशिष्टस्य कार्यस्य भारः' इस प्रकार षष्ठी तत्पुरुष समास से काम चलाइए।

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

अन्वय—हि अयं भारः सविश्रमः, तस्य तु श्रमः प्रसक्तः। हि यत्र नराधिपः अधीनः, तस्मिन् सर्वम् अधीनम् ॥१५॥

संस्कृत टीका—हि—निश्चयेन, अयं वासवदत्तारक्षणरूपो मदीयः भारः धूः, सविश्रमः—विश्रमेण विरामेण सहितः युक्तः अपगतप्राय इत्यर्थः, (अस्ति) तस्य तु—रुमण्वतस्तु, श्रमः—राजरक्षारूपो भारः, प्रसक्तः प्रकर्षेण लग्नः विशेषरूपेण स्थित इति यावत्, (अस्ति) हि—यतः, यत्र—यस्मिन्, नराधिपः—राजा, अधीनः—आयत्तः, तस्मिन्—तत्र, सर्वम्—समस्तं राज्यकार्यजातम्, अधीनम्—आयत्तम् (भवति) ॥१५॥

अनुवाद—निश्चित रूप से मेरा यह भार कुछ उतर गया है, किन्तु रुमण्वान् का भार दृढ़ रूप से स्थित है। क्योंकि जिसके हाथ में राजा की देखभाल है, उसी के हाथ मे सब कुछ है ॥१५॥

This (mine) burden gives me rest ! but his effort must be continuous. On him certainy depends everything, on whom the king depends.

टिप्पणी—(१) हि—निश्चयार्थक अव्यय है। 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः। (२) भारः—वासवदत्ता को पद्मावती के यहाँ रखने का दायित्व-

महाराज उदयन के राज्य की पुनः प्राप्ति से संबद्ध योजना के अन्तर्गत दो दायित्व थे—(१) वासवदत्ता को सुरक्षित रखना (२) राजा के जीवन तथा राजधानी की रक्षा। प्रथम का भार यौगन्धरायण तथा दूसरे का रुमण्वान् मंत्री को सौंपा गया था। (३) सविश्रमः—निवृत्तप्राय, विरत। वि√श्रम्=घञ्, (अ) "नोदात्तोपदेशस्य' इति सूत्रेण वृद्धिनिषेधः। 'विश्रामः' की सिद्धि इस प्रकार हो सकती है—श्रम एव श्रामः प्रज्ञादित्वात् अण्, विशेषेण श्रामः विश्रामः प्रादिसमास (४) प्रसक्तः—प्र+सञ्ज्+क्त (त) कर्तरि। लगातार चल रहा है। (५) तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः—यहाँ यौगन्धरायण के कहने का तात्पर्य यह है कि जिस पर राजा का जीवन निर्भर है उसी के अधीन सब कुछ है। हमारे जितने प्रयत्न हैं, वे सब उदयन को राज्य वापिस दिलाने के लिए ही हैं। यदि उनकी मृत्यु हो जाय तो हमारे सारे प्रयास विफल हो जायेंगे। राजा का शोक इतना बढ़ा-चढ़ा है कि कहीं वासवदत्ता के वियोग मे उनके प्राण चले जाने की नौबत न आ जाय इसलिए जो बड़े यत्न से उनके प्राणों की रक्षा कर रहा है, वही वस्तुतः श्रेय का अधिकारी है। हमारी सफलता उसी पर निर्भर है। इस दृष्टि से रुमण्वान् का दायित्व मेरी अपेक्षा कहीं अधिक है। 'तस्मिन्' और 'यत्र' में 'अधिरीश्वरे' सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा और 'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी' सूत्र से सप्तमी हुई। अधीन—वशीभूत। 'अधीनो निघ्न आयतः' इत्यमरः। अधि+ख 'अषडक्षाशितङ्गु'—इत्यनेन ख इत्यस्य ईनादेशः। इस श्लोक में सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है और अनुष्टुप् छंद है॥१५॥

[प्रकाशम्] अथ भोः ! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ।

(प्रकट) क्यों महाशय ! अब तो वे राजा प्रकृतिस्थ हुए न ?

(Loudly)—Well then the king is now consoled.

टिप्पणी—पर्यवस्थापितः—प्रकृतिस्थ किये गए। अर्थात् रुमण्वान् की परिचर्या ने राजा को स्वस्थ किया या नहीं ? परि अव√स्था+णिच् पुक्+क्त (त)।

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने। इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम् इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्, इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन

तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्[1] । ततो निष्क्रान्ते[2] राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः । ततोऽहं निर्गतोऽस्मि ।

संस्कृत टीका—तत्—राज्ञः स्वस्थताविषये किमपि, इदानीम्—अधुना, न—नहि, जाने—अवगच्छामि । इह—अत्र, तया—वासवदत्तया, सह—साकं, हसितम्—हासः, कृतः, इह तया सह, कथितम्—वार्तालापः कृतः, इह तया सह, पर्युषितम्—अवस्थितम्, इह तया सह, कुपितम्—क्रोधः कृतः, इह तया सह, शयितम्—शयनं कृतम् । इत्येवम्—अमुना प्रकारेण, विलपन्तं—विलापं कुर्वन्तं, तं, राजानम्—उदयनम्, अमात्यैः—मन्त्रिभिः, महता—भूयसा, यत्नेन—प्रयासेन, तस्मात् ग्रामात्—लावाणकात्, गृहीत्वा—धृत्वा, अपक्रान्तम्—अपसृतम् । ततः—तस्मात् ग्रामात्, निष्क्रान्ते—निर्गते, राजनि—नरेशे, प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्—प्रोषितानि अस्तं गतानि नक्षत्राणि तारकाः चन्द्रश्च चन्द्रमा च यस्मात् तत् तादृशं, नभः—आकाशम्, इव—तद्वत्, अरमणीयः—अशोभनीयः, संवृत्तः—संजातः, स ग्रामः । ततः—तेन कारणेन तस्मात् ग्रामात्, अहमपि निर्गतोऽस्मि—प्रस्थितोऽस्मि ।

अनुवाद—ब्रह्मचारी—वह तो अब मुझे मालूम नहीं । 'इस जगह उसके साथ हँसा था, इस जगह उससे बातचीत की थी, इस जगह उसके साथ बैठा था, इस जगह उससे रूठा था, इस जगह उसके साथ सोया था' इस प्रकार विलाप करते हुए राजा को बड़े प्रयास से साथ लेकर मंत्री लोग उस गाँव से चले गये । पश्चात् राजा के चले जाने पर वह गाँव उसी तरह हतश्री हो गया जैसे चन्द्रमा और तारों के अस्त हो जाने पर आकाश । इस कारण मैं भी वहाँ से चला आया हूँ ।

Brahmchari—I have no knowledge of this. All I know how have the king made lamentation. "Here we talked and laughed together here we told each other stories, here we passed the day. Here I was angry with her. Here I did sleep with her" and thus lamenting, the king was with great effort taken away from the village by ministers; (and then they) went. When the king had departed, that town lacked all attraction like the heavens bereft of the moon and the stars. Therefore I too departed.

१. पाठान्तर—अपक्रान्तमपश्यम् ।

२. अपक्रान्ते ।

टिप्पणी—(१) जाने—जानता हूँ। यद्यपि ज्ञा धातु परस्मैपदी है और तदनुसार 'जाने' की जगह 'जानामि' प्रयोग होना चाहिए किन्तु 'अनुपसर्गाज्ज्ञः' इस सूत्र से आत्मनेपद कर देने पर जाने रूप हो सकता है। यही कारण है कि 'तन्न जाने सखे हे, 'जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः' इत्यादि प्राचीन श्लोकों में ज्ञा धातु के आत्मनेपदी रूप मिलते हैं। (२) पर्युषितम्—रहा, स्थित हुआ। परि√वस्+क्त (भावे) 'ग्रहिज्यावयिव्यधि'—इत्यादि सूत्रेण सम्प्रसारणम् तथा 'वसतिक्षुधोरिट्' इति सूत्रेण इडागमः। इसी प्रकार हसितम्, कुपितम्, शयितम् में क्त प्रत्यय हुआ है। (३) प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम्—चन्द्रमा और नक्षत्रों से विहीन। प्रोषित=अन्तर्हित। (४) नभ—आकाश। 'नभोऽन्तरिक्षं गगनम्' इत्यमरः। यहाँ लावाणक ग्राम की तुलना आकाश से, राजा उदयन की समता चन्द्रमा से तथा मंत्रियों की उपमा नक्षत्रों से दी गई है।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि। [स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते।]

तापसी—वह राजा अवश्य ही गुणवान् है, जिसकी प्रशंसा बटोही भी इस प्रकार कर रहा है।

Lady ascetic—That king is certainly virtuous, as he is praisd even by such a new-comer.

चेटी—भट्टिदारिए! किं णु खु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि? [भर्तृदारिके! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति?]

दासी—राजकुमारी जी! क्या दूसरी स्त्री उनके हाथ जायगी? (अर्थात् वे दूसरा ब्याह करेंगे?)

Maid—Is it possible that another woman may fall in his hands (i. e. marry him)

पद्मावती—[आत्मगतम्] मम हिअएण एव्व सह मंतिदं। [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम्।]

पद्मावती—(मन में) मेरे मन के समान ही सोचा (अर्थात् मेरे मन की बात कही)।

Padmavati—(To herself) My heart too thinks likewise.

ब्रह्मचारी---आपृच्छामि भवन्तौ । गच्छामस्तावत् ।

ब्रह्मचारी---आप दोनों की अनुमति चाहता हूँ । मैं अब जा रहा हूँ ।

Brahmchari--I take leave of you both we go now.

उभौ---गम्यतामर्थसिद्धये ।

दोनों---प्रयोजन-सिद्धि के लिए जाइये ।

Both--Go for success in your under-taking.

ब्रह्मचारी--- तथास्तु । (निष्क्रान्तः)

ब्रह्मचारी---अच्छा । (चल देता है)

Brahmchari--Let it be so (Exit).

यौगन्धरायणः---साधु, अहमपि तत्रभवत्याभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

यौगन्धरायण--अच्छा, मैं भी राजकुमारी जी से आज्ञा लेकर जाना चाहता हूँ ।

Yaug.--I too wish to go after permission from her ladyship.

काञ्चुकीयः---तत्रभवत्याभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल ।

कंचुकी---आपसे अनुमति लेकर ये भी जाना चाहते हैं ।

Chamberlain--He wishes to go after permission from *your ladyship.*

पद्मावती---अय्यस्स भइणिअ अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि ।[आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते ।]

पद्मावती---इनकी बहन इनके बिना घबड़ाएगी ।

Padmavati--Your sister may feel alone in your absence.

यौगन्धरायणः---साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यते । [काञ्चुकीयमवलोक्य] गच्छामस्तावत् ।

यौगन्धरायण---भले लोगों के हाथ में पड़ने के कारण यह नहीं घबराएगी । (कंचुकी को देखकर) मैं अब जाता हूँ ।

Yaug.--She will not feel alone when she is in the hands of good persons, (looking to the Chamberlain) me go now.

काञ्चुकीयः---गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

कंचुकी---जाइये आप, फिर दर्शन दीजिएगा ।

Chamberlain--May your honour go for a later visit.

योगन्धरायणः—तथास्तु । (निष्क्रान्तः)

योगन्धरायण—अच्छा । (चल देता है)

Yaug.—Let it be so (exit).

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

कंचुकी—अब भीतर चलने का समय हो गया ।

Chamberlain—It is time now to go in.

पद्मावती—अय्ये ! वंदामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

पद्मावती—आर्ये ! प्रणाम करती हूँ ।

Padmavati—Madam I salute.

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि ! [जाते ! तव सदृशं भर्तारं लभस्व ।]

तापसी—पुत्री ! तुम्हें अपने योग्य पति मिले ।

Lady ascetic—Child may you find a husband worthy of you.

वासवदत्ता—अय्ये[1] ! वंदामि दाव अहं । [आर्ये ! वन्दे तावदहम् ।]

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी प्रणाम करती हूँ ।

Vasava—I too salute, you lady.

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि[२] । [त्वमपि अचिरेण भर्तारं समासादय ।]

तापसी—तुम्हें भी शीघ्र तुम्हारा पति मिले ।

Lady ascetic—You, too may be soon united with your lord.

वासवदत्ता—अणुगहीदम्हि । [अनुगृहीतास्मि ।]

वासवदत्ता—अनुगृहीत हूँ ।

Vasava.—I feel obliged.

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इत इतो भवति ! सम्प्रति हि—

कंचुकी—तो आइये । इधर से चलिये, इधर से : इस समय—

Chamerlain—Then come. This way. this way Madam; for now:—

टिप्पणी (१) गुणवान्—प्रशस्ताः गुणाः सन्ति यस्मिन् इति विग्रहे गुण + मतुप् । (२) नाम—एक अव्यय है, जिसका प्रयोग वाक्य को अलंकृत करने के लिए

पाठान्तर—१. भज्जे । गच्छामि । २. लभेहि ।

किया जाता है। यहाँ व्यंग्यार्थ यह है कि ऐसा गुणी राजा निश्चित ही पद्मावती का वर होने योग्य है। (३) हस्तं गमिष्यति—हस्तगत होगी, विवाह करेगी। यहाँ भी व्यंग्यार्थ है कि आपको ऐसे अप्रतिम प्रेमी का वरण अवश्य करना चाहिए। (४) मम हृदयेन सह—मेरे मन के अनुसार। इसकी तुलना कीजिए शकुन्तला की उक्ति से—'हृदय मा उत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितानि अनसूया मन्त्रयते'। (५) आपृच्छामि—विदा चाहता हूँ। यहाँ 'आङि नुप्रच्छ्योः' इस वार्तिक से आत्मनेपद होना अनिवार्य है। तब शुद्ध रूप 'आपृच्छे' लिखना चाहिए था। किन्तु 'निरंकुशाः कवयः' कहकर अथवा आ और पृच्छामि अलग-अलग पद मान कर समाधान कर सकते हैं। अथवा उदयन की दशा का वर्णन करते-करते उस ब्रह्मचारी का चित्त विह्वल हो जाता है जिससे वह अशुद्ध प्रयोग कर देता है, कदाचित् यह भाव दिखाना कवि को अभिप्रेत हो तो आश्चर्य नहीं। (६) तत्रभवत्या—माननीया, पद्मावती। (७) अभ्यनुज्ञातः—आज्ञा प्राप्तः सन्। अभि+अनु+ज्ञा+क्त (त) कर्मणि। (८) किल—वाक्य की शोभा बढ़ाने के लिए इस अव्यय का प्रयोग किया जाता है। (९) उत्कण्ठिष्यते—उन्मन या उदास होगी। उत्+कण्ठ्+लृट् प्र०पु०ए०व०। (१०) साधुजनहस्तगता—साधुश्चासौ जनश्च कर्मधारय समास, तस्य हस्तः षष्ठीतत्पुरुष, तं गता द्वितीयातत्पुरुष। भले आदमी के आश्रय में स्थित। (११) गच्छामस्तावत्—अब मैं चलता हूँ। यहाँ आदर में बहुवचन हुआ। (१२) तावत्—यह वाक्यालंकारार्थ है। (१३) दर्शनाय—दर्शन के लिए। दृश्+ल्युट्—अन भावे=दर्शनम् तस्मै, 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' अर्थात् तुमुन् प्रत्यय के अर्थ को व्यक्त करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी होती है। (१४) अभ्यन्तरम्—कुटी के भीतर। (१५) तव सदृशम्—यहाँ 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' इस सूत्र से तृतीया विकल्प से होने के कारण षष्ठी हुई। (१६) समासादय—प्राप्त करो। सम्+आङ्+सद्+णिच् लोट् म०पु०ए०व०। तापसी वासवदत्ता को यह आशीर्वाद दे रही है क्योंकि वह पतिवियुक्ता है।

> खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
> प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
> परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
> रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।) इति प्रथमोऽङ्कः

अन्वय—खगाः वासोपेताः । मुनिजनः सलिलम् अवगाढः । प्रदीप्तः अग्निः भाति । धूमः मुनिवनम् प्रविचरति । दूरात् परिभ्रष्टः च संक्षिप्तकिरणः असौ रविः अपि रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ॥१६॥

संस्कृत टीका—खगाः—पक्षिणः, वासोपेताः—वासं निवासस्थानं नीडं यावत् उपेताः प्राप्ताः । मुनिजनः—तपस्विनः, सलिलम्—जलम्, अवगाढः—अवतीर्णः प्रविष्टः इत्यर्थः । प्रदीप्तः—प्रज्वलितः, अग्निः—वह्निः, भाति—प्रकाशते । धूमः—वह्निजन्यः, मुनिवनम्—तापसाश्रम, प्रविचरति—व्याप्नोति । दूरात्—दूरस्थानात्, परिभ्रष्टः—च्युतः, च—पुनः, संक्षिप्तकिरणः—संक्षिप्ताः उपसहृताः किरणाः रश्मयः येन स तथाविधः, असौ—दृश्यमानः, रविः—सूर्यः, अपि, रथं—स्वस्य यानं, व्यावर्त्य—सन्निरोध्य, शनैः—मन्दम्, अस्तशिखरम्—अस्ताचलस्य शृङ्गम्, प्रविशति—गच्छति । (अयं भावः—आदिनमाहारचयनेन परिश्रान्ताः पक्षिणः स्वस्वनीड प्रविशन्ति । तपस्विनः स्नातु जलाशयम् अवतरन्ति । आज्वल्यमानः श्रौतः स्मार्तो वा अग्निः शोभते । गगनतलात् पतितः सूर्यः मन्दीकृतकिरणः सन् स्वकीयं रथं परावर्त्य शनैः शनैः अस्ताचलशिखरमारोहति । अमीभिः लक्षणैः सायंवेला समुपागतेत्यनुमीयते । अतोऽस्माभिः कुटीराभ्यन्तरं गन्तव्यम् ।) ॥१६॥

अनुवाद—पक्षी घोंसलों में चले गये हैं। मुनि लोग (स्नान करने के लिए) जल में उतर गये हैं। जलती हुई आग चमक रही है। धुआँ तपोवन में फैल रहा है। दूर से गिरा हुआ और अपनी किरणों को समेट लेने वाला यह सूर्य भी रथ को लौटा कर धीरे-धीरे अस्ताचल की चोटी की ओर जा रहा है ॥१६॥

(सबका प्रस्थान) पहला अङ्क समाप्त।

The birds have resorted to their abodes, the sages have plunged into water, the flaming fires shine brilliantly, the smoke is moving onward in the ascetic grove. The sun too with beams subdued, swerving his car from the long course aslant, sinks slowly down towards the setting mountain. (Exeunt Omnes)
End of Act I.

टिप्पणी—(१) खगाः—चिड़ियाँ। खे=आकाशे गच्छन्ति इति खगाः, गम्√ गम्+ड 'गुरुरेरपिदृश्यते' इति वार्तिके 'अन्यत्रापि दृश्यते' इति वचनात् डित्वात् टिलोपः। (२) वासोपेताः—निवास स्थान अर्थात् घोंसलों में पहुँच गये हैं।

वासम् उपेताः, द्वितीयातत्पुरुष समास । उपेताः—उ√इण्+क्त कर्तरि 'गत्यर्थाकर्मक'—इत्यादिना । (३) सलिलम्—जल । 'सलिलं कमलं जलम्' इत्यमरः । (४) अवगाढः—(जल में) प्रविष्ट । प्रविष्ट । अव√गाह्+क्त (त) कर्तरि । (५) प्रदीप्तः—प्रज्वलित । प्र√दीप्+क्त (त) कर्तरि दीप् धातोः अकर्मकत्वात् 'गत्यर्थाकर्मक' इत्यादिना । (६) अधिचरति—व्याप्त कर रहा है । यहाँ व्याप्ति अर्थ मानने पर ही 'मुनिवनम्' में कर्म में द्वितीया हुई है । (७) संक्षिप्त-किरणः—जिसकी किरणें संकुचित हो गई हों । (८) व्यावर्त्य—लौटा कर । वि+आङ+वृत्+णिच्+ल्यप् । अस्ताचल को जाते हुए सूर्य का स्वाभाविक चित्र अंकित किया गया है । इसी तरह का भाव 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में मिलता है—'सोऽयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखैः' । भास ने यहाँ सन्ध्या का कैसा सूक्ष्म एवं हृदयग्राही वर्णन सरल, सरस तथा अर्थबोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किया है । इस श्लोक में 'खगा वासोपेताः' इत्यादि हेतुओं से सन्ध्याकाल का अनुमान किया गया है, इसलिए अनुमान अलंकार है और शिखरिणी छन्द है । तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे—'अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः ।' अर्थात् साध्य-साधन का कथन करना अनुमान अलंकार होता है ॥१६॥

अथ द्वितीयोऽङ्कः

[यह द्वितीय अंक पद्मावती का वासवदत्ता के साथ गेंद खेलने से आरम्भ होता है। बहुत देर खेलने के पश्चात् वह विश्राम करने लगती है। उसी समय पद्मावती की दासी द्वारा ज्ञात होता है कि राजकुमारी उदयन के गुणों पर मुग्ध है। तदनन्तर सूचना मिलती है कि पद्मावती का विवाह उदयन के साथ तय हो गया तथा आज ही पाणिग्रहण की शुभ घड़ी है।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी--कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी किं भणासि, एसा भट्टिदारिआ[1] माहवीलदामण्डवस्स पस्सदो[2] कन्दुएण [3]कीलदिति[4]। जाव[5] भट्टिदारिअं उवसप्पामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो इअं भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचूलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि। जाव उवसप्पिस्स[6]। [कुञ्जरिके! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति। यावदुपसर्पामि।] (निष्क्रान्ता)

संस्कृत टीका—रंगमंच समागता चेटी कुञ्जरिकाख्यायाः चेट्याः नामोल्लेखपुरःसर प्रसङ्गानुकूलं वचनमुपक्षिपति—कुञ्जरिके इति, कुत्र—क्व, भर्तृदारिका—राजकुमारी, पद्मावती। किं भणसि—किं कथयसि, एषा भर्तृदारिका, माधवीलतामण्डपस्य—माधवीलतायाः वासन्तीलतायाः मण्डप निकुञ्जः तस्य, पार्श्वतः—निकटे, कन्दुकेन—गेन्दुकेन, क्रीडति—खेलति। यावत्—अतः, भर्तृदारिकाम्, उपसर्पामि—उपगच्छामि। अम्मो—विस्मयानन्दसूचकमव्ययमिदम्, इयं—इयम्-

---

१. पाठान्तर—दारिआ पदुमावदी। २. पस्सगदा (पार्श्वगता)। ३. कीलन्दी। ४. त्ति। गन्दुअं। ५. अहं वि। ६. पसप्पामि।

माना, भर्तृदारिका, उत्कृतकर्णचूलिकेन—उत्कृते उपरिकृते कर्णयोः इति शेषः कर्णचूलिके कर्णावतंसौ यस्मिन् तेन तथाभूतेन, व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन—व्यायामात् कन्दुकक्रीडाजन्यायासात् सञ्जाताः समुत्पन्नाः स्वेदबिन्दवः घर्मोदककणाः तैः विचित्रितेन अपूर्वसौन्दर्यं दधता, परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन—परिश्रान्तेन—क्लान्त्या रमणीयं कमनीयं दर्शनम् अवलोकनं यस्य तादृशेन, मुखेन—आननेन उपलक्षिता इति शेषः, कन्दुकेन, क्रीडन्ती—खेलन्ती। इत एव—इममेव प्रदेशम्, आगच्छति—समायाति। यावत्—वाक्यालंकारार्थमेतत्, उपसर्पामि—समीपं गमिष्यामि।

(तदनन्तर दासी का प्रवेश)

दासी—अरी कुंजरिका! राजकुमारी पद्मावती कहाँ है? क्या कहती हो, यह राजकुमारी माधवी कुंज की बगल में गेंद खेल रही है। अच्छा, तो राजकुमारी के पास चलूँ। (घूम कर और देखकर) ओहो! यह राजकुमारी, जिसने कर्णफूलों को ऊपर उठा लिया है और जिसका मुख व्यायाम से उत्पन्न पसीने की बूँदों से विलक्षण एवं थकावट से रमणीय दीख रहा है, गेंद खेलती हुई इधर ही आ रही हैं। अच्छा, समीप तो चलें। (चली गई)

(Then enter a maid) Maid—Kunjarika, where is the princess padmavati? What do you say Here the princess is playing with a ball in the vicinity of the bower of Madhavi (jasmine) creepers. I shall now go to the princess. (Turns about and looking) Oh! here only comes the princess, the locks of hair on her ear put up, her face looking beautiful on account of fatigue and bespangled with drops of perspiration through exercise and playing with a ball, I shall just approach her (Exit)

इत्यमरः। (५) अम्मो—हर्ष तथा आश्चर्यसूचक अव्यय। (६) उत्कृतकर्णचूलिकेन—क्रीड़ा से समय कर्णफूलों या कुंडलों को कानों पर चढ़ाए हुए। (७) व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन—कन्दुक-क्रीडा की श्रान्ति से निकले हुए पसीनों की बूंदों से अपूर्व छवि वाले। (८) मुखेन—इसमें 'इत्थमूतलक्षणे' सूत्र से तृतीया हुई।

प्रवेशकः

[ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया[1] सह।]

(तब गेंद खेलती हुई पद्मावती परिजनों तथा वासवदत्ता के साथ आती हैं।)

(Then enter Padmavati playing with a ball accompanied by her attendants and Vasavadatta).

टिप्पणी—(१) प्रवेशकः—दो अंकों के बीच का एक प्रकार का अंक जिसमें नीच पात्र न दिखायी हुई तथा भावी घटनाओं की सूचना देते हैं। जैसा कि साहित्यदर्पणकार ने कहा है—'प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। अकद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।।' विष्कम्भक का लक्षण यह है—'वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः।। मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः। शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः।

वासवदत्ता—हला! एसो दे कन्दुओ। [हला! एष ते कन्दुकः]।

वासवदत्ता—सखी! यह तुम्हारा गेंद है।

Vasava.—Oh, here, this is your ball.

पद्मावती—अय्ये! भोदु दाणि एत्तअं [आर्ये! भवतु इदानीम् एतावत्।]

पद्मावती—आर्ये! इस समय इतना ही पर्याप्त है।

Padmavati—Madam, it is enough now.

वासवदत्ता—हला[2]! अतिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता। [हला! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ।]

---

१. पाठान्तर—आवन्तिका वेषधारिणी वासवदत्ता च।

२. पाठान्तर—हला किंणिमित्त वारेसि। किंनिमित्तं वारयसि।

संस्कृत टीका--हे सखि !, प्रतिचिरं--दीर्घकालं, कन्दुकेन, क्रीडित्वा--खेलित्वा कन्दुकेन क्रीडनाद्धेतोरित्यर्थः, ते--तव, हस्तौ--करौ, अधिकसञ्जातरागौ--अधिकम् बहु (सञ्जननक्रियायाः विशेषणमिदम्) सञ्जातः उत्पन्नः रागः लालिमा ययोः तौ, परकीयौ, अन्यदीयौ, इव--तद्वत्, संवृत्तौ--सञ्जातौ ।

वासवदत्ता--सखी ! अधिक देर तक गेंद खेलने के कारण लालिमा बढ़ जाने से तुम्हारे हाथ मानो पराये हो गए हैं ।

Vasava.—Friend, having played with the ball for a very long time your hands, with their reddishness enhanced greatly as it were, *now belong to another.*

टिप्पणी--(१) हला--यह सम्बोधनसूचक अव्यय है। इसका प्रयोग सखी के लिए किया जाता है--'हण्डे हञ्जे हलाह्वाने नीचा चेटी सखीं प्रति' इत्यमरः। *यहाँ स्पष्टार्थ यह है--'यह तुम्हारा गेंद है। लो, खेलो।* (२) एतावत्--*यहाँ* तात्पर्यार्थ यह है--'बहुत देर तक खेलने से मैं थक गई हूँ और अधिक खेलना नहीं चाहती हूँ। इसलिए इस समय इतना ही रहने दो। (३) कन्दुकेन--गेंद से। इसमें 'साधकतम करणम्' सूत्र से करण संज्ञा होने पर तृतीया हुई। (४) क्रीडित्वा--खेलकर। यहाँ हेत्वर्थ में क्त्वा प्रत्यय हुआ है। 'क्रीडित्वा' के बाद 'क्लान्तायाः' पद का अध्याहार करने पर 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' सूत्र से क्त्वा प्रत्यय के होने में कोई बाधा नहीं है। *यहाँ भावार्थ यह है कि जैसे दूसरे के हाथ अपना कार्य* करने में असमर्थ होते हैं उसी तरह बड़ी देर तक क्रीडा करने से थके हुए तुम्हारे दोनों हाथ इस समय मानो दूसरे के हो जाने से गेंद खेलने में असमर्थ हैं। गूढार्थ तो यह है कि अत्यन्त लालिमा से युक्त तुम्हारे दोनों हाथ अब शीघ्र ही पाणिग्रहण होने पर पराये हो जायेंगे। (५) परकीयौ--दूसरे के। पर+ (ईय) *और तब कुक् का आगम।* (६) संवृत्तौ--*हो गये* हैं। *सम्+वृत्+क्त (त)* कर्त्तरि।

चेटी--कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ। णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो। [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीयः कालः।]

दासी--राजकुमारी खूब खेलें। क्वाँरेपन के इस रमणीय समय को सफल करें।

Maid—Nay keep on playing, princess, and enjoy these golden *hours of girlhood while you may.*

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ।
[आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ।]

पद्मावती—आर्ये ! क्या इस समय मेरी हँसी उड़ाने के लिए ताक रही हो ?

Padmavati—Madam, why do you seem to be thinking of making fun of me.

वासवदत्ता—णहि णहि । हला ! अधिअं अज्ज सोहदि[1] । अभिदो विअ दे अज्जवरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

संस्कृत टीका—नहि नहि—नो नो । हला !—सखि । अद्य—अधुना,(ते मुखम्) अधिकम्—अत्यन्तं, शोभते—राजते । अद्य ते, वरमुखं—वरस्य वरणकर्तुः मुखं वदनम्, अभित इव—आसन्नमिव, पश्यामि, साक्षात्करोमि ।

वासवदत्ता—नहीं नहीं । सखी ! तुम्हारा मुख आज बहुत शोभित हो रहा है । अब मैं तुम्हारे वर का मुख निकट ही देख रही हूँ ।

Vasava.—Oh no, I do not. You are lovelier to-day than ever and I wish to see your pretty face from every point of view.

टिप्पणी—(१) क्रीडतु क्रीडतु—यहाँ पौनःपुन्य के अर्थ में द्वित्व हुआ है । (२) निर्वर्त्यताम्—उपयुक्त कर्म में (खेल में) लगावें । निर्+वृत्+णिच्+लोट् । प्र० पु० ए० व० । (३) कन्याभावरमणीयः—बालोचित लीला से मनोहर । कन्याभावेन=कौमार्येण रमणीयः । भाव यह है कि आप अपनी इस किशोरावस्था को बालोचित खेल में बितावें । कन्या शब्द की परिभाषा साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार दी है—कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना । यस्मिन् काले बालानां कन्यात्वमुपजायते ।। कन्याभाव में स्वभावतः सौन्दर्य रहता है । नि+ध्यै+लट् म० पु० ए० व० । (४) निध्यायसि—पश्यसि । एकटक देख रही हो । 'निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः । (५) नहि नहि—निषेध की दृढ़ता दिखाने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है । भाव यह है कि तुम्हारा उपहास करने के लिए तुम्हारे मुख को नहीं देख रही हूँ, बल्कि आज तुम्हारे मुख की शोभा ही मुझे यह सोचने के लिए विवश कर रही है कि मानो तुम्हारा प्रियतम तुम्हारे समीप ही विद्यमान है, जिसके समागम के सौभाग्य से तुम इतनी सुन्दर लग रही हो ।

१. पाठान्तर—सोहसि ।

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानीं मामपहस ।]

पद्मावती—हटो अब मेरी खिल्ली मत उड़ाओ ।

Padmavati—Go away, do not laugh at me.

वासवदत्ता—एसम्हि तुह्णीआ भविस्सम्महासेणवहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

वासवदत्ता—अच्छा लो महासेन जी की भावी पतोहू ! मैं चुप हो गई ।

Vasava.—Oh would be daughter-in-law of Mahasena here I keep quiet.

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

पद्मावती—ये महासेन कौन हैं ?

Padmavati—Who is this Mahasena ?

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदो णाम । तस्स बल-परिमाणणिव्वत्तं णामहेअं महासेणोत्ति । [अस्ति उज्जयिन्या राजा प्रद्योतो नाम तस्य बलपरिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति ।]

वासवदत्ता—उज्जैन के राजा प्रद्योत हैं । विशाल वाहिनी के स्वामी होने के कारण उनका नाम महासेन पड़ गया है ।

Vasava.—There is a king of Ujjain by name Pradyota; Mahasena is his name from the size of his army.

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रञ्जा सह सम्बन्धं णेच्छदि ! [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति ।]

दासी—राजकुमारी उस राजा के साथ सम्बन्ध करना नहीं चाहती ।

Maid—The princess desires to have no connection with him.

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? (अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?)

वासवदत्ता—तो फिर किसके साथ चाहती है ?

Vasava.—There with whom does she desire it ?

चेटी—अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम । तस्स गुणाणि भट्टदारिआ अभिलसदि । [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति ।]

दासी—उदयन नाम का वत्स देश का राजा है। राजकुमारी उसी के गुणों पर लट्टू हैं।

Maid—It is Udayan; the Vatsa king. It is for his virtues that my lady loves.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि। (प्रकाशम्) केण कारणेण? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन?]

वासवदत्ता—(मन मे) आर्यपुत्र को स्वामी बनाना चाहती है। (प्रकट) किस कारण?

Vasava.—(To herself) It is my lord,my husband that she loves (aloud) say for what virtues ?

चेटी—साणुक्कोसोत्ति। (सानुक्रोश इति।)

दासी—चूंकि वह दयालु हैं।

Maid—For his loving kindness-

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि। अअं वि जणो एव्व उम्मादिदो। [जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः]

वासवदत्ता—(मन मे) जानती हूँ, जानती हूँ, यह व्यक्ति भी इसी प्रकार उन्मत्त बनाया गया था।

Vasava.—((To herself) I know, I know it was this that won my heart.

चेटी—भट्टिदारिए! जदि सो राआ विरूवो भवे? [भर्तृदारिके! यदि स राजा विरूपो भवेत्?]

दासी—राजकुमारी! यदि वह राजा कुरूप हो, तो?

Maid—(To Padmavati) what if the prince should prove to be ill-favoured.

वासवदत्ता—णहि णहि। दंसणीओ एव्व। [नहि नहि। दर्शनीय एव।]

वासवदत्ता—नही, नही। वे तो देखने योग्य ही हैं अर्थात् बड़े ही सुन्दर हैं।

Vasava.—Oh no, Oh no, he is a handsome prince.

पद्मावती—अय्ये! कहं तुवं जाणासि? [आर्ये! कथं त्वं जानासि?]

पद्मावती—आर्ये! तुम कैसे जानती हो?

Padmavyti—Lady, how do you know ?

वासवदत्ता—[आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। किं दाणि करिस्सं? होदु, दिट्ठं। (प्रकाशम्) हला! एव्वं उज्जईणीओ जणो मन्तेदि ? (आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम्। हला! एवमुज्जयिन्याः जनो मन्त्रयते।)

संस्कृत टीका—आर्यपुत्रपक्षपातेन-आर्यपुत्रस्य स्वामिनः उदयनस्य पक्षपातेन तत्पक्षसमर्थनेन तस्य रूपशालित्वस्य प्रशंसयेति यावत्, (मया) समुदाचारः—शिष्टाचारः कर्तव्यमिति यावत्, अतिक्रान्तः—उल्लंघितः। इदानीम्—अधुना, किं करिष्यामि ?—किं विधास्यामि ?, भवतु,—अस्तु, दृष्टम्-ज्ञातम् उत्तरमिति शेषः। हला!—सखि!, उज्जयिन्याः जनः—उज्जयिनीवासिनो लोकाः, एव मन्त्रयते—इत्थ कथयन्ति।

वासवदत्ता—(मन में) आर्यपुत्र का पक्ष लेकर मैंने कर्त्तव्य की अवहेलना की। अब क्या करूँ? अच्छा, उत्तर सूझ गया। (प्रकट) ऐसा उज्जैन के लोग कहते हैं।

Vasava.—(to herself) My eagerness to praise my lord made me forget myself, what shall I do now ? Ah ? I have it (aloud) why, so all the people of Ujjain declare.

टिप्पणी—(१) अपेहि—दूर जा। अप उपसर्गपूर्वक इण् गतौ धातु के लोट् लकार—मध्यम पुरुष—एकवचन का यह रूप है। (२) मा—यह निषेधार्थक अव्यय है। अतएव 'अपहस' में विध्यर्थ मे लोट् लाकर हुआ है, अन्यथा 'माङि लुङ' सूत्र से लुङ लकार हो जाता। (३) भविष्यन्महासेनवधु—होने वाली महासेन की वधू। महती सेना यस्य स महासेनः, तस्य वधूः महासेनवधूः भविष्यन्ती चासौ महासेनवधूश्च भविष्यन्महासेनवधूः तत्सम्बुद्धौ भविष्यन्महासेनवधु! 'स्त्रियाः पुंवद्भाषित'—इत्यादि सूत्र से 'भविष्यन्ती' मे पुंवद्भाव हुआ। 'वधूः' मे 'दिति ह्रस्वश्च' सूत्र से नदीसंज्ञा, 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से ह्रस्वता और 'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' सूत्र से 'सु' का लोप होने पर 'वधु' यह सम्बोधन का रूप सिद्ध होता है। 'वधू' कहते हैं पतोहू को—'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च' इत्यमरः। (४) तूष्णीका—चुप। तूष्णींशीलस्तु तूष्णीकः' इत्यमरः। 'तूष्णीम्' यह अव्यय है। इससे 'शीले को मलोपश्च' इस वार्तिक से क प्रत्यय और म् का लोप होने पर

तूष्णीक शब्द बना, फिर तूष्णीक से स्त्रीलिंग में टाप् होने पर तूष्णीका शब्द सिद्ध होता है। किसी पुस्तक में 'उज्जयिन्या राजा' की जगह 'उज्जयिनीयो राजा' पाठ है। इसकी व्युत्पत्ति होगी—उज्जयिन्या अयम् इति उज्जयिनीयः=उज्जयिनी सम्बन्धी। उज्जयिनी+छः 'तस्येदम्' इत्यधिकारे 'वा नामधेयस्य' इति वृद्ध-संज्ञाया 'वृद्धाच्छः' इत्यनेन, तस्य च 'आयनेयीनीयियः' इत्यादि सूत्रेण ईयादेशः। (५) बलपरिमाणनिर्वृत्तम्—बलस्य=सेनाया:परिमाणेन=महत्त्वरूपेण निर्वृत्तम्= सम्पन्नम् अर्थात् असत्य सेना होने के कारण सम्पन्न। (६) वत्सराज—वत्सानां राजा वत्सराजः, 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति सूत्रेण समासान्तटच्प्रत्ययः। (७) सानुक्रोशः—दयालु। अनुक्रोशः=दया, तेन सहितः सानुक्रोशः। 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि' इत्यमरः। (८) समुदाचारः—सदाचार। सम्-उद्-आ√चर्+घञ् (अ)। (९) मन्त्रयते—कानाफूसी करते हैं, कहते हैं। चुरादि गणीय मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे धातु के लट् लकार—प्रथम पुरुष-एकवचन का यह रूप है।

पद्मावती—जुज्जइ। ण खु एसा उज्जइणीदुल्लहो। सव्वजण-मणोभिरामं खु सोभग्गं णाम (युज्यते। न खल्वेष उज्जयिनी-दुर्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।)

संस्कृत टीका—युज्यते—संगच्छते त्वदुक्तमिति शेषः। एषः श्रीमान् उदयनः, उज्जयिनीदुर्लभः—उज्जयिन्याः। उज्जयिनीवासिनामुपलक्षणात् दुर्लभः दुष्प्रापः, न खलु—नह्येव (अस्ति)। सौभाग्यं—सौन्दर्यं, नाम—प्रसिद्धार्थक-मेतत्, खलु—निश्चयेन, सर्वजनमनोऽभिरामम्—सर्वेषां समस्तानां जनानां लोकानां मनसः चित्तस्य अभिरामम् आकर्षकम् (भवति)।

अनुवाद—ठीक है। उज्जैन के निवासियों के लिए उनका (उदयन का) दर्शन दुर्लभ नहीं है। और सौन्दर्य सबके मन को आकृष्ट कर लेता है।

Padmavati—Right. He is not difficult of access (to people) in Ujjain Indeed beauty gratifies the mind of all men.

टिप्पणी—(१) न खलु उज्जयिनीदुर्लभः—भाव यह है कि उज्जैन के लोगों के लिए उदयन का दर्शन दुर्लभ नहीं है, क्योंकि वहाँ ससुराल होने के कारण वे कई बार गये-आये होंगे तो जब वहाँ के लोग उन्हें सुन्दर कहते हैं तब कोई कारण नहीं है कि वे सुन्दर न हों।

(ततः प्रविशति धात्री)

धात्री—जेदु[1] भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! दिण्णासि । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! दत्तासि ।]

(तदनन्तर धाई का प्रवेश) धाई—राजकुमारी की जय हो। राजकुमारी! तुम दे दी गई अर्थात् तुम्हारी सगाई हो गई।

(Then enter the nurse) Nurse—May fair fortune be fall your Royal Highness. Your hand has been bestowed.

वासवदत्ता—अय्ये ! कस्स ? [आर्ये ! कस्मै ?]

वासवदत्ता—देवी ! किसे ?

Vasava.—Revered lady on whom ?

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स[2] । [वत्सराजायोदयनाय ।]

धाई—वत्स देश के राजा उदयन को।

Nurse—The Vatsa king, Udayan.

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ! [अथ कुशलो स राजा ?]

वासवदत्ता—वे राजा कुशल से तो हैं न ?

Vasava.—Is the king doing well.

धात्री—कुसलो सोइह आअदो। तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ। [कुशली स इहागतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।]

धात्री—वे कुशलपूर्वक आये हैं और उन्होंने राजकुमारी को (ब्याहना) स्वीकार भी कर लिया है।

Nurse—The king is well and has come here and has accepted to marry my princess.

वासवदत्ता—[3]अच्चाहिदं ।[4] [अत्याहितम् ।]

वासवदत्ता—अनर्थ हो गया।

Vasava.—How terrible. ?

---

१. पाठान्तर। जेदु जेदु। २. णस्स दिण्णा (दत्ता)। ३. पाठान्तर—सो प्रापदो। ४. पाठान्तर—हिद सु एहं (सत्येनत्)।

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ? (किमत्रात्याहितम् ?)

धाई—इसमें क्या अनर्थ हुआ ?

Nurse—What is that ? why terrible ?

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि । तह णाम सन्तप्पिअ उदासीणो होदि त्ति । [न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति]

वासवदत्ता—कुछ नहीं । (वे राजा) उस प्रकार (वासवदत्ता के वियोग से) सन्तप्त होकर (वासवदत्ता से) उदासीन हो गये यही सोच कर मैंने ऐसा कहा) ।

Vasava.—Nothing really. Having been pained in that way, now he has become indifferent.

धात्री—अय्ये ! आअप्पमहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति[1] । [आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।]

धाई—श्रीमती जी ! महापुरुषों के हृदय शास्त्रों पर विश्वास करने के कारण आसानी से प्रकृतिस्थ हो जाते हैं ।

Nurse—Revered lady, the minds of great men are advanced in knowledge and can easily become composed.

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वारिदा ? [आर्ये ! स्वयमेव तेन वृता ।]

वासवदत्ता—देवी ! क्या उन्होंने स्वयं वरण किया ?

Vasava.—Revered lady, has she been chosen by himself (of his own free will) ?

धात्री—णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविण्णाणवओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा । [नहि नहि, अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।]

संस्कृत टीका—नहि नहि—नैवम् । अन्यप्रयोजनेन—कारणान्तरेण, इह—अत्र, आगतस्य—समायातस्य, अभिजनविज्ञानवयोरूपम्—अभिजनः कुलम् विज्ञानम् शिल्पशास्त्रपटुत्वम् वयः अवस्था तारुण्यमिति यावत् रूपम् सौन्दर्यम् इति दृष्ट्वा—अवलोक्य, महाराजेन—दर्शकेन, स्वयम्—आत्मनैव, दत्ता—दानेन समर्पिता ।

---

१. होन्ति सोमसुण्णानि (सोमशून्यानि) ।

नही नहीं। किसी दूसरे उद्देश्य से आये हुए उनके कुल, शिल्प और शास्त्रों का ज्ञान यौवन तथा सौन्दर्य देख कर महाराज ने स्वयं ही पद्मावती को दे दिया।

Nurse—No, not certalnly. She was given by the king himself after noticing his exalted birth, achievements, age and personal charms when he came here on a different mission.

टिप्पणी—(१) धात्री—उपमाता, धाई। 'धात्री स्यादुपमातापि'इत्यमरः। (२) कुशली—कुशलयुक्त। कुशलम् अस्ति अस्य इति विग्रहे कुशल+इनि 'अत इनिठनौ' इत्यनेन। (३) तस्य प्रतीष्टा—उन्होंने स्वीकृत वचन दे दिया है। यहाँ 'तेन प्रतीष्टा' होना चाहिए था, किन्तु कर्ता के अर्थ की अविवक्षा करके सम्बन्ध सामान्य मे षष्ठी हुई है। प्रति√इष्+क्त (त), टाप् (आ)=प्रतीष्टा। (४) अत्याहितम्—भारी अनर्थ, महाभय। 'अत्याहितं महाभीतिः' इत्यमरः। अतिशयेन आधीयते मनसि इति अत्याहितम्, अति—आ√धा+क्त(त),'दधातेर्हिः' इति सूत्रेण धा इत्यस्य हि आदेशः। (५) आगमप्रधानानि—शास्त्रों को महत्त्व देने वाले। आगमः=शास्त्रम् प्रधानम्=मुख्यो येषु तानि आगमप्रधानानि। (६) सुलभपर्यवस्थानानि—सु+लभ्+खल् (अ) कर्मणि। परि+अव+स्था+ल्युट् (अन) भावे—पर्यवस्थानम्। सुलभम्=अनायाससाध्यम् पर्यवस्थानम्= प्रकृतिस्थितिः येषां तानि तथाविधानि। यहाँ वाक्य का तात्पर्य यह है कि शास्त्रों के ज्ञान से उद्भासित अन्तःकरण वाले पुरुष शीघ्र प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। उदयन शास्त्रवेत्ता हैं अतः वे अब प्रकृतिस्थ हैं। उनमे उदासीनता नही है। इसलिए अनर्थ होने का कोई कारण नहीं है। (७) वृता—वरण किया। पत्नीत्वेन अभिलषिता। √वृ+क्त (त), टाप् (आ)। किसी-किसी पुस्तक मे 'वरिता' पाठ मिलता है। ईप्सार्थक चुरादिगणीय वर् धातु से क्त प्रत्यय करने पर इसकी सिद्धि होगी। (८) अन्यप्रयोजनेन—दूसरे प्रयोजन से। अन्यत् च तत् प्रयोजनम् अन्यप्रयोजनम् कर्मधारय समास तेन। अत्र हेतौ तृतीया अर्थात् करण मे तृतीया हुई है। (९) अभिजनविज्ञानवयोरूपम्—'अभिजनश्च विज्ञान च वयश्च रूपं च' इस विग्रह मे समाहार द्वन्द्व करने पर नपुंसकत्व और एकवचन हुआ। (१०) अभिजन—कुल। 'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ' इत्यमरः। (११) विज्ञान—शिल्प और शास्त्रविषयिणी बुद्धि। 'विज्ञान शिल्पशास्त्रयोः' इत्यमरः। वर के लिए आवश्यक गुण ये बताये गये हैं—कुलं च शीलं च सनाथता च विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च'।

वासवदत्ता--(आत्मगतम्)एव्वं ! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो।
[एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता--(मन में) ऐसा। अब इसमें आर्यपुत्र का कोई दोष नहीं है।
Vasava.--(To herself) Ah, then in this my lord is not to blame

टिप्पणी--(१) अनपराद्धः--अपराध या दोष से रहित। अप√राध्+क्त (कर्तरि)॥

(प्रविश्यापरा)

चेटी--तुवरदु तुवरदु दाव अय्या[1]। अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं। अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं तिअह्माणं भट्टिणी भणादि। (त्वरतां त्वरतां तावदार्या। अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्। अद्यैव, कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति।)

संस्कृत टीका--त्वरताम्--शीघ्रता करोतु, आर्या--धात्री। अद्यैव--अस्मिन्नेव दिवसे, किल--निश्चयेन, शोभनं--सुन्दरं, नक्षत्रम् (वर्तते)। अद्यैव, कौतुकमङ्गलम्--वैवाहिकसूत्रबन्धनरूपं मङ्गलकार्यं, कर्तव्यम्--विधातव्यम्, इति--एवम्, अस्माकं, भट्टिनी--स्वामिनी महाराजदर्शकस्य पत्नीत्यर्थः, भणति--कथयति, आज्ञापयति इति यावत्॥

अनुवाद--(दूसरी दासी का प्रवेश) दासी--देवी ! शीघ्रता कीजिये। हमारी महारानी कहती हैं कि आज ही उत्तम नक्षत्र है। (इसलिए) आज ही कंगन बाँधने का मंगलाचार सम्पन्न हो जाना चाहिए।

(Enter another maid servant) Maid--Lady, make haste, make haste. This very day is the auspicious time, This very day the holy marriage rites must be performed, this is the behest of her majesty, the queen.

टिप्पणी--(१) त्वरताम् त्वरताम्--अतिशय शीघ्रता सूचित करने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है। (२) शोभनं नक्षत्रम्--शुभ नक्षत्र। यहाँ नक्षत्र शब्द शुभ तिथि, लग्न आदि का भी उपलक्षक है। ज्योतिष में विवाह के लिए शुभ नक्षत्र, लग्न आदि ये कहे गये हैं--'रेवत्युत्तररोहिणीमृगमघामूलानुराधा-करस्वातीषु प्रमदातुलामिथुनके लग्ने विवाहः शुभः। मासाः फाल्गुनमाघमार्ग-शुचयो ज्येष्ठस्तथा माधवः शस्ताः सौम्यदिन तथैव तिथयो रिक्ता मुहूर्ताश्च ताः।'

1. पाठान्तर--टिट्टारिआ। भर्तृदारिका।

(३) कौतुकमङ्गलम्—विवाह के अवसर पर वर और कन्या के हाथों में जो कगन बांधा जाता है, उसी को कौतुममंगल कहते है। 'कौतुकं स्वमिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः। विवाहसूत्रगीतादिभोगयोरपि न द्वयोः ॥' इति मेदिनीकोशः। मत्स्यपुराण के अनुसार कंगन में दूब, हल्दी आदि का व्यवहार किया जाता है—'दूर्वायवाङ्कुरास्चैव बालकं चूतपल्लवाः। हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः। कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः।' कौतुकरूपं मङ्गलम् इति कौतुकमगलम्, मध्यमपदलोपी समास। (४) भट्टिनी—अकृताभिषेका रानी। 'देवी कृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी।' इत्यमरः।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं। [यथा यथा त्वरते तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम्।]

वासवदत्ता—(मन में) जैसे-जैसे यह शीघ्रता कर रही है, वैसे-वैसे मेरा हृदय सूना होता जा रहा है।

Vasava—(To herself) The more they haste, still the deeper the shadows on my heart.

टिप्पणी—(१) अन्धीकरोति—अंधा (किंकर्तव्यविमूढ़) बना रही है। न अन्धम् अन्धं करोति इति विग्रहे 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इति सूत्रेण च्विप्रत्ययः, 'अस्य च्वौ' इति सूत्रेण ईत्वम्, ततः√कृ+लट्—तिप्। कृ+लट् प्र० पु० ए० व०।

धात्री—एदु[१] एदु भट्टिदारिआ। [एत्वेतु भर्तृदारिका!]
(निष्क्रान्ताः सर्वे।) इति द्वितीयोऽङ्कः।

धाई—आइये, राजकुमारी जी! आइये। (सबका प्रस्थान।) दूसरा अंक समाप्त।

Nurse—Come, come my princess (Exuent omnes). Here ends Act II.

---

१. पाठान्तर—पविसदु दाव अब्भन्तर०। (प्रविशतु तावदभ्यन्तरं०)। पाठान्तर मे अर्थ हुआ 'तो अन्दर प्रवेश करें। प्र+विश्+लोट् प्र० पु० ए०व०।

अथ तृतीयोऽङ्कः

(इस अंक में अपने पति के साथ पद्मावती का विवाह होने से वासवदत्ता की व्यथा का वर्णन किया गया है। वह मनोविनोदार्थ राजभवन से निकल कर प्रमदवन में चली जाती है। वहाँ मगधराज्ञी के कहलाने पर वह विवाह-माला गूँथती है जिसमें अविधवाकरण ओषधि को ही गूँथती है सपत्नीमर्दन को नहीं। इस विवाह से व्यथित होकर शान्तिलाभार्थ वह सोने का उपक्रम करती है।)

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता।)

वासवदत्ता—विवाहमोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं। जाव दाणि भाअधेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि। (परिक्रम्य) अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो। जाव उवविसामि। (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ। ण खु अहं पाणाणि परित्तजामि। अय्यउत्तं पेक्खामि ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ। [विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुश्शाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि। अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। यावद् उपविशामि। धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योऽन्यविरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीति एतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।]

संस्कृत टीका—विवाहामोदसङ्कुले…विवाहस्य परिणयस्य आमोदः प्रहृष्टानन्दः तेन सङ्कुले व्याप्ते, अन्तःपुरचतुश्शाले…अन्तःपुरे शुद्धान्ते राज्ञीनां निवासस्थाने इति यावत् यत् चतुःशालं मञ्जवनं परस्पराभिमुखी-भिश्चतसृभिः शालाभिः युक्तं स्थानमिति यावत् तस्मिन्, पद्मावती—मगध-राजकुमारीं, परित्यज्य—त्यक्त्वा, इह—एकान्ते, प्रमदवनम्—क्रीडोद्यानम्, आगतास्मि—उपस्थितास्मि। यावत्—तावत्, इदानीम्—सम्प्रति, भागधेय-निर्वृत्तं—दुर्भाग्यसम्भवम् दुःखं—कष्टम्, विनोदयामि—अपनयामि। अहो!

—अहह !, अत्याहितम्—महाभीतिः सम्प्राप्ता । आर्यपुत्रोऽपि—स्वामी अपि, परकीयः—अन्यदीयः, संवृत्तः—सञ्जातः । यावद् उपविशामि । चक्रवाकवधूः—चक्रवाकी, खलु—निश्चयेन, धन्या—अभिनन्दनीया, या, अन्योऽन्यविरहिता—परस्परं वियुक्ता न जीवति—न प्राणान् धारयति । न खल्वहं—अहन्तु नैव, प्राणान्—असून्, परित्यजामि—मुञ्चामि । आर्यपुत्रं—स्वामिनं, पश्यामि—अवलोकयिष्यामि, इत्येतेन—आर्यपुत्रदर्शनप्रत्याशारूपेण, मनोरथेन—अभिलाषेण, (अहं) मन्दभागा—अल्पभाग्या, जीवामि—श्वसिमि ।

अनुवाद—(तदनन्तर सोचती हुई वासवदत्ता का प्रवेश ।)

वासवदत्ता—विवाह के आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण रनिवास के चौसाले में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ क्रीडोद्यान मे चली आई हूँ । अभी दुर्भाग्य से उपस्थित दुःख को तब तक कुछ शान्त करूँ । (घूम कर) हाय ! विपत्ति पड़ी । आर्यपुत्र भी पराये हो गये । तब तक बैठ जाती हूँ । (बैठकर) निःसन्देह चकवे की बहू (चकवी) धन्य है, जो एकदूसरे से अलग होकर नहीं जीती । मैं तो प्राण भी नहीं छोड़ती हूँ । आर्यपुत्र को देखूँगी, इसी अभिलाषा से मैं अभागिन जी रही हूँ ।

(Then enter Vasavadatta in meditation). Vasava.—Leaving padmavati in the quadrangle of internal apartments, astir with the marriage festivities, here have I come to the ladies' garden. Now then I shall supress the sorrow laid upon me by fate. (Walking about) Oh, alas, (how bad it is ?) Even the king should really belong to another. I shall sit down (sitting). Happy indeed is the female chakrawaka who does not live, if separated from her mate, but I do not leave my life, unfortunate as I am, I live in this hope that I can see my lord.

टिप्पणी—(१) विवाहामोदसंकुले—विवाह के आमोद-प्रमोद से व्याप्त । विवाहस्य आमोदः तेन सकुले षष्ठीगर्भित तृ० तत्पु० । (२) अन्तःपुरचतुश्शाले—जनानखाने की चौसही में । 'चतसृणा शालाना समाहारः इति चतुश्शालम्' इस विग्रह मे समाहार द्वन्द्व करने पर एकवद्भाव तथा नपुंसकलिंग हो जाता है । अन्तःपुरस्य चतुश्शालम्, षष्ठीतत्पुरुष । तस्मिन् अन्तःपुरचतुश्शाले । (३) प्रमदवनम्—वह उद्यान जिसमे राजा अपनी रानियों के साथ विहार करता है, क्रीडोद्यान, प्रमोदवन । 'स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरः । प्रमदाना वनम् इति प्रमदवनम् । यहाँ 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इस सूत्र से प्रमदा मे ह्रस्वता हुई । (४) परित्यज्य—छोड़कर । परि+त्यज्+ल्यप् । (५) भागधेय-

निर्वृत्तम्—दुर्भाग्य से प्राप्त। भागधेयम् में स्वार्थ मे धेय प्रत्यय; तस्मात् निर्वृत्तम्। यह विशेषण है 'दुःखम्' की विशेषता बतलाता है। (६) दुःखं विनोदयामि—दुःख हल्का करती हूँ। (७) अन्योन्यविरहिता—एक दूसरे से वियुक्त। (८) न जीवति—नही जीती है। अर्थात् चकवी चकवे से बिछुडने पर मृतप्राय हो जाती है। (९) यावत् उपविशामि—अच्छा बैठती हूँ। उप+विश्+लट् उ० पु० ए० व०। (१०) विनोदयामि यावत्, उपविशामि यावत्—यहाँ 'यावत्' के योग में 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ में लट् लकार हुए हैं। (११) पश्यामि—यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ मे लट् लकार हुआ। (१२) मनोरथेन—आशा से। हेतु में तृतीया हुई। वियोग में प्रिय-मिलन की आशा से ही प्राणियों का जीवन-धारण होता है। जैसा कि मेघदूत में आया है। 'आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि'।

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी)

चेटी—कहिं णु खु अय्या आवन्तिआ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो! इअं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिद-भद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उववि‌ट्ठा। जाव उवसप्पामि। (उपसृत्य) अय्ये! अवन्तिए! को कालो, तुमं अण्णेसामि। [क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका? अम्मो! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहार-प्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये! आवन्तिके! कः कालः, त्वामन्विष्यामि।]

संस्कृत टीका—क्व नु खलु गता—कुत्र हि याता, आर्या—पूज्या, आवन्तिका?—अवन्तिसमुत्पन्ना? अम्मो!—हर्षविस्मयद्योतकमव्ययमिदम्, इयम्—आवन्तिका, नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा—नीहारेण तुषारेण प्रतिहता ताडिता या चन्द्रलेखा शशिकला सा, इव—तद्वत्, चिन्ताशून्यहृदया—चिन्तया प्रियतमविरह-खिन्नेन हेतुना शून्यं कर्तव्यज्ञानरहितं हृदयं चित्तं यस्याः सा तथाभूता, अमण्डित-भद्रकम्—अमण्डितः असूषितश्चासौ भद्रकः मनोहरः तम्, वेषम्—स्वरूपम्, धारयन्ती—कुर्वन्ती, प्रियङ्गुशिलापट्टके—प्रियंगोः गन्धफल्याख्यलतायाः अधो-वर्तिनि शिलापट्टके पाषाणखण्डे, उपविष्टा—समासीना (अस्ति)। यावदुप-सर्पामि—तत्समीपं गच्छामि। उपसृत्य—निकटं गत्वा कथयतीति शेषः, आर्ये!

कः कलाः—कियान् समयः व्यतीत इति शेषः, त्वाम्—भवन्तीम्, अन्विष्यामि—भवत्याः अन्वेषणं करोमि।

अनुवाद—(तदनन्तर फूल लेकर दासी आती है।)

दासी—उज्जैन वाली आर्या कहाँ चली गईं? (घूम कर और देखकर) अहो! ये तो हिमाच्छादित चन्द्रकला की भाँति चिन्ता के मारे अपने आप में खोकर बिना शृङ्गार के भी सुन्दर वेश धारण किए हुए प्रियगु लता के नीचे पत्थर की चौकी पर बैठी हैं। अच्छा, समीप चलूँ। (समीप जाकर) श्रीमती आवन्तिका जी! मैं आपको कब से ढूँढ रही हूँ।

(Then, enter a maid with flowers). Maid—Where has the honourable Avantika gone? (turning about and seeing) oh this, (she is) sitting here on the stoneseat under the *priyangu* (*creeper*) with a heart vacant in meditation, clad in an unadorned but *chaste dress, like the moon's crescent, dimmed by mist*. Now I approch (approaching) Honourable Avantika, for how long a time should I search you?

टिप्पणी—(१) आर्या—पूज्या। (२) आवन्तिका—अवन्तिप्रदेश में उत्पन्न। अवन्त्यां भवा इत्यर्थे अवन्ति+ठञ् 'काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ' इति सूत्रेण, तस्य इकादेशे स्त्रीत्वाट्टाप्। (३) क्व नु खलु गता—कहाँ चली गई। (४) चिन्ता-शून्यहृदया—चिन्ता से शून्य हृदय वाली। चिन्तया शून्यं हृदयं यस्याः सा बहुव्रीहि। (५) नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा—हिमाच्छादित चन्द्रमा की कला के समान। नीहारेण प्रतिहता या चन्द्रलेखा सा इव, तद्वत्। (६) अमण्डितभद्रकम्—बिना सजाये ही सुन्दर लगने वाला, निसर्गसुन्दर। भद्र एव भद्रकः, तम्। भद्र+कः स्वार्थे। न मण्डितः अमण्डितः, अमण्डितश्चासौ भद्रकः अमण्डितभद्रक विशेषणो-भयपदकर्मधारय, तम्। यह 'वेषम्' का विशेषण है। (७) प्रियङ्गुशिलापट्टके—प्रियङ्गुनीचैः शिलापट्टकम् मध्यमपदलोपीसमासः तस्मिन्। प्रियंगुलता के पर्यायवाची शब्द ये हैं—'लतागोवन्दिनी गुन्द्रा प्रियगु फलिनी फली। विष्वक्सेना गन्धफली' इत्यमरः। इसको मैथिली में 'दहिगन' कहते हैं। इस लता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जहाँ उसे किसी सुन्दरी स्त्री ने स्पर्श किया कि वह फूलने लगती है। (८) उपविष्टा—बैठी हुई। उप+विश्+क्त (त) +टाप् (आ) निपातन् (९) यावदुपसर्पामि—अच्छा, समीप चलती हूँ। (१०) उपसृत्य—समीप जाकर। उप+सृ+ल्यप्। (११) अन्विष्यामि—खोज रही हूँ। अनु+इष्+लट्। उ० पु० ए० व०।

वासवदत्ता—किण्णिमित्तं ? (किन्निमित्तम् ?)

वासवदत्ता—किसलिए ?

Vasava.—What for ?

चेटी—अह्माअं भट्टिणी भणादि—महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या। [अस्माकं भट्टिनी भणति—महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या ।]

संस्कृत टीका—अस्माकं भट्टिनी—स्वामिनी दर्शकस्य अनभिषिक्ता राज्ञी इति यावत्, भणति—वदति (यत्), महाकुलप्रसूता—महति उच्चे कुले वंशे प्रसूता उत्पन्ना, स्निग्धा—स्नेहपूर्णा, निपुणा—दक्षा, इति—अस्माद्धेतोः, आर्या—भवती, इमां—गुम्फनीयां, कौतुकमालिकां—सौभाग्यकारकं मङ्गलमाल्यं, गुम्फतु—ग्रथ्नातु ।

दासी—हमारी स्वामिनी कह रही हैं कि आर्या (आप) उच्च कुल में उत्पन्न हुई हैं, स्नेह रखती हैं और निपुण हैं; इसलिए (आप ही) यह सोहाग की माला गूँथें ।

Maid—Our queen says : you are born in a noble family and are affectionate and skilled. Then honourable madam should, please, string this wedding garland.

टिप्पणी—(१) भट्टिनी—भट्टः राजा, सोऽस्ति अस्याः पतित्वेन इति भट्टिनी भट्ट+इनि—ङीप् । जिसके पति का राज्याभिषेक हो जाता है, उसे 'राज्ञी' 'देवी' नाम से सम्बोधित किया जाता है और रानियों को 'भट्टिनी' । 'देवी कृताभिषेकायामितरासु तु भट्टिनी' । इत्यमरः । (२) महाकुलप्रसूता—कुलीना, खानदानी । महच्च तत् कुलं महाकुलम्, तस्मिन् प्रसूता महाकुलप्रसूता । (३) स्निग्धा—स्नेहशीला । स्निह्+क्त (त) कर्त्तरि+टाप् (आ) । (४) निपुणा—दक्ष, कार्यकुशल, ये विशेषण वासवदत्ता के बड़ी कुशलता, प्रेम और शीघ्रता से माला गूँथने के द्योतक हैं। (५) कौतुकमालिका—मंगल माला । विवाह के समय हाथ में धारण किया हुआ सूत्र । कौतुकमयी मालिका । शाकपार्थिवादित्वात् समासः । (६) तावत्—यह अव्यय वाक्य को अलंकृत करने के लिए प्रयुक्त होता है । यहाँ प्रार्थना में लोट् लकार हुआ । (७) गुम्फतु—गूँथें । लोट् प्र० पु० ए० व० ।

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं ? (अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?)

टिप्पणी—(१) कस्मै—किसके लिए। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' अर्थात् कर्म के द्वारा जिसे कर्ता सन्तुष्ट करना चाहता है वह सम्प्रदान कहा जाता है।

वासवदत्ता—किसके लिए (मुझे माला) गूँथनी है ?

Vasava.—For whom am I to string it.

चेटी—अह्माअं भट्टिदारिआए। [अस्माकं भर्तृदारिकायै।]

दासी—हमारी राजकुमारी के लिए।

Maid—For our princess.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी। अहो! अकरुणा खु इस्सरा। [एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो! अकरुणाः खल्वीश्वराः।]

वासवदत्ता—(मन में) यह भी मुझे करना था। हाय! ईश्वर बड़े निर्दयी हैं।

Vasava.—(To herself) Oh, was it also to be done by me ? Cruel indeed are the Gods.

चेटी—अय्ये! मा दाणिं अण्ण चिन्तिअ। एसो जामादुओ मणिभूमीए ह्णाअदि। सिग्घं दाव गुह्मदु अय्या। [आर्ये! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा। एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति। शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या।]

दासी—देवी जी! इस समय दूसरी बात न सोचें। ये दुलहा जी मणिवेदिका पर स्नान कर रहे हैं। इसलिए आप शीघ्र गूँथ दें।

Maid—Pray think not now of anything but this, why in the Jewelled chamber, even now matrons anoint the *bridegroom* pray make haste.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं (प्रकाशम्) हला! किं दिट्ठो जामादुओ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम्। हला! किं दृष्टो जामाता?

वासवदत्ता—(मन में) दूसरी बात सोच नही सकती (प्रकट) सखी! क्या तुमने दुलहे को देखा है?

Vasava.—(To herself) How could I think of anything but this ? (aloud) Tell me have you seen the bridegroom.

चेटी—आम, दिठ्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ। [आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च।]

दासी—हाँ, राजकुमारी के स्नेह और अपने कौतूहल से देखा है।

Maid—Oh yes I saw him through affection for the princess and through our curiosity.

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

वासवदत्ता—दुलहा कैसा है?

Vasava.—How is he ?

चेटी—अय्ये! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो। [आर्ये! भणामि तावद्, नेदृशो दृष्टपूर्वः।]

दासी—देवी जी! मैं तो कहती हूँ कि ऐसा दुलहा कभी देखा ही नहीं था।

Maid—Madam, I do say, never such a one was seen before.

वासवदत्ता—हला! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ? [हला! भण भण, किं दर्शनीयः?]

वासवदत्ता—सखी! कहो कहो, क्या देखने योग्य हैं?

Vasava.—Friend! tell me is he charming ?

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो कामदेवो त्ति। [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति।]

दासी—(दुलहा) धनुष और बाण से रहित कामदेव कहा जा सकता है।

Maid—Why you might call him the god of love, without his bow and arrows.

वासवदत्ता—होदु एत्तअं। [भवत्वेतावत्।]

वासवदत्ता—अच्छा रहने दो।

Vasava.—Enough of this. No more.

चेटी—किण्णिमित्तं वारेसि? [किन्निमित्तं वारयसि?]

दासी—क्यों मना कर रही हैं ।

Maid—Why do you forbid ?

वासवदत्ता—अजुत्तं परपुरुससङ्कित्तणं सोदुं । [अयुक्तं परपुरुष-संकीर्तनं श्रोतुम् ।

वासवदत्ता—पराये पुरुष का गुणानुवाद सुनना उचित नही है ।

Vasava.—*It is not proper to listen to the praises of one who is the husband of another.*

चेटी—तेण हि गुम्हदु अय्या सिग्घं । [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् ।]

दासी—अच्छा, तो आप शीघ्र माला गूँथ दीजिये ।

Maid—Then, please, your ladyship should soon put together (*the flowers in a wreath.*)

वासवदत्ता—इअं गुम्हामि । आणेहि दाव । [इयं गुम्फामि । आनय तावत् ।]

वासवदत्ता—यह गूँथती हूँ । लाओ तो ।

Vasava.—I will, Bring me the flowers.

चेटी—गह्णदु अय्या । [गृह्णात्वार्या ।]

दासी—लीजिये ।

Maid—There take them lady.

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? इदं तावदौषधं किं नाम ?]

वासवदत्ता—(हटा कर और देखकर) इस औषधि का क्या नाम है ?

Vasava.—(Putting away same flowers and closely observing) what here is this ?

चेटी—अविहवाकरणं णाम । [अविधवाकरणं नाम ।]

दासी—सुहागिन बनाने वाली ।

Maid—They call it "husband's life."

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुम्हिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ । (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च । इदं तावदौषधं किं नाम ?]

वासवदत्ता—(मन में) अपने लिए और पद्मावती के लिए इस ओषधि को अनेक बार गूँथना चाहिए। (प्रकट) इस ओषधि का क्या नाम है ?

Vasava.—(To herself) of these I must weave many in the garland, both for myself and Padmavati, (aloud) what again is the name of this plant ?

चेटी—सवित्तमद्दणंणाम। [सपत्नीमर्दनं नाम।]

दासी—सौत का मर्दन करने वाली।

Maid—The destroyer of a co-wife.

वासवदत्ता—इदं ण गुम्हिदव्वं। [इदं न गुम्फितव्यम्।]

वासवदत्ता—इसको नहीं गूँथना चाहिए।

Vasava.—This should not be wreathed.

चेटी—कीस ? [कस्मात् ?]

दासी—क्यों ?

Maid—And why not ?

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति।]

वासवदत्ता—उनकी स्त्री तो मर चुकी है। इसलिए (इसका गूँथना बेकार है।)

Vasava.—His wife is dead there is no need for it.

(प्रविश्यापरा) चेटी—तुवरदु तुवरदु अय्या। एसो जामादुओ अविहव्याहि अब्भन्तरचउस्सालं पवेसीअदि। [त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते।]

(दूसरी दासी का प्रवेश) दासी—देवी जी! शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता। ये दुलहा सुहागिनों द्वारा कोहबर में लाये जा रहे हैं।

(Enter another Maid-servant). *2nd Maid*—*Your ladyship should hurry up; hurry up please. Here the bridegroom is being ushered into the innermost quadrangle by married ladies whose husbands are alive.*

वासवदत्ता—अइ! वदामि, गह्ण एदं। [अयि! वदामि, गृहाणैतत्]

वासवदत्ता—अरी! कहती हूँ, इसे लो।

Vasava.—Oh, I say, take this.

चेटी—सोहणं। अय्ये ! गच्छामि दाव अहं। [शोभनम् आर्ये ! गच्छामि तावदहम् !] (उभे निष्क्रान्ते)

दासी—बहुत सुन्दर। देवी ! अब मैं जाती हूँ। (दोनों का प्रस्थान)

Maid—Well done, Your ladyship. I shall now go. (both retire.)

वासवदत्ता—गदा एसा। अहो ! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो। अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि। [गतैषा। अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। अविदा ? शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे।] (निष्क्रान्ता) इति तृतीयोऽङ्कः।

संस्कृत टीका—एषा—चेटी, गता—याता। अहो ! —अहह ! अत्याहितम्—महाभीतिः, (उपस्थिता)। आर्यपुत्रोऽपि—स्वामी अपि, परकीयः—अन्यदीयः, संवृत्त—सञ्जातः। अविदा !—विषादार्थकमव्ययमिदम्। शय्यायां—शयनीये, मम—स्वकीयं, दुःख—कष्टम्, विनोदयामि—अपनेष्यामि, यदि—चेत्, निद्रां—स्वप्न, लभे—प्राप्स्यामि।

वासवदत्ता—वह चली गई। हाय ! अनर्थ हुआ ! आर्यपुत्र भी पराये हो गए। ओह ! यदि नींद आ जाय तो सेज पर अपना कष्ट निवारण कर लूं। (वासवदत्ता का प्रस्थान) तीसरा अंक समाप्त ॥

Vasava.—She is gone. Oh alas, Even the king has become a strangar (to me) now Oh (help) I shall remove my pain in my bed, If I get sleep (Exit, Vasavadatta) Here ends the third Act.

शोचे धातु के लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का यह रूप है। (५) आम्—हाँ। यह स्वीकृतिसूचक अव्यय है। (६) कौतूहलेन—कुतूहलता के कारण—'हेतौ तृतीया' से तृतीया हुई है। 'रम्यवस्तुसमालोके लोलता स्यात् कुतूहलम्।' (७) कीदृशः—कैसा। (८) दृष्टपूर्वः—पूर्वं दृष्टः इति दृष्टपूर्वः मयूरव्यंसका-दित्वात् समासः। (९) सक्कं भणिदु·····इसके स्थान में 'सअं खु भअव सरचावहीणो कामदेवो त्ति' ऐसा पाठभेद मिलता है। इसकी संस्कृतच्छाया होगी—'स्वयं खलु भगवाञ्छरचापहीनः कामदेव इति' शरश्च चाप च शरचापे द्वन्द्व समास ताभ्यां हीनः तृतीया तत्पुरुष। (१०) सपत्नीमर्दनम्—सौत को नष्ट करने वाला। समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी, 'नित्यं सपत्न्यादिषु' इत्यनेन समानस्य स आदेशः, 'विभाषा सपूर्वस्य' इत्यनेन ङीप् नकारादेशश्च। मर्द्यते अनेन इति मर्दनम्√मृद्+णिच्+ल्युट् करणे, तस्य अनादेशः, सपत्न्याः मर्दनम् सपत्नीमर्दनम्। (११) उपरता—मृता। उप√रम्+क्त+टाप्। तत्–यह हेत्वर्थक अव्यय है। (१३) निष्प्रयोजनम्—निर्गत प्रयोजन यस्मात् तत् निष्प्रयोजनम् प्रादि बहुव्रीहि समास। (१४) त्वरताम् त्वरताम्—इस प्रकार की द्विरुक्ति 'सम्भ्रमेण प्रवृत्तो यथेष्टम् अनेकधा प्रयोगो न्यायसिद्धः' के अनुसार होती है। (१५) अविधवाभिः—सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा। विगतो धवो यस्याः सा विधवा, न विधवा इति अविधवा। विधवा स्त्रियों का मांगलिक कार्यों में सम्मिलित होना वर्जित है। (१६) प्रवेश्यते—प्र√विश्+णिच्+लट् कर्मणि। लाये जा रहे हैं। (१७) अविदा—यह विषादार्थक अव्यय है। इसका प्रयोग प्राकृत में पाया जाता है। वहाँ यह विस्मय तथा शोक के अर्थ में प्रयुक्त होता है। (१८) विनोदयामि, लभे—यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से भविष्यत् काल के अर्थ में लट् लकार हुए हैं।

———

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(विवाहोपरान्त पद्मावती एक दिन वासवदत्ता के साथ प्रमदवन में जाती है। उसी समय महाराज उदयन भी वसन्तक के साथ वहाँ आते हैं। पद्मावती और वासवदत्ता का प्रसंग छिड़ने पर राजा वासवदत्ता के गुणों का स्मरण कर के मूर्च्छित हो जाता है तथा उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। अवसर पाकर पद्मावती वहाँ सहसा प्रविष्ट होकर राजा की आँखें धोती है। प्रणय संकट से बचाने के लिए विदूषक मगधराज के सम्मानार्थ आयोजित उत्सव में सम्मिलित होने का स्मरण राजा को दिलाता है। उसे सुनकर वह तत्काल वहाँ से प्रस्थान कर देता है।)

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो। भो! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उम्मज्जिस्सामो त्ति। इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ण्हाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि, जह वाद-सोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि। भो! सुहं णामअपरि-भूदं अकल्लवत्तं च।

[भोः! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाह-मङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः! को नामैतज्जानाति—तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्याम इति। इदानीं प्रासादेषु उष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृति-मधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इति अनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे, यथा वातशोणितमभितः इव वर्तते इति पश्यामि। भोः सुखं नामाप-रिभूतमकल्यवर्तं च।]

संस्कृत टीका—भोः—सम्बोधनात्मकमव्ययमिदम्, दिष्ट्या—भाग्येन, तत्रभवतः—माननीयस्य, वत्सराजस्य—वत्सदेशाधिपतेः उदयनस्येति यावत्, अभिमतविवाहमङ्गलरमणीयः—अभिप्रेतम् अभीप्सितम् यद् विवाहमङ्गलम् परिणयोत्सवः, तेन रमणीयः आह्लादकरः, कालः—समयः, दृष्टः—अवलोकितः अस्माभिरिति शेषः। को नाम एतत् जानाति—कः इदम् चिन्तितवान् न कोऽपीत्यर्थः, इति—तत्, तादृशे—तथाविधे भयानके, अनर्थसलिलावर्ते—अनर्थः राज्यापहरणादिलक्षण महत्कष्ट तद्रूपो यः सलिलावर्तः जलभ्रमिः तस्मिन्, प्रक्षिप्ताः—निपातिताः, वयम्—उदयनसहिताः सर्वे राजाश्रिता जनाः, पुनः—भूयः, उन्मङ्क्ष्यामः—उन्मग्नाः भविष्यामः ततो वहिर्भविष्यामः इति यावत्। इदानीम्—सम्प्रति, प्रासादेषु—राजभवनेषु, उष्यते—निवासः क्रियते, अन्तःपुरदीर्घिकासु—अन्तःपुरस्य शुद्धान्तस्य दीर्घिकासु वापीषु, स्नायते—स्नानं क्रियते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि—प्रकृत्या स्वभावेन मधुराणि मिष्टानि च तानि सुकुमाराणि कोमलानि, मोदकखाद्यानि—मोदकाः लड्डुकाः तद्रूपाणि खाद्यानि भोज्यपदार्थाः, खाद्यन्ते—भक्ष्यन्ते, इति, अस्मात् कारणात्, अनप्सरस्संवासः—नास्ति अप्सरसां स्वर्गवेश्यानां संवासः सहवासः यस्मिन् तथाविधः, उत्तरकुरुवासः—उत्तराः कुरवो नाम देवभूमयः तत्र वासः निवासः, मया—विदूषकेण, अनुभूयते—उपभुज्यते। एकः—एकलः, खलु—निश्चयेन, महान्—विशालः, दोषः—विकारः (यत्) मम आहारः—भोजनम्, सुष्ठु—सम्यक्, न—नहि, परिणमति—परिपचति, सुप्रच्छदनाया—शोभनास्तरणयुक्तायां, शय्यायाम्—शयनीये, निद्रां—स्वापं, न लभे—न प्राप्नोमि, यथा—येन हेतुना, वातशोणितम्—वातरक्तनामा रोगः अभित इव—सम्पूर्णशरीरस्थितिमिव, वर्तते—विद्यते, इति—एवम्, पश्यामि—जानामि। आमयपरिभूतम्—आमयेन व्याधिना परिभूतम् आक्रान्तम्, (तथा) अकल्यवर्तम्—नास्ति कल्यवर्तः प्रातर्भोजनम् यस्मिन् तत् तथाभूतं सुखं, न—नहि सुखं वक्तुं शक्यते इति यावत्। (अयं भावः—पद्मावत्या सह उदयनस्य विवाहे जाते तत्सुहृद् विदूषकः आनन्दोल्लासं प्रकटयन् कथयति—सौभाग्येन राज्ञः उदयनस्य विवाहोत्सवस्य शुभसमयः अस्माभिः साक्षात्कृतः। भाग्यवशादेव वयं राज्यापहरणवासवदत्तादाहादिरूपात् जलावर्ताद् बहिरभवाम। इदानीमहम् प्रासादेषु निवसामि, अन्तःपुरस्य वापीषु स्नानं करोमि, सुस्वादून् मोदकान् खादामि। एतावता अन्तरा अप्सरस्संवासं सहवासं साक्षात् स्वर्गसुखमहमनुभवामि। किन्तु एकः अत्र दोषो विद्यते यत् मम भोजनं सुष्ठु न पचति। तेन कारणेन

सुकोमलायामपि शय्यायां मम निद्रा न समायाति, प्रत्युत वातरक्तरोगः आक्रामति। हन्त ! रोगाक्रान्तस्य प्रातराशवञ्चितस्य च कुतः सुखम् ?) ।

(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश।) विदूषक—(हर्षपूर्वक), अजी ! भाग्य से हमने वत्सराज उदयन के मनचाहे विवाहोत्सव का आनन्दमय समय देख लिया। आह ! किसको मालूम था कि वैसे अनर्थ (राज्यापहरण और वासवदत्तामरण) रूपी जल के भँवर में डाले हुए हम लोग उससे निकल आएँगे। इस समय तो मैं राजमहल में रहता हूँ, रनवास की बावलियों में नहाता हूँ और स्वभावतः मधुर तथा मुलायम लड्डू आदि पदार्थों को खाता हूँ। इस तरह मैं (केवल) अप्सराओं के सहवास से रहित स्वर्ग का सुख लूट रहा हूँ। हाँ, एक बड़ा भारी दोष है कि मुझे खाना ठीक से हजम नहीं होता, (जिस कारण) अच्छे बिछौने वाली शय्या पर भी नींद नहीं आती। मालूम पड़ता है कि वातरक्त के रोग से मैं बिलकुल आक्रान्त हो गया हूँ। अजी ! वह सुख सुख नहीं माना जाता, जो रोग से आक्रान्त हो और जिसमें कलेवा न मिले।

(Enter Vidushaka) Vidushaka:—(joyfully) oh, fortunately the happy days of the desired auspicious marriage of his honour, the king of Vatsas are seen. (i. e. have arrived) Oh who knew that after being thrown into that whirlpool of the water of calamity, we could have risen up again ? Now we can live in palaces, can bathe in the oblong wells of the harem fand eat eatables like sweetmeat naturally tasteful and delicious; thus I am enjoying our stay in Uttara Kuru country except for the company of Apsarases. There is (however) one great defect. My food does not get properly digested. I do not get sleep on a bed with a fine coverlet. I see acute gout cn all sides, as it were, oh, there can be no pleasure in bad health without a morning meal (or breakfast).

टिप्पणी—(१) विदूषकः—यह हास्यप्रिय पात्र होता है। अपने हाव-भाव कार्य और व्यवहार आदि से दर्शकों को हँसाना है। इसका लक्षण है—'कुसुमवसन्ताद्यभिधः (कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः।। (सा० दर्पण ३-४२)। 'विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः।' (सुधाकर) (२) अभिप्रेतविवाहमंगलरमणीयः—मनचाहे विवाह के कारण रमणीय। अभिप्रेतं विवाहमङ्गलं (कर्मधारय) तेन रमणीयः तृ० तत्पु०। अपहृत राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए यह विवाह अभिप्रेत था। (३) जानाति—यह'

भूतकाल के अर्थ में लट् लकार हुआ है। (४) आवर्त—पानी का भँवर। 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः। (५) अनर्थसलिलावर्त्ते—अनर्थरूपी जल के भँवर में। सलिलस्य आवर्त्तः (प० तत्पु०) अनर्थ एव सलिलावर्त्तः तस्मिन्। (मयूरव्यंसकादित्वात् रूपक समासः)। (६) प्रक्षिप्ताः—फेंके हुए। प्र+क्षिप्+क्त (त)। (७) उन्मङ्क्ष्यामः—इसमें 'अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि' इस सूत्र से असंभावना के अर्थ मे लृट् लकार हुआ है। उद्+मस्ज्+लृट्। यहाँ लृट् लकार का प्रयोग असम्भावना के अर्थ मे हुआ है। उ० पु० बहु० व०। (८) प्रासादेषु—राजमहलों में। 'हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम्' इत्यमरः। (९) उष्यते—निवास करता हूँ। वस् निवासे धातु से कर्म में लट् लकार, यक् और किस्वात् सम्प्रसारण करने पर इसकी सिद्धि होती है। (१०) दीर्घिकासु—बावलियों में। 'वापी तु दीर्घिका' इत्यमरः। (११) प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि—मधुराणि च तानि सुकुमाराणि विशेषणोभयपदकर्मधारय, प्रकृत्या मधुरसुकुमाराणि तृतीया तत्पुरुष। (१२) मोदकखाद्यानि—लड्डू आदि मिठाइयाँ। मोदकरूपाणि खाद्यानि (कर्मधारय)। (१३) अनप्सरस्संवासः—अप्सराओं से रहित निवास। अप्सरसां सवासः (प० तत्पु०) अविद्यमानः अप्सरस्संवासः यस्मिन् सः बहुव्रीहि। (१४) उत्तरकुरुवासः—उत्तरकुरु में रहना। उत्तरकुरु सुमेरु पर्वत के उत्तर में है, जो शाश्वत सौन्दर्य और आनन्द का स्थान माना जाता है। इसको देवभूमि कहते हैं, जहाँ समस्त सुखों की अधिकता है और अप्सरायें निवास करती हैं। कतिपय विद्वानों के मतानुसार उत्तरकुरु हिमालय प्रदेश के उत्तर मे (काश्मीर) में अवस्थित है। (१५) परिणमति—परि+नम्+लट् ति प्र० पु० ए० व०। पचता है। (१६) सुप्रच्छदनायाम्—सुन्दर बिछौने वाली। प्रकर्षेण छद्यते आस्तीर्यते अनेन इति प्रच्छदनम्, प्र√छद्+ल्युट् (करणे)—अन। सु शोभनम् प्रच्छदनम् यस्याम्, सा सुप्रच्छदना, तस्याम्। (१७) वातशोणितम्—वात व्याधि, गठिया। वातेन संसक्तम् शोणितम् इति वातशोणितम्, मध्यमपदलोपी समास। (१८) सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च—इसका भाव यह है कि रोग के वशीभूत होना और कलेवा न कर सकना सुख नहीं है; क्योंकि रोगी पीड़ा से कराहता रहता है। उसके विहार और भोजन बंद हो जाते हैं। नींद नष्ट हो जाती है। अतएव इस अवस्था में सुख असंभव है। (१९) कल्यवर्त—कलेवा, सवेरे का हलका भोजन।

(ततः प्रविशति चेटी)—चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ?

(परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो ! एसो अय्यवसन्तओ। (उपगम्य) अय्य ! वसन्तअ ! को कालो, तुमं अण्णेसामि ! [कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य ! वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

(तदनन्तर दासी का प्रवेश) दासी—आर्य वसन्तक कहाँ गए ? (घूमकर और देखकर) अरे ! यही तो आर्य वसन्तक हैं। (समीप जाकर) वसन्तक महोदय ! कल से मैं आपको ढूँढ़ रही हूँ।

(Then enter a maid) Maid—(Turns about and looking) where has the revered Vasantaka gone ? Oh ! here is revered Vasantaka (Approaching) Oh ! revered Vasantaka how long am I searching you ?

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किंणिमित्तं भद्दे ! मंअण्णेससि ? [किन्निमित्तं भद्रे ! मामन्विष्यसि ?]

विदूषक—(देखकर) देवी ! क्यों मुझे ढूँढ़ रही हो ?

Vidushaka—(Looking) good girl why are you searching me ?

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्णादो जामादुओ त्ति । [अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति ।]

दासी—हमारी मालकिन पूछती हैं कि दुलहा जी नहा चुके।

Maid—Our queen asks if the bride-groom has bathed.

विदूषकः—किं णिमित्तं भोदि ! पुच्छदि ! [किन्निमित्तं भवति ! पृच्छति ?]

विदूषक—देवी ! किसलिए पूछ रही हैं ?

Vidushaka—Why does her ladyship enquire ?

चेटी—किमण्णं ! सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति। [किमन्यत् ! सुमनोवर्णकमानयामीति ।]

विदूषक—महाराज स्नान कर चुके हैं। आप सब (चीजें) ले आइए सिवा भोजन के।

Vidushaka—The bath is finished. Let her Mojesty bring anything she pleases, barring food.

चेटी—किणिमित्तं वारेसि भोअणं ? [किन्निमित्तं वारयसि भोजनम्?]

दासी—भोजन के लिए क्यों मना कर रहे हैं ?

Maid—Why do you bar food ?

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो। [अधन्यस्य मक कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

विदूषक—मुझ अभागे के पेट में ऐसा उलट-फेर हो गया है जैसा कि कोयल की आँख में हुआ करता है।

Vidushaka—Wretehed that I am, there is a twisting in my inwards like the surviving of a thousand cuckoo's eye.

चेटी—ईदिसो एव्व होहि। [ईदृश एव भव।]

दासी—आप ऐसे ही हों।

Maid—Ever be it thus with you.

विदूषकः—गच्छदु भोदी ! जाव अहं वि तत्तहोदी सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।] (निष्क्रान्तौ) (प्रवेशकः)

विदूषक—तुम जाओ। अब मैं भी महाराज के पास जाता हूँ। (दोनों का प्रस्थान)]

Vidushaka—You may go madam, In the meantime I shall also go to his honour. (Both retire) (End of interlude)

टिप्पणी—(१) वसन्तक—यह उदयन के मित्र विदूषक का नाम है। (२) किन्निमित्तम्—यह क्रियाविशेषण है। किंनिमित्तमस्यां क्रियायाम् इति किन्निमित्तम्। (३) भद्रे !—कल्याणी ! भद्र=कल्याण। स्वःश्रेयस शिवं भद्र कल्याणं मंगलं शुभम्' इत्यमरः। भद्रम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे भद्र+अच् अर्शादित्वात्, ततः स्त्रियां टाप्=तत्सम्बुद्धौ भद्रे इति। (४) अपि—यहाँ यह शब्द प्रश्नवाची अव्यय है। 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशकासम्भावनास्वपि' इत्यमरः।

(५) स्नातः—√स्ना+क्त (त) 'गत्यर्थाकर्मक'—इत्यादिना सूत्रेण कर्तरि। (६) *सुमनोवर्णकम्—पुष्प या उपलक्षक मानने से पुष्पमाल्य तथा चन्दन या* अगराग। सुमनसश्च वर्णकं च इत्यनयोः समाहारः सुमनोवर्णकम्, समाहारद्वन्द्वेन नपुंसकत्वम् एकत्वं च। 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पम्' इत्यमरः। (७) आनयामि—आङ्+नी+लट् उ० पु० ए० व०। यहाँ विध्यर्थ में लट् लकार हुआ है अर्थात् 'आनयेयम्' की जगह इसका प्रयोग हुआ है। (८) अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः—भाव यह है कि 'जिस प्रकार कोयल की आँखें ऊपर-नीचे घूमती रहती हैं, उसी प्रकार मुझ अभागे का पेट घूम रहा है अर्थात् गड़गड़ा रहा है, जिससे मैं भोजन करने में असमर्थ हूँ। अतएव तुम भोजन न लाना।' यद्यपि आँखें घूमती हैं कौए की, इसलिए शास्त्रों में 'काकाक्षिगोलकन्याय' प्रसिद्ध है किन्तु यहाँ विदूषक ने भ्रम से कौए की जगह कोयल का नाम ले लिया है, ऐसा कह सकते हैं। अक्ष्णोः परिवर्तः अक्षिपरिवर्तः। परि √वृत्+ घञ् (अ)। भवती—√भा+डवतु—ङीप्।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च)

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा ? [किन्निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

(तदनन्तर परिजन समेत पद्मावती और मालव-निवासिनी के वेष में वासवदत्ता का प्रवेश।)

दासी—राजकुमारी जी *आनन्दबाग में किसलिए आई हैं ?*

(Then enter with retinue Padmavati and vasavadatta in the garb of Avantika.)

Maid—Why has the princes come to the lady's garden.

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति। [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति।]

पद्मावती—सखी ! मैं अभी देख रही हूँ कि हरसिंगार के वे गुच्छे फूले हैं या नहीं।

Padmavati—Oh I I have just come to see if the shephalika plants have blossomed.

चेटी—भट्टिदारिए! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोत्तिअलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं [भर्तृदारिके! तानि कुसुमितानि नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचितानि कुसुमैः ।]

दासी—राजकुमारी जी! वे तो फूल कर मूँगों से छिपी हुई मोती की लड़ियों के समान पुष्पों से लद गये हैं।

Maid—They have indeed blossomed. They are covered with flowers like pearl-pendants interpersed with coral.

पद्मावती—हला! जदि इव्वं, किं दाणिं विलम्बेसि? [हला! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे?]

पद्मावती—सखी! यदि ऐसा है तो फिर क्यों अब विलम्ब कर रही हो?

Padmavati—Oh! if it is so why are you delaying (to show then to me.)

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ। जाव अहं वि कुसुमावचअं करेमि। [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भवती। यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि।]

दासी—तो कुछ देर इस शिला-खंड पर आप बैठ जायें। तब तक मैं भी फूलों को बटोर लेती हूँ।

Maid—Then may the princess take a seat on the stone chair until I myself gather flowers.

पद्मावती अय्ये! किं एत्थ उपविसामो? [आर्ये! किमत्रोपविशावः?]

पद्मावती—आर्ये! क्या हम दोनों यहाँ बैठें।

Padmavati—Revered lady! should we both sit here?

वासवदत्ता—एव्वं होदु। [एवं भवतु।] (उभे उपविशतः)

वासवदत्ता—ऐसा ही हो (दोनों बैठ जाती हैं)।

Vasava.—Be it so (Both sit)

टिप्पणी—(१) शेफालिकागुल्मका—हरसिंगार के पौधे। शेफालिकाख्याः गुल्मकाः अथवा शेफालिकायाः गुल्मकाः इति शेफालिकागुल्मकाः। गुल्मा एव गुल्मकाः, स्वार्थे कः। पेड़ की जड़ से लेकर शाखा तक का भाग प्रकाण्ड (तना) कहलाता है और बिना तने का पौधा जिसमें जड़ से ही कई शाखायें निकलती हैं

हैं गुल्म कहलाता है। अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरोः।' 'अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ' इत्यमरः। (२) कुसुमिता—पुष्पित, खिले हुए। कुसुमानि सञ्जातानि येषां तादृशाः, कुसुम+इतच् 'तदस्य सञ्जातम्' इति सूत्रेण। (३) इति—इसको 'पश्यामि' क्रियापद से पूर्व जोड़ना चाहिए, ताकि पूर्व वाक्य 'पश्यामि' का कर्म बन जाय। (४) नाम—यह अव्यय यहाँ निश्चयार्थक है। (५) प्रवालान्तरितैः—मूँगों से ढके हुए या खचित। प्रवालैः अन्तरितानि इति प्रवालान्तरितानि, तैः। (६) मौक्तिकलम्बकैः—मुक्ता एव मौक्तिकानि, तेषां लम्बकानि= ललन्तिकाः, तैः। लम्बक—नाभिपर्यन्त लटकने वाला सामान्य हार। (७) आचिताः—व्याप्त, परिपूर्ण। आङ्+चि+क्त (त)। कर्मणि (८) शिलापट्टके—बैठने के लिये शिला-खड, पत्थर की चौकी। (९) मुहूर्तकम्—क्षणमात्र।

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अंजलिं। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका। अर्द्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम्।]

दासी—(वैसा करके) राजकुमारी जी! देखिये, देखिये। मैनशिल के समान (अरुण) मूल भाग वाले हर्सिंगार के पुष्पों से मेरी अंजलि भर गई।

Maid—(Doing so) Look, look my lady, both my hands are filled with scarlet blossoms of Shephalika lika flakes of natural vermilion.

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो! विइत्तदा कुसुमाणं। पेक्खदु पेक्खदु अय्या। [अहो! विचित्रता कुसुमानाम्। पश्यतु पश्यत्वार्या।]

पद्मावती——अहा! कैसे रङ्गबिरंगे फूल हैं। देवी जी देखिये।

Padmavati—Oh what delicious flowers look, lady, look.

वासवदत्ता—अहो दस्सणीअदा कुसुमाणं [अहो! दर्शनीयता कुसुमानाम्।]

वासवदत्ता—अहा! फूलों की सुन्दरता कैसी है।

Vasava.—How lovely.

चेटी—भट्टिदारिए! किं भूयो अवइणुस्सं? [भर्तृदारिके! किं भूयोऽवचेष्यामि?]

दासी—राजकुमारी जी ! क्या और चुना जाय ?

Maid—Princess, shall I gather more ?

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

पद्मावती—सखी ! न, न, अब मत चुनो ।

Padmavati—No, no, gather no more.

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किन्निमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता—सखी ! किसलिए मना कर रही हो ?

Vasava.—Friend, why do you stop her ?

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिदा भवेअं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

पद्मावती—यदि आर्यपुत्र यहाँ आकर फूलों की यह बहार देखेंगे तो मेरा सम्मान होगा ।

Padmavati—Because I hope my lord will honour me by visiting this grove, and seeing all its wealth of blossom.

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता । [हला ! प्रियस्ते भर्ता ।]

वासवदत्ता—सखी ! तुम्हें स्वामी प्रिय हैं ।

Vasava.—Do you love your lord ?

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, [अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

पद्मावती—आर्ये ! यह तो मैं नहीं जानती, पर उनसे अलग होने पर व्याकुल हो जाती हूँ ।

Padmavati—I do not know, and yet my heart full with longing for him when he is not near.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खरं खु अहं करेमि । इअं वि णाम एव्वं मन्तेदि । [दुष्करं खल्वहं करोमि । इयमपि नामैवं मन्त्रयते ।]

वासवदत्ता—(मन में) मैं बड़ा कठिन काम कर रही हूँ। यह भी ऐसा कह रही है।

Vasava.—(aside) How great the burden that is laid en me, when even she already speaks like this.

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति। [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं—प्रियो मे भर्तेति।]

दासी—कुलीनता के अनुरूप ही राजकुमारी ने कहा कि पतिदेव मुझे प्रिय हैं।

Maid—Courteously indeed did the princess say "I love the lord."

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो। [एकः खलु मे सन्देहः।]

पद्मावती—मुझे एक सन्देह है।

Padmavati—Only one thing I suspect.

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

वासवदत्ता—क्या क्या ?

Vasava.—What, what is it ?

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति? [यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति।]

पद्मावती—आर्यपुत्र जैसे मेरे प्रिय हैं उसी तरह आर्या वासवदत्ता के भी (थे क्या) ?

Padmavati—That the lord belongs to me (i.e. loves me) only equally with Vasavadatta.

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं। [अतोऽप्यधिकम्।]

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

Vasava.—Even more than that.

पद्मावती—कहं तुवं आणासि ? [कथं त्वं जानासि ?]

पद्मावती—कैसे तुम जानती हो ?

Padmavati—How do you know ?

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदारो। एव्वं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः

समुदाचार: एवं तावद् भणिष्यामि । यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजनं न परित्यजति ।]

वासवदत्ता--(मन में) उंह ! आर्यपुत्र के पक्षपात से मैंने शिष्टाचार का उल्लघन कर दिया । अच्छा तो इस प्रकार कहूँ। (प्रकट) यदि (वासवदत्ता का) प्रेम थोड़ा होता तो वह अपने परिवार को नहीं छोड़ती ।

Vasava.--(To herself) Through my love towards the lord due limits have been overstepped. I shall thus say now (loudly). If her love was less, she would not leave her own people.

पद्मावती--होदवं [भवितव्यम् ।]

पद्मावती--हो सकता है।

Padmavati--May be.

चेटी--भट्टिदारिए ! साहु भट्टारं भणाहि--अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण--अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

दासी--राजकुमारी जी ! आप पतिदेव से अच्छी तरह कहें कि मैं भी वीणा सीखूँगी ।

Maid--Princess, well tell the lord. "I too shall learn (to play on the flute).

पद्मावती--उत्तो मये अय्यउत्तो [उक्तो मयार्यपुत्रः ।]

पद्मावती--मैंने तो आर्यपुत्र से कहा था ।

Padmavati--I have told my lord.

वासवदत्ता--तदो किं भणिदं ? [ततः किं भणितम् ?]

वासवदत्ता--तब (उन्होंने) क्या कहा ?

Vasava.--Then what did he say ?

पद्मावती--अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णीओ संवुत्तो । [अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निःश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

पद्मावती--बिना कुछ कहे ही लम्बी साँस लेकर चुप हो गये ।

Padmavati--He said no word, but, sighing deeply, stood silent.

वासवदत्ता--तदो तुवं किम तक्केसि? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

वासवदत्ता—तो इससे तुम्हारा क्या अनुमान है ?

Vasava.—And what do you derive from this ?

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति । [तर्कयाम्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

पद्मावती—मेरा अनुमान है कि आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करके उदारता के कारण मेरे सामने नहीं रोए ।

Padmavati—I inferred that remembering the virtues of the revered Vasavadatta, he did not weep before me through courtesy.

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

वासवदत्ता (मन में) यदि यह सत्य है, मैं कृतार्थ हो गई ।

Vasava.—(To herself) happy indeed am I, if this be true.

टिप्पणी—(१) तथा कृत्वा—फूलों को चुनकर अथवा फूलों से अञ्जलि भर कर। (२) अर्धमनःशिलापट्टकः—जिनके आधे भाग मैनसिल के टुकड़ों के समान लाल रङ्ग के हैं। (३) मनःशिला—पर्वत में उत्पन्न होने वाली एक लाल रङ्ग की धातु, मैनसिल। 'धातुर्मनः शिलाद्रेः' इत्यमरः। अर्धम्=एकदेशः मनःशिलापट्टो येषां, तै.। मनःशब्दाख्या शिला मनःशिला मध्यमपदलोपी समास। मनःशिलायाः पट्टः षष्ठी तत्पुरुष। (४) विचित्रता—अनेकरूपता। प्रायः सभी फूल एक रंग के होते हैं, किन्तु शेफालिका लालिमा तथा श्वेतता से युक्त होने के कारण विचित्र या विस्मयकारक है। (५) दर्शनीयता—सुन्दरता। दृश्+अनीयर् कर्मणि दर्शनीयः तस्य भावः दर्शनीयता दर्शनीय+तल्। (६) अवचेष्यामि-चुनूँ। यहाँ विध्यर्थ में लृट् लकार हुआ है। अव+चि+लृट् (स्यामि) उ० पु० ए० व०। (७) मा मा—यह द्विरुच्चारण निषेध की दृढ़ता के लिए किया गया है। (८) अवचित्य—यहाँ 'मा' के योग में क्त्वा प्रत्यय अपाणिनीय है, किन्तु 'निरङ्कुशा कवयः' मान कर कथंचित् समाधान किया जा सकता है।अव+चि+ल्यप्।अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' अर्थात् निषेधार्थक अलम् और खलु के योग में 'क्त्वा' का विधान होता है 'मा' के साथ नहीं। (९) अय्यउत्तो—(आर्यपुत्रः)—यह पाठ अशुद्ध है। इसकी जगह 'अय्यउत्तेन' (आर्यपुत्रेण)—ऐसा पाठ होना चाहिए। इस वाक्य का भावार्थ यह है कि मेरे

प्रिय पति यहाँ आकर और इन फूलों की बहार देखकर बहुत प्रसन्न होंगे और पुष्पों की सुषमा बढ़ाने में मेरी सुरुचि जानकर मेरा सम्मान करेंगे। (१०) उत्कण्ठिता—अधीर। उत्कण्ठा जाता अस्याः इति विग्रहे उत्कण्ठा+इतच्+टाप् (भ)। (११) दुष्करम्—कठिन। दुःखेन कर्तुं शक्यम् दुस्√कृ खल् 'ईषद्दुःसुषु-कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् (भ्र)। इत्यनेन। (१२) यथा मम—वासवदत्तायाः इति —नवोढा पत्नी पद्मावती का अपने प्रगाढ़ पतिप्रेम की समानता अपनी पूर्व सपत्नी वासवदत्ता से करना स्वाभाविक ही है। (१३) हम्—यह अव्यय शंका, वितर्क और अनुताप का सूचक है। (१४) आर्यपुत्रपक्षपातेन—पक्षे पातः पक्षपातः सप्तमी तत्पुरुष, आर्यपुत्रस्य पक्षपातः षष्ठी तत्पुरुष, तेन इति हेतौ तृतीया। (१५) परित्यजति—यहाँ सम्भावना के अर्थ में लट् लकार हुआ है। (१६) भवितव्यम्—भू+तव्यत्। यहाँ हेतु में तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। 'दाक्षिण्यतया' पाठ भी मिलता है। दक्षिण एव दाक्षिण्यः स्वार्थे ष्यञ्। उदारता के कारण अथवा 'दक्षिण' नायक होने के कारण सभी पत्नियों से समान प्रेम करता है। (१७) अभणित्वा—यहाँ नञ् समास है। इसलिए 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' सूत्र से क्त्वा को ल्यप् आदेश नहीं हुआ। (१८) तूष्णीकः—मौन। (१९) दक्षिणतया—उदारता या विदग्धता के कारण। (२०) रोदिति—यहाँ भूत के अर्थ में लट् लकार हुआ है।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च।)

विदूषकः—ही ! ही ! [1]पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं। इदो दाव भवं। [ही ! ही ! प्रचितपतितबन्धुजीव-कुसुमविरलपातरमणीयं प्रमदवनम्। इतस्तावद् भवान्।]

संस्कृत टीका—ही ही—आनन्दसूचकमव्ययमिदम्, प्रचितपतितबन्धुजीव-कुसुमविरलपातरमणीयम्—प्रचितानि अवचितानि पतितानि च वृन्ततः स्वयं भ्रष्टानि च यानि बन्धुजीवकुसुमानि बन्धूकपुष्पाणि तेषां विरलेन स्वल्पेन इतस्तत इति यावत् पातेन पतनेन रमणीयम् आकर्षकम्, प्रमदवनम्–क्रीडोद्यानम् (अस्ति)। इतः—अस्मात् प्रदेशात्, तावत्—इति वाक्यालङ्कारे, भवान्–महाराजः, आगच्छतु इति शेषः।

१. पाठान्तर—णवविवड्ढिम् (नवविवर्धित) विरलसंताप पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, नवानि विवर्धितानि बन्धुजीवकुसुमानि।

(तदनन्तर राजा और विदूषक का प्रवेश।) विदूषक—अहाहा! कुछ चुन लिये गये, कुछ बिखरे पड़े हुए और कुछ गिरते हुए दुपहरिया के फूलों से आनन्द बाग सुशोभित हो रहा है। आप इधर से चलें।

(Enter king and Vidushaka) Vidushaka—Aha, How lovely is this pleasure grove in which the intermittent breeze has stiuml. A crimson carpet of Bandhuka Blossosms. This way, sir.

टिप्पणी—(१) प्रचितपतित—प्रचितानि च तानि पतितानि प्रचितपतितानि विशेषणोभयपद कर्मधारय समास खञ्जकुब्जवत्। प्रचितपतितानि च बन्धुजीवकुसुमानि कर्मधारय समास। (२) बन्धुजीवकुसुमानि—दुपहरिया के फूल। 'रक्तकस्तु बन्धूको बन्धुजीवकः' इत्यमरः।

राजा—वयस्य! वसन्तक! अयमहमागच्छामि।

राजा—मित्र वसन्तक! यह मैं आ रहा हूँ।

King—Friend, Vasantaka. I too am coming.

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः॥१॥

अन्वय—तदा उज्जयिनीं गते, अवन्तिराजतनयां स्वैरं दृष्ट्वा काम् अपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इषवः पातिताः। तैः अद्य अपि (मम) हृदयम् सशल्यम् एव। वयं भूयः च विद्धाः। यदा मदनः पञ्चेषुः (तदा तेन) अयं षष्ठः शरः कथं पातितः॥१॥

संस्कृत टीका—तदा—तस्मिन् समये, उज्जयिनीं—प्रद्योतराजधानीं, गते—प्रयाते, अवन्तिराजतनयां—वासवदत्तां, स्वैरं—यथाकामं, दृष्ट्वा—अवलोक्य, काम् अपि—अनिर्वचनीयाम्, अवस्थां—दशां, गते—प्राप्ते, मयि—उदयने कामेन—मदनेन, पञ्च—एतत्संख्याकाः, इषवः—बाणाः, पातिताः—प्रक्षिप्ताः। तैः—बाणैः, अद्य अपि—अधुना अपि, (मम) हृदयं—चेतः, सशल्यम् एव—कीलितम् एव (वियते)। वयम्—अहम्, भूयः—पुनः, च—अपि, विद्धाः—आहताः। यदा—यदि। मदनः—कामदेव, पञ्चेषुः—पञ्चबाणः (अस्ति तदा तेन), अयम्—एषः, षष्ठः—एतत्संख्याकः, शरः—बाणः, कथं—कुतः, पातितः—प्रक्षिप्तः ?॥१॥

अयं भावः---राजा विदूषकं कथयति—मित्र ! यदाऽहम् उज्जयिनीं गत्वा साक्षाद् रतिमिव वासवदत्तां दृष्ट्वा मोहमुपगतः तदा कन्दर्पेण स्वीयाः पञ्चापि बाणाः मयि निपातिताः। परमाश्चर्यं यत् इदानीं पद्मावतीमुद्दिश्य कामेन पुनरप्यहं विद्धोऽस्मि ! यदि कामः पञ्चेषुः उच्यते तदा पञ्चानामपि बाणानां निपातनानन्तरं षष्ठः बाणः तेन कुत आनीतः ?

अनुवाद---उस समय उज्जैन जाने पर मालवराजकुमारी को इच्छानुसार देखकर किसी विचित्र अवस्था को प्राप्त हुए मुझपर कामदेव ने पाँचों बाण गिरा दिये थे। उनसे अब भी मेरा हृदय पीड़ित ही है। फिर भी हम बेध दिये गये हैं। जब कामदेव के पाँच ही बाण हैं तो यह छठा बाण उसने कहाँ से फेंका ।।१।।

The God of love shot all his arrows at me, when in Ujjain I felt his utmost power. Gazing upon the eyes of that fair maid, my heart is still entertaining those shafts. We are again smitten, when Madan has five arrows only, how, could this sixth (arrow) be discharged.

टिप्पणी---(१) कामेन---पातिताः क्रिया के साथ संबंध, 'अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया' से तृतीया हुई है। (२) स्वैरम्---इच्छानुसार, अव्यय 'स्वादीरेरिणोः' सूत्र मे वृद्धि हुई है। (३) सशल्यम्---शल्यैः सह वर्तमानम् इति सशल्यम्। (तुल्ययोगे बहुव्रीहिः।) (४) वयम्---यहाँ अस्मदो द्वयोश्च' सूत्र से बहुवचन हुआ। (५) विद्धाः---बेध दिये गये।√व्यध्+क्त 'ग्रहिज्यावयिव्यधि' इत्यादि-सूत्रेण सम्प्रसारणम्। (६) पञ्चेषुः---कामदेव। पञ्च इषवः=बाणाः यस्य स पञ्चेषुः बहुव्रीहि समास। कामदेव के पाँच बाण माने गये हैं। जैसे---'अरविन्दम-शोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः।।' 'उन्मादस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्तथा। सम्मोहनश्च कामस्य पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः।।' (७) षष्ठः---छठा। षण्णां पूरणः इति विग्रहे षष्शब्दात् डट् प्रत्यये कृते 'षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्' इति सूत्रेण थुगागमः। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है। तल्लक्षणं वृत्तरत्नाकरे---सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।।१।।

विदूषकः---कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी, लदामण्डवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअ पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअं गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्ठा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसंकुलं दारुपव्वदअं गदा भवे। [ऊर्ध्वमवलोक्य] हो हो सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारि-

अबलदेवबाहुदंसणीअं सासरसपन्तिं जाव सामाहिदं गच्छन्तिं पेक्खदु दाव भवं । [कुत्र नु खलु गता तत्रभवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत् अथवा अधिककटुकगन्ध-सप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत् । ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान् ।]

संस्कृत टीका--तत्रभवती—माननीया, पद्मावती--मगधेशनन्दिनी, कुत्र नु खलु गता—क्व प्रस्थिता भवेत्, उताहो--अथवा, असनकुसुमसञ्चितम्—असनानां सर्जकवृक्षाणां कुसुमैः पुष्पैः सञ्चितम् आच्छन्नम्, (अतएव) व्याघ्रचर्मावगुण्ठितमिव व्याघ्रचर्माच्छादितमिव, पर्वततिलक नाम--एतन्नामक, शिलापट्टकं—शिलाखण्डं, गता—प्रयाता, भवेत् अथवा—आहोस्वित्, अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवन—अधिक-कटुकः अतितीक्ष्णः गन्धः आमोदः येषां तादृशाना सप्तच्छदाना सप्तवर्णवृक्षाना वनम् अरण्यम् तद्बहुलप्रदेशमिति यावत्, प्रविष्टा—गता, भवेत्, अथवा, आलिखित-मृगपक्षिसङ्कुलम्—आलिखितैः चित्रितैः मृगपक्षिभिः पशुपक्षिभिः सङ्कुलं व्याप्तम्, दारुपर्वतकं काष्ठनिर्मित क्रीडापर्वत, गता—प्रयाता, भवेत् । ही ही—विस्मयप्रसन्नता-सूचकमव्ययमिदम्, शरत्कालनिर्मले—शरत्कालेन शरदृतुना निर्मले स्वच्छे, अन्तरिक्षे—आकाशे, प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीया—प्रसारितौ विस्तारितौ बलदेवस्य बलरामस्य बाहू भुजौ तौ इव दर्शनीयां मनोहरा, सारसपङ्क्तिं सारसा-नाम् एतन्नामकपक्षिणां पङ्क्ति श्रेणि, समाहित—सावधान सम्यक्रूपेण शृंखलित यथा स्यात् तथा, गच्छन्ती—व्रजन्ती, पश्यतु—अवलोकयतु, भवान्—महाराजः ।

विदूषक—माननीय पद्मावती जी कहाँ चली गई ? (शायद) कुज मे गई हो। अथवा असन वृक्ष के फूलों से ढँक जाने के कारण बाघ की खाल मे मढ़े हुए की भाँति (दीखने वाले) पर्वततिलक नामक शिलापट्ट पर गई हो। अथवा बहुत कड़वी गध वाले छतिवन के वन मे गई हो। अथवा लकड़ी के बने कृत्रिम पहाड़ पर, जहाँ बहुत-से पशु-पक्षियों के चित्र खुदे हुए हैं, गई होगी। (ऊपर ताककर) अहाहा ! शरद् ऋतु के कारण निर्मल आकाश मे फैलाई हुई

बलदेव जी की भुजाओं के समान कमनीय सारस पक्षियों की कतार को, जो निश्चिन्त रूप से उड़ रही है, आप देखें।

Vidushaka—Where indeed has her ladyship Padmavati gone ? She might have gone to the bower of creepers, or it might be that she has gone to the stone chair called "Parvat tilaka" covered with tiger's skin, as it were, on account of its being heaped with the flowers of the Asanu tree (or the Pitasala tree); or she might have entered the saptachhada woods with greater pungent odour, or she might have gone to the Daruparvataka crowded with birds and beasts drawn in a picture. (Looking up) Hi, Hi, in the meantime Your honour may see the group of cranes going calmly in the clear autumnal sky as beautiful to look at as the arm of propitiated Baldeva.

टिप्पणी--(१) उताहो--या, अथवा। 'आहो उताहो किमुत' इत्यमरः। असन० पीतशाल नामक वृक्ष। 'पीतसारके सर्जकासनबन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः' इत्यमरः। (२) असनकुसुमसंचितम्--असन वृक्ष के फूलों से ढँके हुए। असनाना कुसुमैः सञ्चितम्। (षष्ठीगर्भित तृ० तत्पु०)। (३) व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम्--व्याघ्रचर्म से आवृत। व्याघ्रचर्मणा अवगुण्ठितम्। तृ० तत्पु०। (४) अधिककटुकः--अधिकं कटकः इति अधिककटुकः सुप्सुपा समास। (५) अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनम्--बहुत कड़वी गन्धवाली सप्तच्छद का वन। अधिककटुकः गन्धः येषां (बहुव्रीहि) ते अधिककटुकगन्धाः तादृशाः सप्तच्छदाः (कर्मधा०) तेषां वनम् (ष० तत्पु०)। (६) आलिखितमृगपक्षिसंकुलम्--मृगाश्च पक्षिणश्च मृगपक्षिणः (द्व० स०) आलिखिताश्च ते मृगपक्षिणः (कर्मधा०) तैः सकुलम् (तृ० तत्पु०)। चित्र मे लिखे हुए पशुपक्षियो से युक्त। (७) दारुपर्वतकम्--दारुनिर्मितः पर्वतः दारुपर्वतः मध्यमपदलोपी समास, दारुपर्वत इव इति दारुपर्वतकः 'इवे प्रतिकृतौ' इत्यनेन कन् प्रत्ययः, तम्। (८) प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्--बलदेव जी की फैली हुई भुजाओं के समान सुन्दर। प्रसारितौ बलदेवस्य बाहू तौ इव दर्शनीयाम् (कर्मधा०)। प्रसारित--प्र+सृ+णिच्+क्त (त) कर्मणि। (९) यावत् "तावत् ये दोनों शब्द वाक्य की शोभा बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। (१०) समाहितम्--निश्चिन्त रूप से। अत्र क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया।

राजा--वयस्य ! पश्याम्येनाम्,

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु।

मर्त्तेते शेयादिवश्शिखण्डिनः ॥' इत्यमरः । (५) निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य—उतरती हुई केंचुली वाले सांप के पेट के समान । निर्मुच्यमानश्चासौ भुजगः (कर्मधा०) तस्य उदरस् (ष० तत्पु०) तदिव निर्मलम् तस्य । निर्मुच्यमान—निर्+मुच्+शानच् (कर्मणि) । (६) विभज्यमानाम्—अलग की जाती हुई । वि+भज्+शानच् (कर्मणि)। इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में चार 'च' से चार विशेषणों का समुच्चय समझना चाहिए । 'सप्तर्षिवंशकुटिलाम्' और निर्मुच्यमानभुजगोदर-निर्मलस्य' इन दोनों जगह उपमा अलकार है 'सीमामिव' में उत्प्रेक्षा अलकार है । इस प्रकार उपमा और उत्प्रेक्षा से संसृष्ट स्वभावोक्ति अलंकार यहाँ उत्पन्न होता है । यह वसन्ततिलका छन्द है। तल्लक्षण—ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥२॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टदारिआ एदं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति । अम्मो ! भट्टा । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीम् । अम्मो ! भर्ता ।]

संस्कृत टीका—प्रेक्षताम्—पश्यतु, भर्तृदारिका—राजकुमारी, एताम्—पुरो दृश्यमानाम्, कोकनदमालापाण्डररमणीया—कोकनदानां श्वेतकमलानां माला पंक्तिः तद्वत् पाण्डरा श्वेता रमणीया मनोहरा च ताम्, सारसपङ्क्तिं-सारसश्रेणिं, समाहित—सङ्घटितरूपेण, गच्छन्तीम्—व्रजन्तीम् । अम्मो !—अहो ! भर्ता—पतिदेव. समुपागत इति शेषः ।

दासी—राजकुमारी जी ! देखिये, देखिये—यह श्वेत कमल की माला के समान उज्ज्वल एव मनोहर सारसों की पंक्ति (कैसी) निश्चिन्तता से उड़ी जा रही है । अरे ! स्वामी (यहीं हैं) ।

Maid—Look, just behold the line of cranes beautiful and white like a garland of Kokanada lotuses calmly proceeding oh ! the lord.

टिप्पणी—(१) पश्यतु पश्यतु—यह द्विरुक्ति आदर सूचनार्थ है । (२) कोकनदमालापाण्डररमणीयाम्—श्वेत कमल की माला के समान उज्ज्वल एवं मनोहर । पाण्डरा च रमणीया च इति पाण्डररमणीया विशेषणोभयपदकर्मधारय समास, कोकनदमाला इव पाण्डररमणीया उपमित समास । यद्यपि 'रक्तोत्पल कोकनदम्' इस अमरकोश के प्रमाण से कोकनद लाल कमल को कहते हैं, किन्तु

यहाँ प्रसंगानुसार श्वेत कमल का अर्थ घट रहा है। पाण्डर--श्वेत 'विशदश्वेत-पाण्डराः' इत्यमरः। (३) समाहितम्--संघटित रूप से या सावधानी से या निश्चिन्तता से। यह क्रियाविशेषण है।

पद्मावती--हं ! अय्यउत्तो अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि। ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो। [हुम् ! आर्यपुत्रः। आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि। तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः।]

संस्कृत टीका--हुम्--सङ्कोचसूचकमव्ययमिदमत्र, आर्ये ! --देवि ! तव--भवत्याः, कारणात्--हेतोः, आर्यपुत्रदर्शनं--पतिदेवस्य दर्शनं,परिहरामि त्यजामि। तत्--तस्मात् कारणात्, इमं--समीपस्थित, माधवीलतामण्डपम्--वासन्तीकुञ्जम्, प्रविशामः--प्रविश्य तिष्ठाम इत्यर्थः।

अनुवाद--हैं ! आर्यपुत्र ! देवी ! तुम्हारे कारण मैं आर्यपुत्र का दर्शन छोड़ती हूँ। इसलिए अभी हम लोग इस माधवी-कुंज में चलें।

Padmavati--it is my husband, venerable lady, on your account I shall avoid the sight of the prince. Then we enter this bower of Madhavi creepers.

वासवदत्ता--एव्वं होदु। [एवं भवतु।] (तथा कुर्वन्ति।)

वासवदत्ता--ऐसा ही हो। (माधवी-कुंज में प्रवेश करती हैं)

Vasava.--Let it be so. (They go inside the arbour)

विदूषकः--तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

विदूषक--महारानी पद्मावती यहाँ आकर चली गई हैं।

Vidushaka--It seems that her ladyship Padmavati has been here and has gone.

राजा--कथं भवान् जानाति ?

राजा--आप कैसे जानते हैं ?

King--How do you know ?

विदूषकः--इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं। [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्।]

संस्कृत टीका—इमान्—पुरो विद्यमानान्, अपचितकुसुमान्—अपचितानि त्रोटितानि कुसुमानि पुष्पाणि येभ्यः तान्, शेफालिकागुच्छकान्—शेफालिका-कुसुमस्तवकान्, भवान्—महाराजः, प्रेक्षतां—पश्यतु।

अनुवाद—विदूषक—इन हर्रासगार के गुच्छों को तो देखिये, जिनके फूल तोड़ लिये गये हैं।

Vidushaka—Just see these shephalika plants from which the blossoms have been gathered.

राजा—अहो! विचित्रता कुसुमस्य, वसन्तक!

राजा—अहा! कैसे रंग-बिरंगे फूल हैं, वसन्तक!

King—Oh, the variety of flowers, Vasantaka.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] वसन्तअसङ्कित्तेण अहं पुण जाणामि उज्जइणीए वत्तामि त्ति। [वसन्तकसंकीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्त इति।]

वासवदत्ता—(मन में) वसन्तक का नाम लेने से तो मैं समझती हूँ कि मैं पुनः उज्जैन में हूँ।

Vasava.—(Aside) By the repetition of the name Vasantaka, I think, I am again in Ujjain (as it were).

राजा—वसन्तक! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे।

राजा—वसन्तक! इसी शिला-खण्ड पर बैठकर हम दोनों पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

King—Vasantaka, sitting on this very stone we (two) shall await Padmavati.

विदूषकः—भो! तह। (उपविश्योत्थाय) ही! ही! सरअकाल-तिक्खो दुस्सहो आदवो। ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामो। [भोस्तथा। ही! ही! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः! तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः।]

विदूषक—जी! अच्छा। (बैठते ही उठकर) हा हा! शरद् ऋतु की तीखी धूप सही नहीं जाती। इसलिए इस वासन्ती-कुञ्ज में चलें।

Vidushaka—Yes, alright (sitting down and getting up) Hi, hi the sunshine, hot in the autumnal season, is unbearable. There we two shall enter the Madhavi bower.

राजा—बाढम्, गच्छाग्रतः ।

राजा—अच्छा, आगे चलो ।

King—Alright, Move on,

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।] (उभौ परिक्रामतः ।)

विदूषकः—ऐसा ही हो । (दोनो का प्रस्थान)

Vidushaka—Let it be so. (Both turn round.)

पद्मावती—सव्वं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणिं करेह्य ?
[सर्वमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः । किमिदानीं कुर्मः ?]

पद्मावती—आर्य वसन्तक सब चौपट करना चाहते हैं । अब क्या करें ?

Padmavati—Revered Vasantaka wishes to upset everything, what may we do now ?

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणलीणं ओलंबलदं ओधूय भट्टारं वारइस्सं । [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।]

दासी—राजकुमारी ! भौंरो से लदी इस महारे की लता को हिला कर स्वामी को (आने से) रोक दूँगी ।

Maid—My lady, shall I shake this hanging branch, with a buzz with bees to keep the king back ?

पद्मावती—एव्वं करेहि । [एवं कुरु ।] (चेटी तथा करोति ।)

पद्मावती—ऐसा ही करो । (दासी वैसा ही करती है ।)

Padmavati—Do this (The maid does so.)

विदूषकः—अविहा, अविहा, चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [अविह अविह, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

विदूषकः—ओह ! ओह ! ठहरिये, जरा आप ठहरिये ।

Vidushaka—Oh, oh, wait just wait, your honour.

राजा—किमर्थम् ?

राजा—क्यों ?

King—Why,

विदूषकः—दासीएपुत्तेहि महुअरेहि पीडिदो ह्मि । [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।]

विदूषकः--हरामी भौरों ने मुझ पर आक्रमण कर दिया है।

Vidushaka—I am troubled by these whorl-son bees.

राजा—मा मा भवानेवम्। मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः। पश्य,

राजा--न न, ऐसा न कहो। भौरों का भय मिटा देना चाहिए। देखो—

King—Let it not be with you, let it not be so Harming the bees should be avoided.

टिप्पणी—(१) तव कारणात्—तुम्हारे कारण। वासवदत्ता पर-पुरुष का मुख नहीं देखती है। इसलिए पद्मावती पति से मिलने की उत्कण्ठा रखते हुए भी उसके पास नहीं जाती है। (२) परिहरामि—छोड़ती हूँ। परि+हृ+लट् उ० पु० ए० व०। (३) प्रविशामः—प्रवेश करते हैं। प्र+विश्+लट् उ० पु० बहु० व०। (४) अवचितकुसुमान्—जिनके पुष्प तोड़ लिये गये हैं। अव+चि+क्त (त) कर्मणि अवचित। अवचितानि कुसुमानि येभ्यः तान् बहुव्रीहिः। (५) शेफालिकागुच्छकान्--हरसिंगार के गुच्छे। गुच्छा एव गुच्छकाः, स्वार्थे कः, तान्। 'स्याद् गुच्छकस्तु स्तबकः' इत्यमरः। (६) विचित्रता--अनेकवर्णता, सुन्दरता। (७) वसन्तकसंकीर्तनेन--'वसन्तक' इस सम्बोधन पद के उच्चारण से। उज्जैन में वासवदत्ता इस नाम को अनेक बार सुन चुकी थी। इसलिए चिरकाल के बाद आज प्रियतम के मुख से इसका उच्चारण सुनकर उसे अपने जीवन के मधुर दिनों का स्मरण हो आता है। इसलिए वह कहती है कि मानो आज मैं उज्जैन में ही हूँ। (८) आसीनौ--उपविशन्तौ।√आस् (उपवेशने)+शानच्, 'ईदासः' इत्यनेन ईत्वम्। (९) प्रतीक्षिष्यावहे--इंतजार करें। यहाँ विध्यर्थ में लट् लकार हुआ है। प्रति+ईक्ष्+ (स्यावहे) उ० पु० द्वि० व०। (१०) ही ही--यहाँ दुःखसूचक अव्यय है। (११) दुःसह—दुःखेन सोढुं शक्यः। दुर्√सह्+खल् (अ) 'ईषद्दुःसुषु' इत्यादिना। (१२) तत्--यह हेत्वर्थक अव्यय है। (१३) प्रविशावः--प्रवेश करें। विध्यर्थ में लट् लकार हुआ। प्र+विश+लट्। उ० पु० द्वि० व०। (१४) सर्वमाकुलं कर्तुकामः--सारे प्रयत्न को विफल करने को इच्छुक। कर्तुं कामः यस्य स कर्तुकामः, 'तुङ्काममनसोरपि' के द्वारा 'कर्तुम्' में 'म्' का लोप हो गया। (१५) मधुकरपरिनिलीनाम्--भौरों से व्याप्त। मधुकरैः परिनिलीना, ताम्। अथवा परिनिलीनाः मधुकराः यस्या सा, ताम्। वाऽऽहिताग्न्यादिषु' से 'परिनिलीन' का परनिपात हो गया। (१६) अवलम्बताम्—अन्य लताओं को अवलम्ब देने वाली प्रधान लता या वह लता

जिसके सहारे पद्मावती बैठी हुई है। अवलम्बभूता लता इति अवलम्बलता ताम्, मध्यमपदलोपी समास। (१७) अवधूय—हिलाकर या कँपाकर। अव√धू (कम्पन)+क्त्वा=ल्यप्। (१८) अविह—यह विषादसूचक अव्यय है। (१६) दास्याः पुत्रैः—कमीनों ने। यहाँ अलुक् समास है। 'षष्ठ्या आक्रोशे' सूत्र से षष्ठी विभक्ति का अलुक् हो जाता है। निन्दा या घृणा सूचित करने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।(२०) मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः—परि+हृ+ण्यत् कर्मणि।—मधुकराणा भ्रमराणा सन्त्रासः—मयम्। अर्थात् भौंरों को सन्त्रास देने वाला कार्य न करो।

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥३॥
तस्मादिहैवासिष्यावहे।

अन्वय—मधुमदकलाः मदनार्ताभिः प्रियाभिः उपगूढाः मधुकराः पादन्यासविषण्णाः (सन्तः) वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥३॥

संस्कृत टीका—मधुमदकला.—मधुमदेन पुष्परसपानजन्यमानसविकारविशेषेण कलाः अव्यक्तमधुराः मधुर गुञ्जन्त इति यावत्, मदनार्ताभिः—कामपीडिताभिः, प्रियाभिः—प्रियतमाभिः भ्रमरीभिरिति यावत्, उपगूढाः—आश्लिष्टाः, मधुकराः—भ्रमराः, पादन्यासविषण्णाः पादन्यासेन चरणक्षेपेण विषण्णाः खिन्नाः (सन्तः), वयम् इव—अहम् इव, कान्तावियुक्ताः—कान्ताभिः प्रियाभिः वियुक्ता. विरहिताः स्यु—भवेयुः (अतएव अस्माभिः एते भ्रमराः प्रियाविरहशोके न निपातनीयाः) ॥३॥

फूलों का रस पीकर मस्ती में गुञ्जार करने वाले तथा कामातुर प्रियाओं से आलिंगित किये जाने वाले ये भौंरे (हमारे) पैरों के रखने से दुःखी होकर हमारी तरह प्रियाओं से वियुक्त हो जायेंगे ॥३॥

इसलिए हम दोनों यहीं बैठें।

The bees, sweet in their intoxication, clasped by their beloveds, tormented by love, getting distracted by our footsteps, would, like us, become separated from their beloveds. (Therefore let us both sit here)

टिप्पणी—(१) मधुमदकला—मधु पान के मद से गूँजने वाले। (२) मधु-पुष्परस। 'मधु मद्ये पुष्परसे' इत्यमरः। (३) मधुकराः—भौंरे। 'मधुव्रतो मधुकरो मधुलिण्मधुपालिनः। द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः' इत्यमरः।

(४) मदनार्त्ताभिः—मदनेन आर्त्ताभिः तृ० तत्पु०। (५) उपगूढः—आलिंगित। उप√गुह्+क्त (त)। (६) पादन्यासविषण्णाः—पैरों के रखने या चलने या आहट से दुःखित। (७) पादन्यासेन विषण्णाः। तृ० तत्पु०। विषण्णा—वि√सद्+क्त (त)। (८) कान्तावियुक्ताः—प्रियतमाओं से वियुक्त। कान्ताभिः वियुक्ताः तृ० तत्पु० ॥३॥

विदूषकः—एव्वं होदु। [एव भवतु।] (उभावुपविशतः)

विदूषक—ऐसा ही हो। (दोनों बैठते हैं।)

Vidushaka—Let it be so. (Both sit down.)

राजा—(अवलोक्य)।

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम्।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

अन्वय—पुष्पाणि पादाक्रान्तानि इदं शिलातलं च सोष्म। नूनम् इह आसीना काचित् मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥४॥

संस्कृत टीका—पुष्पाणि—कुसुमानि, पादाक्रान्तानि—पादैः चरणैः आक्रान्तानि दलितानि (वर्तन्ते), इदं—दृश्यमान, शिलातलं—प्रस्तरतलं, सोष्म—ऊष्मणा सहितं (विद्यते)। (अतः) नूनं—निश्चितम्, इह—अत्र, आसीना—उपविष्टा, काचित्—महिला, माम्—उदयनं, दृष्ट्वा—विलोक्य, सहसा—झटिति, गता—याता ॥४॥

राजा—(देखकर) फूल पैरों से कुचले हुए हैं, यह शिलातल भी गरम है। (अतएव) निःसंदेह यहाँ बैठी हुई कोई महिला मुझे देखकर झटपट चली गई ॥४॥

King—Looking. Here flowers are trampled upon by feet. This *slab* is also hot. Therefore (it is clear) that some lady who sat here has gone away seeing me.

टिप्पणी—कई संस्करणों में राजा—(अवलोक्य) समेत इस श्लोक का पाठ नहीं मिलता है। यद्यपि प्रकृत स्थल में पूर्वापरसन्दर्भ के अनुसार इतने पाठ के न होने से भी कोई क्षति नहीं है, तो भी 'अधिकं तु प्रविष्टं न च तद्धानिः' इस न्याय से हमने इस अधिक पाठ का समावेश कर देना ही उचित समझा। यह श्लोक रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में आया है—'यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकामण्डपशिलातलमवलोक्य वत्सराजः पादाक्रान्तानि' इत्यादि।'

(१) आसिष्यावहे—उपवेक्ष्यावः। बैठें। यहाँ विध्यर्थ में लृट् लकार हुआ है।

(२) पादाक्रान्तानि—पैरों से कुचले हुए। पादैः आक्रान्तानि (तृ० तत्पु०)। (३) इदम्—यह समीपता का द्योतक है। (४) सोष्म—गर्मी से युक्त। ऊष्मणा सह वर्तमानम्। तृ० तत्पु०। (५) आसीना—बैठी हुई। आस्+शानच्।

चेटी—भट्टिदारिए! रुद्धा खु ह्म वयं। [भर्तृदारिके। रुद्धाः खलु स्मो वयम्।]

दासी—राजकुमारी जी! हम लोग तो घिर गयी हैं।

Maid—Princess we are indeed imprisoned.

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो। [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः।]

पद्मावती—भाग्य से आर्यपुत्र बैठ गये हैं।

Padmavati—Fortunately the prince has sat down.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो। [दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—(मन में) भाग्य से आर्यपुत्र शरीर से स्वस्थ हैं।

Vasava.—(To herself) fortunately the prince is good health.

चेटी—भट्टिदारिए! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी। [भर्तृदारिके! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः।]

दासी—राजकुमारी जी! आर्या की आँखें डबडबा आई।

Maid—Princess, the eyes of her ladyship are full of tears.

वासवदत्ता—एसा खु महुअराणं अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी। [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः।]

वासवदत्ता—यह तो भौंरों की चपलता से मेरी आँखों में काशपुष्पों की धूल पड़ जाने के कारण आँसू आ गये हैं।

Vasava.—My eyes are full of tears on account of the falling of the pollen of Kusha flowers through the rudeness of the bees.

पद्मावती—जुज्जइ [युज्यते]।

पद्मावती—ठीक कहती हैं।

Padmavati—Right.

विदूषकः—भो! सुण्णं खु इदं पमदवणं। पुच्छिदव्वं किञ्चि अत्थि।

पृच्छामि भवन्तं। [भोः। शून्यं खल्विदं प्रमदवनम्। प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति। पृच्छामि भवन्तम्।]

विदूषक—श्रीमान्! यह आनन्दवन बिलकुल सूना है। आपसे कुछ पूछना है। पूछूं?

Vidushaka—Sir the lady's garden is lonely, I have to ask you something. May I ask your honour ?

राजा—छन्दतः।

राजा—खुशी से पूछो।

King—You may happily do so.

विदूषकः—का भवदो पिआ? तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा। [का भवतः प्रिया, तदानीं तत्रभवती वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा।]

विदूषक—आपको कौन प्रिय है? तब की माननीया वासवदत्ता या अब की पद्मावती?

Vidushaka—Who is dear to you ? Her former ladyship Vasavadutta or her present ladyship padmavati ?

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसंकटे मां न्यस्यति?

राजा—क्यों आप इस समय मुझे बहुत बड़े प्रेम-संकट में डाल रहे हैं?

King—Why do you put me in this embarassment of very great magnitude,

पद्मावती—हला! जादिसे संकटे निक्खित्तो अय्यउत्तो। [हला! यादृशे संकटे निक्षिप्तः आर्यपुत्रः।]

पद्मावती—सखी! जैसे सकट मे आर्यपुत्र डाले गये हैं (वैसे सकट में मैं भी)।

Padmavati—Oh in what kind of an embarassment has my lord been put.

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] अहं अं मन्दभाआ। [अहं च मन्दभागा।]

वासवदत्ता—(मन मे) मैं अभागिन भी।

Vasva.—And I so unlucky.

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भवं । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा ।
[स्वैरं स्वैरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।]

विदूषक—आप निःसंकोच कहें। एक तो मर गई और दूसरी पास में नही है।

Vidushaka—Tell me at your will, at your pleasure, one of them is dead another not near.

राजा—वयस्य ! न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

राजा—मित्र ! मैं नही कहूँगा। तुम मुँहफट हो।

King—Friend I will not say. You are talkative.

पद्मावती—एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण ।[एतावता भणितमार्यपुत्रेण।]

पद्मावती—इतने से आर्यपुत्र ने (अपना मन्तव्य) कह दिया।

Padmavati—The King has answered in those words.

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्स । एसा सन्दट्ठा मे जीहा । [भोः ! सत्येन शपामि, कस्यापि नाख्यास्ये। एषा सन्दष्टा मे जिह्वा ।]

विदूषक—महाराज ! मैं सत्य की शपथ खाता हूँ, किसी से भी नहीं कहूँगा। यह मैंने अपनी जीभ काट ली।

Vidushaks—I pledge my word, I will not tell anyone. See have I put a padlock on my tongue (puts his tongue out and bites it.)

राजा—सखे ! नोत्सहे वक्तुम् ।

राजा—मित्र ! कहने का साहस नही होता।

King—Friend, I do not venture to speak it.

पद्मावती—अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्तिएण हिअअं ण जाणादि ।
[अहो! अस्य पुरोभागिता। एतावता हृदयं न जानाति ।]

पद्मावती—हाय ! इनकी हठवादिता। इतने से भी हृदय (का भाव) नही समझते।

Padmavati—Ha, his impudence, can he not know his heart by this much ?

टिप्पणी—(१) प्रकृतिस्थशरीरः—प्रकृतिस्थं नीरोगमिति यावत् शरीरं

स्वस्थ स तथाभूतः । वासवदत्ता ने चुपके से उदयन को देख लिया इसलिए कहती है कि सौभाग्य से मेरे पतिदेव का शरीर स्वस्थ है । (२) खलु--यह निश्चयार्थक अव्यय है।(३)अविनयात्--उद्दण्ड होकर स्वच्छन्दतापूर्वक इधर-उधर घूमने से। यहाँ हेतु में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । (४) सोदका--उदकेन जलेन सहिता इति सोदका अश्रुजलपूर्णेत्यर्थः। (५) साश्रुपाता--अश्रुपात से युक्त। अश्रूणां पातः अश्रुपातःषष्ठी तत्पुरुष। (६) काशकुसुमरेणुना--काशाना कुसुमानि तेषां रेणुः (धूलिः)षष्ठी तत्पुरुष तेन। यहाँ करणे तृतीया हुई है। (७)शून्यं खलु--तात्पर्य यह है कि महाराज ! प्रमोदवन में इस समय हम दोनों को छोड़ कर कोई नहीं है। इसलिए मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ। और विश्वास दिलाता हूँ कि आप जो उत्तर देंगे, उसे मैं गुप्त रखूंगा। इसलिए आप मेरे प्रश्नों का यथोचित उत्तर दें। यहाँ नाटककार ने बड़े कौशल से नायक एवं दोनों नायिकाओं को एक स्थान में लाकर विदूषक के माध्यम से मधुर दृश्य का उपक्रम कर दिया है। यह दृश्य उदयन का वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम और पद्मावती की उच्चहृदयता एवं सौम्य स्वभाव का चित्र खींचता है । (८)छन्दतः--अभिप्राय या इच्छा के अनुसार। 'अभिप्रायश्छन्द आशयः' इत्यमरः। (९)प्रष्टव्यम्--प्रच्छ्+तव्यत् कर्त्तरि। (१०) बहुमानसङ्कटे--अधिक मान कथन रूप विपत्ति में, अर्थात् 'मैं किसको अधिक मानता हूँ' यह बताने में जो संकट उपस्थित होता है, उसमें। क्योंकि यदि राजा कहता है कि वह वासवदत्ता को अधिक मानता है तो विदूषक की मुखरता से पद्मावती को यह बात मालूम हो जाने पर वह कुपित होगी और यदि पद्मावती को अधिक मानने की बात कहता है तो उसके वासवदत्ता के प्रति अवर्णनीय प्रेम में बट्टा लगेगा। (११)यादृशे सङ्कटे--यह वाक्य अपूर्ण मालूम होता है। इसलिए इसके आगे 'यादृशे वर्तते' या 'तत् स एव जानाति' इतना जोड़ लेना चाहिए। (१२) उपरता--मृता। मुखरः--अधिक बोलने वाला, वाचाल। बहुवाक् मुखम् अस्ति अस्य इति विग्रहे मुख+र 'प्रकरणे मत्वर्थीयस्य उपसंख्यानम्' इति वार्तिकेन। (१३) आवेग--यहाँ करण में तृतीया हुई। (१४) ताडयता- मे जिह्वा--मैंने अपनी जीभ काट ली अर्थात् मैंने अपनी वाचाल जिह्वा को रोक लिया। अब यह नहीं बोलेगी। (१५) कस्मै अपि नाख्यास्ये--किसी से भी नहीं कहूँगा। 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र से 'कस्मै' में चतुर्थी का प्रयोग

हुआ है। (१६) अहो अस्य पुरोभागिता...--पद्मावती कहती है कि इसके हठ पर आश्चर्य है, जो इतने में भी मन को नहीं समझ सका है। क्योंकि महाराज ने यह कह कर कि मैं नहीं बताऊँगा, तुम वाचाल हो, प्रकट कर दिया कि मैं वासवदत्ता से अधिक प्रेम करता हूँ। फिर भी वह जिद कर रहा है, यह मूर्खता की पराकाष्ठा है। (१७) पुरोभागी--ढीठ, हठी, दोषैकदर्शी। 'दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः। पुरोभागिनो भावः पुरोभागिता, पुरोभागिन्+तल्--टाप् (आ)।

(विदूषकः--किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं। एसो रुद्धो अत्तभवं। [किं न भणति मम ? अनाख्यायास्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम्। एष रुद्धोऽत्रभवान्।]

विदूषक--क्यों नहीं मुझसे कहते ? बिना कहे इस शिला-खंड से अन्यत्र एक पग भी नहीं जा सकते। यह आप यहाँ रोक दिये गये।

Vidushaka--Why do you not reply ? Unless you speak, you shall not stir step from this stone bench.

राजा--किं बलात्कारेण ?

राजा--क्या जबर्दस्ती ?

King--What ? By force.

विदूषकः--आम, बलक्कारेण। [आम्, बलात्कारेण।]

विदूषकः--हाँ, जबर्दस्ती।

Vidushaka--Yes, by force.

राजा--तेन हि पश्यामस्तावत्।

राजा--तो देखता हूँ (कैसे मुझे रोकते हो)।

King--Then I see (how do you ckeck me ?)

विदूषकः--पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साविदो, जइ सच्चं ण भणासि। [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि।]

विदूषक--प्रसन्न होइये महाराज, प्रसन्न होइये। आपको मित्रता की सौगंध है, यदि सच्ची बात नहीं कहते।

Vidushaka—*Be pleased your highness, be pleased. I conjure you to tell the truth in the name of friendship.*

राजा—का गतिः ? श्रूय ताम्—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥४॥

अन्वय—यद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैः मम बहुमता । वासवदत्ताबद्धम् मे मनः तु न तावत् हरति ॥४॥

संस्कृत टीका—यद्यपि, पद्मावती—दर्शकभगिनी, रूपशीलमाधुर्यैः—रूप सौन्दर्यं शीलं सच्चरित्रं माधुर्यं मधुरभाषित्वम्—एतैः गुणैः, मम—उदयनस्य, बहुमता—अत्यादृता प्रेमास्पदमिति यावत् (वर्तते तथापि सा), वासवदत्ताबद्ध—वासवदत्तायां पूर्वपत्न्याम् आबद्धम् आसक्तं, मे—मम, मनः—चेतः, तु, न तावत् हरति—नैव आकर्षति (अय भावः—पद्मावती सौन्दर्यसुशीलतादिगुणैः मम बहुमानपात्रं भूत्वाऽपि वासवदत्तया स्वगुणैः आकृष्टं मम हृदयं वशीकर्तुं न प्रभवति । अतएव सा वासवदत्तापदवीमारोढुं नार्हति ।) ॥४॥

राजा—क्या करें ? सुनो—यद्यपि पद्मावती (अपने) रूप, शील और (वचन) माधुर्य से मेरी बड़ी प्यारी है तो भी वासवदत्ता में आसक्त मेरे मन को वह खींच नहीं सकती ॥४॥

King—Is there no way out ? Then listen. Though padmavati is greatly thought of by me on account of her form, virtue, and amiability, yet she does not attract my mind attached to Vasavadatta.

टिप्पणी—(१) शिलापट्टकात्—पत्थर की चौकी । यहाँ 'शिलापट्टकं विहाय अत्र' इस प्रकार अध्याहार करके 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' वार्तिक से पञ्चमी हुई। (२) भोः—यह स्वीकारार्थक अव्यय है। (३) प्रसीदतु प्रसीदतु—यहाँ अतिशय प्रसन्नता द्योतित करने के लिए द्विरुक्ति हुई है। (४) वयस्यभावेन शापितोऽसि—मित्रतायाः शपथेन त्वं बद्धोऽसि । यहाँ विदूषक का तात्पर्य यह है कि मैं मित्रता की कसम देता हूँ, आप सच्ची बात कह दीजिये। यदि नहीं कहेंगे तो आज से हम दोनों की मित्रता समाप्त हो जाएगी। (५) रूपशीलमाधुर्यैः—रूपं च शीलं च माधुर्यं च इत्येतेषां समाहारद्वन्द्वः, रूपशील-

माधुर्याणि, तैः । शील=सदाचरण । 'शीलं स्वभावे सद्वृत्ते' इत्यमरः । (६) मम बहुता–मेरी बहुत ही माननीया या प्रेमास्पद है । मता-मन्+क्त (त)+टाप् (आ)। 'मम' में 'मतिवुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' सूत्र से षष्ठी हुई ।(७)वासवदत्ताबद्धम्–वासवदत्ता मे आसक्त—वासवदत्तायाम् आबद्धम् स० तत्पु० अथवा वासवदत्तया आबद्धम् । राजा का आशय है कि वासवदत्ता के उत्कृष्ट गुणो द्वारा उस पर आसक्त मेरे मन को पद्मावती अपने रूप, शील, प्रिय भाषण आदि गुणों से आकृष्ट नहीं कर पाती है । इस श्लोक मे आर्या छद है । तल्लक्षण–यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश सार्या ।

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो ! अञ्जादवासं पि एत्थ बहुगुणं सम्पज्जइ । [भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।]

संस्कृत-टीका—भवतु भवतु—कामं भवतु परिखेद इति शेषः, अस्य–वियोगरूपस्य, परिखेदस्य–क्लेशस्य, वेतन—पुरस्कारः, दत्तं—वितीर्णम् । अहो !—आनन्दविस्मयद्योतकमव्ययमिदम् अज्ञातवासोऽपि—अज्ञातः अविदितः स चासौ वासः निवासः अपि, अत्र—पद्मावत्याः निकटे, बहुगुणः—गुणविशेषशाली, सम्पद्यते—सञ्जायते ।

अनुवाद—बस बस । इस (विरह रूप) क्लेश का पुरस्कार दे दिया । अहा ! यहाँ छिप कर रहना भी बहुत गुणकारी हो रहा है ।

Vasava.—Well, let it be so. It has given me compensation for my pains. Oh, even remaining incognito has many advantages.

टिप्पणी—(१) भवतु-भवतु—यहाँ भृशार्थ में द्वित्व हुआ । (२) वेतनम्–पारिश्रमिक । 'भृतिर्भर्म तु वेतनम्' इत्यमरः । यहाँ वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने अज्ञातवास स्वीकार करके अपने पति के वियोग का दुःख, दासीवत् जीवन का दुःख और सौत के स्वीकार करने की वेदना को सहा है । वह सब आज सफल हो गया । क्योंकि मेरे पति मुझसे प्रगाढ़ प्रेम करते हैं । मुझे इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए । (३) अज्ञातवासः—अज्ञातश्चासौ वासः अज्ञातवासः कर्मधारय समास । (४) बहुगुणः—बहुगुणो यस्मिन् स बहुगुणः । यहाँ वासवदत्ता कहती है कि अहा ! मेरा अज्ञातवास बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ ।

यदि मैं अज्ञातवास में न होती तो मुझे पति के ये अमृत-वचन कभी सुनाई न देते। अतएव मैं कृतार्थ हूँ।

चेटी--भट्टिदारिए ! अदक्खिण्णो खु भट्टा। [भर्तृदारिके। अदाक्षिण्यः खलु भर्ता।]

दासी--राजकुमारी जी ! स्वामी उदार नहीं है।

Madi—princess, the lord is really wanting in chivalry.

पद्मावती--हला ! मा मा एव्वं। सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि। [हला ! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति।]

पद्मावती--सखी ! ऐसा मत कहो। आर्यपुत्र उदार ही हैं, जो अभी तक आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करते हैं।

Padmavati—Oh, no, do say so. The lord really courtesy, as he even now remembers the virtues of Vasavadatta.

वासवदत्ता--भद्दे अभिजणस्स सदिसं मन्दिदं। [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम्।]

वासवदत्ता--सौभाग्यवती ! (तुमने अपने) उच्च कुल के अनुरूप ही कहा।

Vasava.—Good madam, you have spoken in accordance with your noble birth.

राजा—उक्तं मया। भवानिदानीं कथयतु। का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा।

राजा--मैंने तो कह दिया। अब आप कहिये कि कौन आपको अधिक प्रिय है—उस समय की वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती ?

King—I have declared. You should tell me now, whom do you like, then her ladyship Vasavadatta or her present ladyship padmavati.

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो। [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः।]

पद्मावती--आर्यपुत्र भी वसन्तक हो गये।

Padmavati—The prince has become Vasantak now.

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण। उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ।
[किं मे विप्रलपितेन। उभे अपि तत्र भवत्यौ मे बहुमते।]

विदूषक—मेरे बकने से क्या? मुझे तो दोनों श्रीमतियाँ अत्यन्त प्रिय हैं।

Vidushaka—Tusk, what have I to do with idle talk. Both ladies must command my high esteem.

राजा—वैधेय! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे?

राजा—मूर्ख! मुझसे इस प्रकार जबर्दस्ती सुनकर अब तुम क्यों नहीं कहते?

King—Idiot having heard me speaking that through force you do not speak now?

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण? [किं मामपि बलात्कारेण?]

विदूषक—क्या मुझसे भी जबर्दस्ती (कहलाना चाहते हैं)?

Vidushaka—Will you make me speak forcibly?

राजा—अथ किम्, बलात्कारेण।

राजा—और क्या, जबर्दस्ती।

King—Yes, certainly, by force.

विदूषकः—तेण हि ण सक्कं सोदुं। [तेन हि न शक्यं श्रोतुम्।]

विदूषक—तब तो आप नहीं सुन सकते।

Vidushaka—Then you shall not hear.

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः। स्वैरं स्वैरमभिधीयताम्।

राजा—मान जाइये, महाब्राह्मण जी! मान जाइये। अपनी इच्छा से कहिये।

King—May be appeased, O great and holy man. And speak in perfect freedom.

टिप्पणी—(१) अदाक्षिण्यः—नास्ति दाक्षिण्यं यस्मिन् स अदाक्षिण्यः। दाक्षिण्य—नायक का सभी नायिकाओं के प्रति समान अनुराग। 'अनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः' साहित्यदर्पण। (२) सदाक्षिण्यः—दाक्षिण्येन सहितः इति सदाक्षिण्यः। यहाँ पद्मावती अपनी विशालहृदयता एवं कुलीनजनोचित ईर्ष्या से रहित भावना का परिचय देते हुए कहती है कि आर्यपुत्र अपनी मृत पत्नी

की स्मृति बनाये रखने के कारण अत्यन्त उदार हैं। तुम उनको अदाक्षिण्य मत कहो। (३) अभिजनस्य—कुल का। 'कुलान्यभिजनान्वयौ' इत्यमरः। इसमें 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से पाक्षिक षष्ठी हुई। (४) सदृशम्—अनुरूप। (५) मन्त्रितम्—कहा गया। (६) विप्रलपितेन—निरर्थक कथन। 'विप्रलापो विरुद्धोक्तावनर्थकवचस्यपि इति हैमः।' 'प्रलापोऽनर्थकं वचः' इत्यमरश्च। (७) वैधेय!—मूर्ख! 'मूर्खवैधेयबालिशाः' इत्यमरः। (८) महाब्राह्मणः—निन्दित ब्राह्मण या महापात्र जो प्रेतकर्म कराता है और उसका दान लेता है वैसे तो किसी शब्द के साथ महत् शब्द जुड़ने से उसकी उत्कृष्टता का बोध कराता है, किन्तु जिन शब्दों के साथ लगने से यह निन्दा का अर्थ देता है, वे ये हैं—'शंखे तैले तथा मांसे वैद्ये ज्यौतिषिके द्विजे। यात्रायां पथि निद्रायां महच्छब्दो न युज्यते॥' यहाँ राजा ने विदूषक को परिहास में महाब्राह्मण कहा किन्तु इस शब्द के अधम ब्राह्मण रूप अर्थविशेष से अनभिज्ञ विदूषक इसका अर्थ उदार ब्राह्मण समझ कर प्रसन्न हो गया और इसीलिए आगे उसके प्रश्न का उत्तर देने लगा। (९) स्वैरम्—इच्छानुसार। (१०) अभिधीयताम्—कहना चाहिए। अभि+धा का अर्थ कहना होता है। 'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते। प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।' अर्थात् उपसर्ग लगाने से धातु के अर्थ में बड़ा परिवर्तन हो जाता है।

विदूषकः—इदाणिं सुणादु भवं। तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा। तत्तहोदी पदुमावदी तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहंकारा महुरवाआ सदक्खिण्णा। अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ वासवदत्ता—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति। [इदानीं शृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहंकारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता—कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

संस्कृत टीका—इदानीम्—अधुना, भवान्, शृणोतु—आकर्णयतु स्वीयप्रश्नोत्तरमिति शेषः। तत्रभवती—माननीया, वासवदत्ता, मे—मम, बहुमता—अतीवमानास्पदम्। तत्रभवती—मान्या, पद्मावती—मगधराजकुमारी, तरुणी—युवती, दर्शनीया—सुन्दरी, अकोपना, कोप-हीना, अनहङ्कारा—अभिमानरहिता,

मधुरवाक्—मधुरभाषिणी, सदाक्षिण्या—उदारा ।(तत्रभवत्यां वासवदत्तायाम्) प्रथम्, अपरः—द्वितीयः, महान्, गुणः (आसीत् यत् सा) स्निग्धेन—सरसेन, भोजनेन—भोज्यपदार्थेन, मा—वसन्तक, प्रत्युद्गच्छति—अन्वेषयति, कुत्र नु—क्व नु, खलु, गतः—यातः, आर्यवसन्तकः इति ।

अनुवाद—अब आप सुनिये । मैं माननीया वासवदत्ता का अधिक आदर करता हूँ ? यद्यपि माननीया पद्मावती युवती, सुन्दर, क्रोधहीन, अभिमानरहित, मधुरभाषिणी तथा उदार हैं किन्तु वासवदत्ता जी में एक दूसरा बड़ा भारी गुण था कि सुस्वादु भोजन लेकर मुझे ढूँढ़ा करती थी कि आर्य वसन्तक कहाँ गये ।

Vidushaka—Listen then. Her ladyship, Vasavadatta, is highly esteemed by me. Her highness Padmavati is young, beautiful, free from anger, not egoistic, affable and full of courtesy. An other great quality of hers is that she (Vasavadatta) welcomes me with delicious food asking" "where has indeed the revered Vasantaka gone ?"

टिप्पणी—(१) अकोपना—क्रोधहीन । न कोपना अकोपना नञ् तत्पुरुष । कुप्+युच्+अन+टाप् (आ) स्त्रियाम् । (२) अनहंकारा—अभिमानरहित । अविद्यमानः अहंकारः यस्याः सा (ब० ब्री०) । (३) मधुरवाक्—प्रिय बोलने वाली । मधुरा वाक् यस्याः सा । स्निग्धेन—सरस । „स्निह्+क्त (त) । (४) अयं चापरो महान् गुण ··· ··—यहाँ भावार्थ यह है कि जैसे प्रतिदिन वासवदत्ता जो मुझे खोज-खोज कर स्वादिष्ट भोजन कराती थीं उसी तरह नित्य पद्मावती जी भी मुझे सुन्दर-सुन्दर पदार्थ खिलावें तो उन्हें भी मैं बहुत मानूँगा । (५) प्रत्युद्गच्छति—अन्वेषणपुरः सर सम्मुखमागत्य सम्भावयति । यहाँ भूत काल के अर्थ में लट् लकार हुआ है ।

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ ! सुमरेहि दाणि एदं । [भवतु भवतु, वसन्तक ! स्मरेदानीमेताम् ।]

वासवदत्ता—अच्छा अच्छा वसन्तक ! अब इसे याद करो ।

Vasava.—Well, let it be Vasantaka, remember her ladyship here.

राजा—भवतु, भवतु, वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

वासवदत्ता—(मन में) बस बस, मुझे विश्वास हो गया। अहा! आनन्द है, जो ऐसा वचन परोक्ष में सुना जाता है (अर्थात् पीठ पीछे ऐसा वचन सुनना प्रिय लगता है)।

Vasava.—(To herself) Let it be so. Well I am cheered. Oh, how sweet really. (Oh that) such a speech has to be heard incognito.

टिप्पणी—(१) अप्रत्यक्षम्—परोक्ष में, अनुपस्थिति में। यहाँ तात्पर्य यह है कि सामने तो ऐसे चाटु वचन सभी कहते हैं, परन्तु पीठ पीछे प्रशंसा विरले ही करते हैं। आर्यपुत्र ने मुझे मरी हुई समझ कर ही ऐसी बातें कही हैं। इसलिए उनकी बातों से मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा है।

विदूषकः—धारेदु, धारेदु भवं। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिसं दाणिं एवं। [धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः। ईदृशमिदानीमेतत्।]

विदूषकः—आप धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें। भवितव्यता टाली नहीं जा सकती। यह तो अब ऐसा ही है।

Vidushaka—Take courage, your honour, take courage. Fate is inevitable. It is thus now.

टिप्पणी—(१) धारयतु धारयतु—यह द्विरुक्ति दृढता सूचित करने के लिए है। 'धारयतु' में स्वार्थिक णिच् हुआ है। (२) अनतिक्रमणीयो हि विधिः—तात्पर्य यह है कि होनहार होकर रहता है। अब आपके भाग्य में ही पत्नी-वियोग लिखा था तो उसे कौन टाल सकता था। इसलिए आपको शोक नहीं करना चाहिए प्रत्युत धैर्य धारण करना चाहिए। न अतिक्रमणीयः इति अनतिक्रमणीयः नञ् समास।

राजा—वयस्य! न जानाति भवानवस्थाम्। कुतः—

राजा—मित्र! आप मेरी दशा को नहीं जानते हैं। क्योंकि—

King—Friend, you do not realise my present condition.

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह[१] बाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥७॥

---

१. विमुच्येत—पाठान्तर। यह अधिक शुद्ध है क्योंकि संसार में प्रिय के वियोग में शीघ्र बहाये जाने का नियम है।

अन्वय—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्, स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति। तु यात्रा एषा यत् इह बाष्पं विमुच्य प्राप्तानृण्या बुद्धिः प्रसादं याति ॥७॥

संस्कृत टीका—बद्धमूलः—बद्धं मूलं यस्य स दृढ इत्यर्थः, अनुरागः—प्रेम, त्यक्तुं—विस्मर्तुं, दुःखम्—अतिकठिनम्, स्मृत्वा स्मृत्वा—पुनः पुनः तत्प्रेम संस्मृत्य, दुःखं—कष्टं, नवत्वं—नवीनतां, याति—गच्छति। तु—तथापि, यात्रा—लोकव्यवहारः, एषा—इयम्, यत्, इह—अत्र, बाष्पम् अश्रुजलम्, विमुच्य—विसृज्य, प्राप्तानृण्या—प्राप्तम् लब्धम् आनृण्यम् ऋणस्य अभावः तत्प्रेम्णो निष्कृतिर्यया सा तथाभूता, बुद्धिः—मनः, प्रसादं—प्रसन्नताम् शान्तिमिति यावत्, याति—प्राप्नोति। (अयं भावः—वासवदत्ताविरहाकुलः उदयनः वसन्तकं कथयति—मित्र! अहं कथमपि वासवदत्तां स्मृतिपथादपनेतुं न शक्नोमि। यतो हि प्रगाढं प्रेम दुस्त्यजं भवति। तच्च प्रेमपात्रस्य स्मरणेन नवं दुःखं ददाति। तथापीयं लोकरीतिर्यत् मृतं प्रेमपात्रमुद्दिश्य जना रोदन्ति। रोदनेन दुःखभारो लघूभवति तथा प्रियजनप्रेमरूपस्य ऋणस्य निर्यातनेन मनः प्रसन्नतामधिगच्छति। ॥७॥

अनुवाद—जमी हुई जड़ वाले प्रेम को भूल जाना बड़ा कठिन है। बार-बार उसका स्मरण करने से दुःख नया हो जाता है। तो भी व्यवहार यही है कि यहाँ (इस लोक में) आँसू बहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ मन शान्ति प्राप्त कर लेता है ॥७॥

It is difficult to abondon deep rooted love. Its repeated remembérance causes new pain. Life is such that after shedding tears and paying the debt, does the mind get calmness.

टिप्पणी—(१) दुःखम्—यहाँ 'अनुरागः' कर्ता के अनुसार 'दुःखम्' की जगह 'दुष्करः' प्रयोग होना चाहिए था, ऐसा कोई-कोई आक्षेप करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि दुःख शब्द नित्य नपुंसकलिंग है। अतएव यह 'वेदाः प्रमाणम्' की तरह अपने लिंग और वचन को नहीं छोड़ सकता। अथवा कहीं-कहीं लिंग और वचन का प्रयोग सम्बद्ध संज्ञा से स्वतन्त्र होकर भी किया जाता है—'लिंगवचनस्यापि सामान्योपक्रमात्' अतएव 'तत्त्वम् आलिङ्गितु पवनः' यह कालिदास का प्रयोग और 'दास्यं स्वमांसादिभिरपि शुल्कं प्रतिहन्तुम्' यह महामात्यकार का प्रयोग संगत होता है। (२) स्मृत्वा स्मृत्वा—यहाँ क्त्वा प्रत्यय चिन्तनीय है। क्योंकि 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' सूत्र से समानकर्तृक धात्वर्थ

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक ! मैं यह सब बातें देवी वासवदत्ता से कह दूँगा।

King—Well, Vasantaka, I shall tell all this to queen Vasavadatta.

विदूषकः—अविहा, वासवदत्ता। कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता। [अविहा, वासवदत्ता। कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।]

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ! कहाँ वासवदत्ता ? वासवदत्ता को मरे बहुत दिन हो गये।

Vidushaka—Alas, Vasavadatta, where is Vasavadatta, Vasavadatta has long since died.

राजा—(सविषादम्) एवम् उपरता वासवदत्ता।

राजा—(शोक के साथ) ऐसा, वासवदत्ता मर गई।

King—(With sorrow) Yes, Vasavadatta is dead.

टिप्पणी—(१) भवतु भवतु……—यहाँ पुनः पुनः होने के अर्थ में द्वित्व हुआ। इस वाक्य का भावार्थ यह है कि मेरी अनुपस्थिति में तुम पद्मावती का ही गुण-वर्णन किया करो, क्योंकि वही इस समय तुम्हें स्वादिष्ठ भोजन खिलाने में समर्थ है। (२) देव्यै वासवदत्तायै—यहाँ 'अकथितं च' सूत्र से कर्मप्रवचनीय-संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए थी, किन्तु 'तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय' की तरह सम्प्रदानत्व की विवक्षा में चतुर्थी हुई। (३) सविषादम्—दुःख के साथ। विषादेन सह वर्तमानम्। (४) उपरता—मर गई। उप+रम्+क्त (त)+टाप् (आ)। स्त्रियाम्।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥६॥

अन्वय—अनेन परिहासेन त्वया मे मनः व्याक्षिप्तम्। ततः पूर्वाभ्यासेन इयं वाणी तथैव निःसृता ॥६॥

संस्कृत टीका—अनेन—पूर्वोक्तेन, परिहासेन—नर्मभाषितेन, त्वया—वसन्तकेन, मे—मम, मनः—चित्त, व्याक्षिप्तं—चञ्चलीकृतम्। ततः—तस्मात् हेतोः, पूर्वाभ्यासेन—प्राक्कालिकसंस्कारबलात्, इयम्—एषा, वाणी—वाक्

'सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै' इत्येवंरूपा, तथैव—वासवदत्ताजीवित-कालसदृशी एव, निःसृता—निर्गता ॥६॥

अनुवाद—इस परिहास से तुमने मेरे मन को विक्षिप्त बना दिया। इसलिए पहले के अभ्यास से वैसी ही यह बात निकल पड़ी ॥६॥

With that *joke of yours my mind was distracted* by *you*. And then those words came out of former habit.

टिप्पणी—(१) परिहासेन—'आपको वासवदत्ता और पद्मावती में से कौन अधिक प्रिय है' इस प्रकार के नर्म वचन से। (२) व्याक्षिप्तम्—मुग्ध कर दिया। क्योंकि तुम्हारे इस प्रश्नोत्तर से मेरा मन वासवदत्तामय हो गया था और अनुभव करने लगा था कि मैं प्राणप्रिया वासवदत्ता के साथ रह रहा हूँ। वि+आङ्+क्षिप्+क्त(त)—'त्वया' इसका अनुक्तकर्त्ता है तथा 'मनः' उक्तकर्म है। (३) पूर्वाभ्यासेन—पहले के अभ्यास के कारण। चूँकि वासवदत्ता के जीवनकाल में बहुधा तुम्हारा अविनय देखकर मैं झट कह दिया करता था कि मैं वासवदत्ता जी से कह दूँगा। (४) निःसृता—निस्+सृ+क्त (त) कर्त्तरि+टाप् (आ)। स्त्रियाम् इस श्लोक में अनुष्टुप् छंद है। तल्लक्षणं—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्। द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥ यह समवृत्त छन्द है। ॥६॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ। [रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः।]

पद्मावती—सुन्दर कथा-प्रसंग को (इस) दुष्ट ने बिगाड़ दिया।

Padmavati—Truly a charming episode is spoilt by that wicked man.

टिप्पणी—(१) नृशंसेन—क्रूर या निर्दयी ने। 'नृशंसो घातुकः क्रूरः' इत्यमरः। (२) विसंवादितः—विच्छिन्न या विघ्नित कर दिया। वि+सम्+वद्+णिच्+क्त(त) कर्मणि। *यदि यह वासवदत्ता की मृत्यु की याद न दिलाता तो यह कथा अभी इसी मनोहर रूप में चलती रहती अथवा सुखपूर्वक समाप्त हो जाती। परन्तु इस निगोड़े ने सारा मजा किरकिरा कर दिया।*

वासवदत्ता—[आत्मगतम्] भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि। अहो! पिअं णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि। [भवतु-भवतु, विश्वस्तास्मि। अहो! प्रियं नाम, ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते।]

वासवदत्ता—(मन में) बस बस, मुझे विश्वास हो गया। ग्रहा! ग्रानन्द है, जो ऐसा वचन परोक्ष में सुना जाता है (अर्थात् पीठ पीछे ऐसा वचन सुनना प्रिय लगता है)।

Vasava.—(To herself) Let it be so. Well I am cheered. Oh, how sweet really. (Oh that) such a speech has to be heard incognito.

टिप्पणी—(१) अप्रत्यक्षम्—परोक्ष में, अनुपस्थिति में। यहाँ तात्पर्य यह है कि सामने तो ऐसे चाटु वचन सभी कहते हैं, परन्तु पीठ पीछे प्रशंसा विरले ही करते हैं। आर्यपुत्र ने मुझे मरी हुई समझ कर ही ऐसी बातें कही हैं। इसलिए उनकी बातों से मुझे बड़ा ग्रानन्द मिल रहा है।

विदूषकः—धारेदु, धारेदु भवं। अणदिक्कमणीओ हि विही। ईदिसं दाणिं एवं। [धारयतु धारयतु भवान्। अनतिक्रमणीयो हि विधिः। ईदृशमिदानीमेतत्।]

विदूषकः—आप धैर्य धारण करें, धैर्य धारण करें। भवितव्यता टाली नहीं जा सकती। यह तो अब ऐसा ही है।

Vidushaka—Take courage, your honour, take courage. Fate is inevitable. It is thus now.

टिप्पणी—(१) धारयतु धारयतु—यह द्विरुक्ति दृढ़ता सूचित करने के लिए है। 'धारयतु' में स्वार्थिक णिच् हुआ है। (२) अनतिक्रमणीयो हि विधिः—तात्पर्य यह है कि होनहार होकर रहता है। अब आपके भाग्य में ही पत्नी-वियोग लिखा था तो उसे कौन टाल सकता था। इसलिए आपको शोक नहीं करना चाहिए प्रत्युत धैर्य धारण करना चाहिए। न अतिक्रमणीयः इति अनतिक्रमणीयः नञ् समास।

राजा—वयस्य ! न जानाति भवानवस्थाम्। कुतः—

राजा—मित्र ! आप मेरी दशा को नहीं जानते हैं। क्योंकि—

King—Friend, you do not realise my present condition,

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह[1] बाष्पं प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥७॥

१. विमुच्येत—पाठान्तर। यह अधिक शुद्ध है क्योंकि संसार में प्रिय के वियोग में आँसू बहाये जाने का नियम है।

अन्वय—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम्, स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति। तु यात्रा एषा यत् इह बाष्पं विमुच्य प्राप्तानृण्या बुद्धिः प्रसादं याति ॥७॥

संस्कृत टीका—बद्धमूलः—बद्धं मूलं यस्य स दृढ इत्यर्थः, अनुरागः—प्रेम, त्यक्तुं—विस्मर्तुं, दुःखम्—अतिकठिनम्, स्मृत्वा स्मृत्वा—पुनः पुनः तत्प्रेम संस्मृत्य, दुःख—कष्टं, नवत्वं—नवीनतां, याति—गच्छति। तु—तथापि, यात्रा—लोकव्यवहारः, एषा—इयम्, यत्, इह—अत्र, बाष्पम् अश्रुजलम्, विमुच्य—विसृज्य, प्राप्तानृण्या—प्राप्तम् लब्धम् आनृण्यम् ऋणस्य अभावः तत्प्रेम्णो निष्कृतिर्यया सा तथाभूता, बुद्धिः—मनः, प्रसादं—प्रसन्नताम् शान्तिमिति यावत्, याति—प्राप्नोति। (अयं भावः—वासवदत्ताविरहाकुल. उदयनः वसन्तक कथयति—मित्र! अहं कथमपि वासवदत्तां स्मृतिपथादपनेतुं न शक्नोमि। यतो हि प्रगाढ प्रेम दुस्त्यजं भवति। तच्च प्रेमपात्रस्य स्मरणेन नवं दुःखं ददाति। तथापीयं लोकरीतिर्यत् मृतं प्रेमपात्रमुद्दिश्य जना रोदन्ति। रोदनेन दुःखभारो लघुभवति तथा प्रियजनप्रेमरूपस्य ऋणस्य निर्यातनेन मनः प्रसन्नताम-धिगच्छति। ॥७॥

अनुवाद—जमी हुई जड वाले प्रेम को भूल जाना बड़ा कठिन है। बार-बार उसका स्मरण करने से दुःख नया हो जाता है। तो भी व्यवहार यही है कि यहाँ (इस लोक में) आँसू बहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ मन शान्ति प्राप्त कर लेता है ॥७॥

'is repeated
shedding
ess.

टिप्पणी—(१) दुःखम्—यहाँ 'अनुरागः' कर्ता के अनुसार 'दुःखम्' की जगह 'दुःखकरः' प्रयोग होना चाहिए था, ऐसा कोई-कोई आक्षेप करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि दुःख शब्द नित्य नपुंसकलिंग है। अतएव यह 'वेदाः प्रमाणम्' की तरह अपने लिंग और वचन को नहीं छोड़ सकता। अथवा कहीं-कहीं लिंग और वचन का प्रयोग सम्बद्ध संज्ञा से स्वतन्त्र होकर भी किया जाता है—'लिङ्गवचनस्यापि सामान्योपक्रमात्' अतएव 'नक्तम् आलिलिङ्गु पवनः' यह कालिदास का प्रयोग और 'यस्य स्वमामार्दिभिरपि शक्यं प्रतिहन्तुम्' यह महाभाष्यकार का प्रयोग संगत होता है। (२) स्मृत्वा स्मृत्वा—यहाँ क्त्वा प्रत्यय चिन्तनीय है। क्योंकि 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' सूत्र से समानकर्तृक धात्वर्थ

रहने पर क्त्वा होता है। यहाँ स्मृ और या धातु भिन्न-कर्तृक हैं। 'स्मृत्वा' के आगे 'व्याकुलीभवतः' या 'स्थितस्य' इस प्रकार के पद का आक्षेप कर लेने से काम चल सकता है। अतएव 'रथे च वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते' इत्यादि श्लोकों में प्रयोग-संगति बैठती है। इसी प्रकार आगे 'विमुच्य' में भी अध्याहार से काम चलाना चाहिए। (३) यात्रा त्वेषा—यहाँ तात्पर्य यह है कि इस लोक में आँसू बहाने से मन उऋण होकर शान्ति का अनुभव करता है। क्योंकि मनुष्य अपने बिछुड़े प्रिय जन के ऋण से ऋणी हो जाता है। जब वह उसकी स्मृति में आँसू बहा लेता है तब उसका ऋण चुक जाता है और मन में शान्ति मिलती है। इसलिए शोक-सन्तप्त को अवश्य रो लेना चाहिए। भवभूति ने लिखा है 'पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते॥' (४) प्राप्तानृण्या—ऋण से मुक्ति। न ऋणम् अनृणम् (नञ् तत्पु०) तस्य भावः आनृण्यम्। प्राप्तम् आनृण्यं यया सा (ब० व्री०)। इस श्लोक में शालिनी छंद है॥७॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। (निष्क्रान्तः) [अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्र भवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

विदूषकः—महाराज का मुँह आँसू से भीग गया है। मैं तब तक मुँह धोने के लिए जल ले आता हूँ। (चला गया।)

Vidushaka—(Aside) His countenance is wet with falling tears I will fetch water to efface the stain. (Exit).

पद्मावती—अय्ये! गप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं जावणिक्कमह्म। [आर्ये! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम्। यावन्निष्क्रामामः।]

पद्मावती—आर्ये! आर्यपुत्र का मुँह आँसुओं से व्याप्त होने के कारण मानो वस्त्र से ढँक गया है। इस बीच हम लोग निकल चलें।

Padmavati—Lady, the King is weeping and his face is hidden in his robe, Let us go hence.

वासवदत्ता—एव्वं होदु! अहवा चिट्ठ तुवं। उक्कण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ, अजुत्तं णिग्गमणं। अहं एव्व गमिस्सं। [एवं भवतु। अथवा तिष्ठ

त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झितवायुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि ।]

वासवदत्ता—ऐसा ही हो । अथवा तुम रहो । उत्कंठा से युक्त पति को छोड़कर चला जाना उचित नहीं है । मैं ही जाऊँगी ।

Vasava.—Let it be so or rather wait; it is improper to go leaving the lord in sorrow. I alone shall go.

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ। [सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।]

दासी—देवी जी ठीक कह रही हैं । राजकुमारी स्वामी के पास जायँ ।

Maid—The lady says the right thing. Go near him princess.

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

पद्मावती—क्या मैं (उनके निकट) जाऊँ ?

Padmavati—Should I go near him ?

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला ! प्रविश ।]

वासवदत्ता—सखी ! जाओ । (यह कहकर चली गई ।)

Vasava.—Friend go (saying this she goes away.)

विदूषकः—(प्रविश्य) (नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा) एसा तत्तहोदी पदुमावदी ? [एषा तत्रभवती पद्मावती ?]

विदूषक—(प्रवेश करके) (कमलिनी के पत्ते में जल लेकर) ये माननीया पद्मावती जी हैं ?

(entering), Vidushaka—(With water in a lotus led) Here is her ladyship Padmavati.

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ ! किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक ! किमेतत् ?]

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

Padmavati—Revered Vasantak, what is this ?

विदूषकः—एदं इदं। इदं एदं । [एतदिदम् । इदमेतत् ।]

विदूषक--यह--यह--यह…।

Vidushaka—This, this, this.

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु ।[भणतु भणत्वार्यो भणतु ।]

पद्मावती--कहिये कहिये, आप कहिये ।

Padmavati—Tell me, tell me, you say.

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेणु सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गह्णदु होदी इदं मुहोदअं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं तत्रभवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।]

संस्कृत टीका--भवति--देवि !, वातनीतेन—वायुचालितेन, काशकुसुमरेणुना--काशपुष्पपरागेण, अक्षिनिपतितेन—नयनाभ्यन्तरं गतेन, साश्रुपातम्—अश्रुपातसमन्वितं, खलु--निश्चयेन, तत्रभवतः—महाराजस्य, मुखम्--आननं (विद्यते) । तत्—तस्मात्, भवती—श्रीमती, इदम्—एतत्, मुखोदकं—मुखशुद्धिजलं, गृह्णातु—धारयतु ।

अनुवाद—विदूषक—देवि ! कास के फूल की धूल हवा में उडकर महाराज की आँखों में पड जाने से आँसू बह आये हैं। इसलिए उनके मुँह धोने का यह जल आप लीजिये ।

Vidushaka—Your ladyship, His honour's face became full of tears by the wind-blown, pollen of the Kasha flowers falling in his eyes. therefore madam, take this water for washing his face.

टिप्पणी—(१) अश्रुपातक्लिन्नम्—आँसुओं के गिरने से भीगा हुआ। अश्रूणां पातः, तेन क्लिन्नम् । √क्लिद्+क्त(त), 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' इति सूत्रेण तकारदकारयोर्नत्वम् । (२) मुखोदकम्—मुँह धोने का पानी। मुखप्रक्षालनोदकम् मुखोदकम् मध्यमपदलोपी समास । बाष्पाकुलपटान्तरितम्—बाष्पेण—अश्रुणा आकुलं—व्याप्तम्, अतः पटेन—वस्त्रेण इव अन्तरितम्—आच्छादितम्, बाष्पाकुलं च तत् पटान्तरितं बाष्पाकुलपटान्तरितम् विशेषणोभयपद कर्मधारय समास कुब्जखञ्जवत् । (३) उत्कण्ठितम्—उत्कण्ठा+इतच् 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इत्यनेन । (४) उज्झित्वा—त्यक्त्वा । (५) एतत् इदम् इदम् एतत्—यहाँ पद्मावती के अप्रत्याशित दर्शन से विदूषक घबड़ा गया है। इसलिए पद्मावती के प्रश्न का उत्तर वह अस्फुट रूप में 'यह-यह …'कहकर देता

है। अथवा वह इतना प्रत्युत्पन्नमति है कि पद्मावती को भुलावा देने के लिए हास्य का पुट देकर उत्तर देता है—(६) |एतत्—यह। इदम्—यह अर्थात् जल है। इदम्—यह। एतत्—यह अर्थात् जल ही है। अथवा एतत्—नलिनी के पत्ते का दोना और इदम्—जल।

पदमावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिण्णो एव्व होदि (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो। इदं मुहोदअं। [अहो! सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। जयत्वार्यपुत्रः। इदं मुखोदकम्।]

पद्मावती—(मन में) अहो! चतुर व्यक्ति का सेवक भी चतुर ही होता है। (समीप जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह मुँह धोने का जल है।

Padmavati—(aside) A clever man has clever followers, (going near) Ah hail my husband. Here is water to wash your face.

टिप्पणी—(१) अहो! सदाक्षिण्यस्य...—यहाँ पद्मावती अपने मन में कहती है कि जैसा चतुर स्वामी है वैसा ही नौकर भी। क्योंकि स्वामी अपने मन का भाव किसी पर प्रकट नहीं होने देते। उसी तरह उनका सेवक कितना चतुर है कि उसने सत्य बात को छिपा कर अपने स्वामी की बात रखी है। यदि सेवक मूर्ख होता तो झट से कह देता कि वासवदत्ता की याद में रो रहे हैं। तब कितनी विषम स्थिति हो जाती? उसने अपने स्वामी को ऐसी स्थिति से बचा लिया है, इसलिए निःसन्देह वह भी स्वामी की तरह चतुर है।

राजा—अये! पद्मावती। (अपवार्य) वसन्तक! किमिदम्?

राजा—अरे! पद्मावती! (मुँह फेरकर) वसन्तक! यह क्या?

King—Padmavati? (aside to Vidushaka) How is this?

विदूषकः—(कर्णे) एव्वं विअ। [एवमिव]

विदूषक—(कान में) इस प्रकार।

Vidushaka.—(whispers in the King's ear then aside) that's how I managed it.

राजा—साधु वसन्तक! साधु। (आचम्य) पद्मावती! आस्यताम्।

राजा—वाह वसन्तक! वाह। (मुँह धोकर) पद्मावती! बैठ जाओ।

King—Well done Vasantak, well done (washing the face). Padmavati, sit down.

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा । (बैठती है।)

Padmavati—As my lord wills.

राजा—पद्मावती !

राजा—पद्मावती !

King.—Padmavati.

टिप्पणी—(१) अपवार्य—पद्मावती की तरफ से मुँह घुमाकर विदूषक की ओर करके । नाट्यशास्त्र में आवार्य या अपवारित शब्द पारिभाषिक है । इसका अर्थ होता है—दूसरे को सुनने न देने के लिए दूसरी तरफ घूम जाना—'रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्याऽपवारितम्' । (२) एवमिव—ऐसा । इव शब्द अलंकारार्थ है । यहाँ विदूषक ने राजा के कान में यही कहा कि मैंने पद्मावती जी से आपकी आँखों में काश-पुष्प की धूल पड़ जाने से आँसू आ जाने की बात बतायी है, इसलिए आप भी अपने रोने का कारण यही बताइयेगा ।

शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥८॥

अन्वय—भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखम् साश्रुपातम् (अस्ति) ॥८॥

संस्कृत टीका—भामिनि !—सुन्दरि ! शरच्छशाङ्कगौरेण—शरत्कालीन-चन्द्रवत् धवलेन, वाताविद्धेन—वातेन वायुना आविद्धेन चालितेन, काशपुष्प-लवेन—काशकुसुमकणेन, इदम्—एतत्, मम—उदयनस्य, मुखम्—आननम्, साश्रुपातम्—अश्रुपातेन अश्रुजलपतनेन सहितम् (अस्ति) ।

अनुवाद—सुन्दरी ! शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान उज्ज्वल काश-पुष्प का कण हवा में उड़कर आँखों में पड जाने से मेरे मुँह पर आँसू ढुलक गये थे ॥८॥

My face is bedewed with tears, oh lovely woman, by the wind flown pollen of the kasha flowers, white like the autumnal moon.

टिप्पणी—(१) भामिनि !—सुन्दरी स्त्री तथा क्रोध करने वाली स्त्री को भी भामिनी कहते हैं । 'कोपना सैव भामिनी' इत्यमरः । (२) शरच्छशाङ्क-

गौरेण—शरदः शशाङ्कः षष्ठी तत्पुरुष, शरच्छशाङ्क इव गौरः उपमित समास तेन । (३) वाताविद्धेन—वायु द्वारा चालित होकर । (४) आविद्ध–कम्पित, चालित । 'आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितम्' इत्यमरः । (५) काशपुष्पलवेन—काश-पुष्प के कण से । काशस्य पुष्पम् तस्य लवः तेन (ष० त०) करणे या हेतु में तृतीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है । यह अनुष्टुप् छंद है ।।८।।

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ।।९।।

अन्वय—नवोद्वाहा इयं बाला सत्यं श्रुत्वा व्यथा व्रजेत् । इयं कामं धीरस्वभावा तु स्त्रीस्वभावः कातरः ।।९।।

संस्कृत टीका—नवोद्वाहा—नवः नूतनः उद्वाहः विवाहः यस्याः सा तथाभूता, इयं—दृश्यमाना, बाला—षोडशी (पद्मावती), सत्यं—तथ्यं, श्रुत्वा—आकर्ण्य, व्यथा—वेदना, व्रजेत्—गच्छेत् । इयं—पद्मावती, कामं—पर्याप्तं, धीरस्वभावा—धीरः गम्भीरः स्वभावः प्रकृतिः यस्याः सा तादृशी (अस्ति), तु—किन्तु, स्त्रीस्वभावः—स्त्रीणाम् नारीणां स्वभावः प्रकृतिः, कातरः—अधीरः (भवति) ।।९।।

अनुवाद—(मन में) नई ब्याही हुई यह बाला सच्ची बात (रोने का वास्तविक कारण) सुनकर पीडा अनुभव करेगी । यद्यपि यह बड़ी गम्भीर प्रकति की है, किन्तु नारियों का स्वभाव तो अधीर होता है ।।९।।

(Aside) she is but a child, and newly married, and the truth would grieve her. It's brave heart and yet it is a woman's, there fore by nature it is timid.

टिप्पणी—(१) नवोद्वाहा——नवविवाहिता, नवोढा । (२) बाला—सोलह वर्ष तक की अवस्था वाली स्त्री । 'आषोडशाद्भवेद्बाला तरुणी तत उच्यते' । (३) कामम्—पर्याप्त । 'काम प्रकाम पर्याप्तं निकामेष्ट यथेप्सितम्' इत्यमरः । (४) कातर—अधीर, चपल । 'अधीरः कातरः' इत्यमरः । यहाँ अनुष्टुप् छंद है ।।९।।

विदूषकः—उइदं तत्तहोदी मग्रधराअसस अवाहणकाले भअन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं । सअआरो हि णाम सअआरेण पडिच्छिदवो

प्पीदिं उप्पादेदि। ता उट्ठेदु दाव भवं। [उचितं तत्रभवतो मगध-राजस्यापरह्णकाले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम्। सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति। तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान्।]

संस्कृत टीका—तत्रभवतः—माननीयस्य, मगधराजस्य—मगधेश्वरस्य, अपराह्णकाले—दिनस्य चतुर्थभागे, भवन्तम्, उदयनम्, अग्रतः कृत्वा—पुरो विधाय, सुहृज्जनदर्शनम्—बन्धुजनसाक्षात्कारः, उचितम्—योग्यम् (अस्ति)। हि—निश्चयेन, सत्कारः—सम्मानः, सत्कारेण—सम्मानेन, प्रतीष्टः—स्वीकृतः, प्रीतिम्—तोषम्, उत्पादयति—उद्भावयति। तत्—तस्मात् कारणात्, भवान् —महाराजः, उत्तिष्ठतु—उत्थानं करोतु।

विदूषक—माननीय मगधराज (दर्शक) ने आपको आगे करके अपराह्ण में मित्र-मण्डली से मिलने का समय तय किया है। क्योंकि यह निश्चित एवं प्रसिद्ध है कि सत्कार का बदला सत्कार से दिये जाने पर प्रीति उत्पन्न करता है। इसलिए आप उठें।

Vidushaka—It would be proper, if his honour, the King of Magadha sees his friends this afternoon beginning from your honour, attention (सत्कार) begets love if received with courtesy. Therefore rise, your honour.

टिप्पणी—(१) अपराह्णकाले—अह्नः अपरम् इति अपराह्णः 'पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे' इति सूत्रेण एकदेशिसमासः, 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' इति सूत्रेण अह्नादेशः 'अह्नोऽदन्तात्' इति सूत्रेण नस्य णत्वम्। अपराह्णस्य कालः अपराह्णकालः, तस्मिन्। (२) सत्कारो हि नाम···—यहाँ विदूषक राजा को पद्मावती के पास से ले जाना चाहता है, इसलिए वह कहता है कि आज दोपहर के बाद मगधराज आपको आगे करके अपने मित्रों से भेंट करेंगे। आप मगधेश्वर के इस आदर को सादर ग्रहण करें। क्योंकि आदर के साथ स्वीकार किया हुआ आदर प्रेम उत्पन्न करता है। इसलिए आप उठिये, चलिये।

राजा—बाढम्। प्रथमः कल्पः। (उत्थाय)

राजा—हाँ, यह तो पहला काम है। (उठकर)

King—This is an excellent idea. (Rising).

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः १०॥

(निष्क्रान्तः सर्वे ।) इति चतुर्थोऽङ्कः

(सब का प्रस्थान ।) चौथा अंक समाप्त ।

अन्वय—विशालानां गुणानां वा सत्काराणां च कर्तारःलोके नित्यशः सुलभाः, तु विज्ञातारः दुर्लभाः ॥१०॥

संस्कृत टीका—विशालानाम्—अतिमहताम्, गुणानां—परोपकारादिसत्कार्याणां, वा—तथा, (विशालानां) सत्काराणां—परपूजाभिनन्दनादीनां च, कर्तारः—सम्पादयितारः, लोके—जगति, नित्यशः—सततं प्रतिदिनमिति यावत्, सुलभाः—सुप्राप्याः(सन्ति)तु—परन्तु, विज्ञातारः—विशेषेण ज्ञातारःगुणग्राहिण इति यावत्, दुर्लभाः—दुष्प्राप्याः(भवन्ति) । (अयं भावः—इह संसारे उपकर्तारः तथा सत्कर्तारः बहवः उपलभ्यन्ते । परं परकृतोपकाराणाम् परकृतसत्काराणां च आदर्तारः विरलाः दृश्यन्ते । अतः सम्प्रति मगधराजसत्कारमादर्तुं मया तत्सन्निधौ अवश्यं गन्तव्यम् ॥१०॥

It is easy to find people possessed of noble virtues and showing courtesy but it is difficult to find those who admire (virtues and courtesy). (Excuent omnes) Here ends Act IV.

अनुवाद—(परोपकार आदि)अत्यन्त महान् गुणों एवं सत्कारों के करने वाले लोग तो ससार मे नित्य मिल जाते हैं, परन्तु (उन गुणों तथा सत्कारों के जानने वाले(अर्थात् आदर पूर्वक स्वीकार करने वाले लोग) कम मिलते हैं॥१०॥

(सबका प्रस्थान ।) चौथा अंक समाप्त ।

टिप्पणी—(१) प्रथमः कल्पः—मुख्य या प्रधान कार्य । 'मुख्यः स्यात् प्रथमः कल्पः' इत्यमरः । (२)गुणानाम् सत्काराणाम्—यहाँ 'कर्तारः' के योग में 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से कर्ता में षष्ठी हुई । इस श्लोक में वा शब्द और च शब्द समुच्चयार्थक है । 'विशालानाम्' का अन्वय 'गुणानाम् और 'सत्काराणाम्' दोनों से है । इस श्लोक में प्रस्तुत सत्कार ज्ञान के साथ अप्रस्तुत गुणज्ञानादि के प्रकाशन से दीपकालङ्कार है । तल्लक्षणम् साहित्यदर्पणे—अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते । अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् । अनुष्टुप् छंद है ॥१०॥

अथ पञ्चमोऽङ्कः
Act V.

(राजा पद्मावती की शिरोव्यथा की सूचना पाकर समुद्रगृह में जाते हैं और वहाँ रोगशय्या को रिक्त पाकर उस पर लेट जाते हैं। विदूषक के कम्बल लाने के लिए बाहर जाने पर वासवदत्ता भी सूचना मिलने से वहाँ आ जाती है और पद्मावती के धोखे राजा के बगल में लेट जाती है। उसके हस्तस्पर्श से राजा की निद्रा भंग होती है। तब तक वह निकल जाती है। वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ता है पर टक्कर खाकर गिर जाता है। इतने में उसे समाचार मिलता है कि सेनापति रुमण्वान् मगधराज की सहायता से शत्रु आरुणि पर चढ़ाई करने जा रहा है। इस पर महाराज उदयन भी युद्ध में भाग लेने के लिए बाहर चल पड़ते हैं।)

(ततः प्रविशति पद्मिनिका।)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं। [मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम्।]

(तदनन्तर पद्मिनिका का प्रवेश।) पद्मिनिका—मधुकरिका ! मधुकरिका ! जल्दी तो आओ।

(Then enter Padminik› Padminika—Come, Madhukarika, come here at once.

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इअम्हि। किं करीअदु ? [हला ! इयमस्मि, किं क्रियताम् ?]

(प्रवेश करके) मधुरिका—सखी ! यह मैं हूँ, क्या करूँ ?

(Entering) Madhukarika—Well, here I am, Padminika, what shall I do ?

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खीविदेत्ति [हला। किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।]

मधुकरिका—सखी ! क्या तुम नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती सिरदर्द से पीड़ित हैं।

Padminika—Friend do you not know that princess Padmavati is suffering from headache ?

मधुकरिका—हद्धि। [हा धिक्।]

मधुकरिका—हाय ! हाय !

Madhukarika—Oh what a pity.

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्यं आवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दायस्व केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । स्वयमेवागमिष्यति ।]

पद्मिनिका—सखी ! जल्दी जाओ, आर्या आवन्तिका को बुला लाओ। केवल राजकुमारी को सिर-पीड़ा ही (उनसे) बताना। वे स्वयं चली आएँगी।

Padminika—Run then and call the lady of Avanti, Just inform her that the princess has a headache, and she will come here of her own accord.

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला ! किं सा करिष्यति ?]

मधुकरिका—सखी ! वे क्या करेंगी ?

Madhukarika—Well, what will she do ?

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहिं कहाहिं भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि । [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिः भर्तृदारिकाया शीर्षवेदनां विनोदयति ।]

पद्मिनिका—वे इस समय सुन्दर कथाओं से राजकुमारी का सिरदर्द दूर करेंगी।

Padminika—She will ally the headache of the princess by interesting stories.

मधुकरिका—जुज्जइ। कहिं सअणीयं रइदं भट्टिदारिआए ? [युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

मधुकरिका—ठीक है। राजकुमारी की शय्या कहाँ लगी है ?

Madhukarika—That will be *splendid*. But where has the Princess been laid ?

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअं अण्णेसामि । [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

पद्मिनिका—समुद्रगृह मे शय्या बिछी है। अब तुम जाओ। मैं भी स्वामी से निवेदन करने के लिए आर्य वसन्तक को ढूंढ़ती हूं।

Padminika—I expect the bed is spread in the summer house. You go now. I shall also seek the noble Vasantaka for informing the lord.

मधुकरिका—एव्वं होदु। (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु।]

मधुकरिका—ऐसा ही हो (चल देती है।)

Madhukarika—Let it be so (exit.)

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं प्रेक्षे ?]

पद्मिनिका—इस समय मे आर्य वसन्तक को कहां देखूं ?

Padminika—And where shall I find noble Vasantaka now ?

टिप्पणी—(१) आवन्तिकाम्—मालव की रहने वाली को। (२) शब्दायस्व—आवाज दो। शब्दं करोति इति शब्दायते, शब्द+क्यङ् 'शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' इति सूत्रेण, ततः लट्—त। इसी नामधातु के लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन मे 'शब्दायस्व' रूप बनता है। (३) विनोदयति—दूरी करिष्यति वा लघूकरिष्यति। अत्र वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट् (४) समुद्रगृहके—जल-यन्त्रों द्वारा तापनियन्त्रित गृह। 'समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्' इति हारावली। आजकल इसी समुद्रगृह को अंग्रेजी भाषा में 'एअरकन्डिशन' कहते हैं। (५) शयनीयम्—शय्या। शेते अस्मिन्, शी+अनीयर्। (६) रचितम्—बिछी हुई है। (७)स्तीर्णा—बिछायी हुई। √स्तृ+क्त (त), 'ॠत इद्धातोः' इति सूत्रेण इत्वम्, रपरः, दीर्घः, 'रदाभ्याम्'—इत्यादि सूत्रेण तस्य नत्वम्। (८) शय्या—शेते अस्याम् इति शय्या, √शी+क्यप् 'संज्ञायां समजनिपद' इत्यादिना।

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं वड्ढइ। (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि पदुमिणिआ ! पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवी-

वियोगविधुरस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहण-समीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते। अयि! पद्मिनिका! पद्मिनिके! किमिह वर्तते?]

संस्कृत टीका—अद्य—अस्मिन् दिवसे, खलु इति वाक्यालङ्कारे, देवीवियोग-विधुरस्य—देव्या वासवदत्ताया वियोगेन विरहेण विधुर व्याकुलं चेतः चित्तं यस्य तस्य, तत्रभवतः—माननीयस्य, वत्सराजस्य—उदयनस्य, पद्मावतीपाणिग्रहण-समीरितस्य—पद्मावत्याः मगधराजकुमार्याः पाणिग्रहणेन विवाहेन हेतुना समीरितस्य सन्धुक्षितस्य विषयाभिमुखं प्रवर्तितस्य इति यावत्, अत्यन्तसुखावहे—अतिप्रमोदजनके, मङ्गलोत्सवे—मङ्गलमये समये मदनाग्निदाहः—कामानल-सन्तापः, अधिकतरं—पूर्वापेक्षया सविशेषं, वर्धते—वृद्धि प्राप्नोति। अयि इति आश्चर्ये, पद्मिनिके!, किमिह वर्तते? किमर्थमत्रागतास्ति?

अनुवाद—(तदनन्तर विदूषक का प्रवेश।) [महारानी वासवदत्ता के वियोग से व्याकुल माननीय वत्सराज की कामाग्नि की ज्वाला पद्मावती के विवाहरूपी वायु से प्रदीप्त होकर आज इस महान् सुख देने वाले शुभ उत्सव में और अधिक बढ़ रही है (पद्मिनिका को देखकर) अरे! पद्मिनिका! पद्मिनिका! यहाँ कैसे हो?

(Then enter the Vidushaka), Vidushaka—Today, indeed fanned by the marriage with Padmavati the torment of the fire of love of his honour Vatsaraj his heart suffering from the separation of the queen, has greatly increased on this very pleasant and auspicious festive occasion (seeing Padminika) oh Padminika what is the thing here ?

पद्मिनिका—अय्य! वसन्तअ! किं ण जाणासि भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति। [आर्य! वसन्तक! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।]

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक! क्या आप नहीं जानते कि राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्द से दुःखित हैं।

Padminika—Revered Vasantak, do you not know that the princess is suffering from headache.

विदूषकः—भोदि! सच्चं? ण जाणामि! [भवति! सत्यं? न जानामि।]

विदूषक—अजी ! सच ? मैं नहीं जानता।

Vidushaka—Is it so ? I do not know.

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि *शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

पद्मिनिका—तो आप स्वामी से यह निवेदन कर दीजिये । तब तक मैं भी सिर का लेप जल्दी तैयार करती हूँ।

Padminika—You report this to the lord, meanwhile I shall prepare the ointment for the head.

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

विदूषक—पद्मावती जी की शय्या कहाँ लगाई गई है ?

Vidushaka—Where has the bed of Padmavati been arranged ?

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।]

पद्मिनिका—समुद्रगृह में शय्या बिछी है।

Padminika—The bed is in the Samudragrih.

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं । [गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।] (निष्क्रान्तौ ।) (प्रवेशकः)

विदूषक—आप जाइये । मैं भी महाराज से निवेदन किये देता हूँ। (दोनों का प्रस्थान ।) (प्रवेशक समाप्त) ।

Vidushaka—You go, I too shall tell it to King. (Both retire) (Here ends the Praveshaka).

टिप्पणी—(१) पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्य—पद्मावती के साथ विवाह होने से विषयोपभोग में प्रवृत्त । वस्तुतः यहाँ—'समीरितः' पाठ होना चाहिए, जो 'मदनाग्निदाहः' का विशेषण होगा । इसी पाठ के अनुसार हिन्दी अनुवाद किया गया है । (२) अयि !—यह आश्चर्यसूचक अव्यय है। (३) शीर्षानुलेपनं त्वरयामि—सिर पर लेप लगाने की औषधि तैयार करने के लिए शीघ्रता कर

रही हूँ ।(४)प्रवेशकः--दो अंकों के बीच का एक प्रकार का अंक जिसमें निम्न पात्र न दिखायी हुई तथा भावी घटनाओं की सूचना देते हैं । यहाँ पद्मावती की अस्वस्थता तथा उसके समीप राजा का गमन रूप भूत एवं भविष्यत् कालिक घटनाओं की सूचना मिलती है ।

(ततः प्रविशति राजा ।) राजा--

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ।।१।।

अन्वय--कालक्रमेण पुनरागतदारभारः (अहं) श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तां तनूजां लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं हिमहता पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ।।१।।

संस्कृत टीका--कालक्रमेण--समयगत्या वासवदत्तानिधनात् कतिपयमासानन्तरम् इत्यर्थः, पुनरागतदारभारः--पुनः भूयः आगतः आयातः दाराणां पत्न्याः भारः यस्मिन् स तथाभूतः,(अहं)श्लाघ्या--प्रशंसनीयाम्, अवन्तिनृपतेः--उज्जयिनीपतेः, सदृशीम्--अनुरूपाम्, ता--प्रसिद्धां, तनूजां--पुत्रीं, लावाणके--एतन्नाम्नि ग्रामे, हुतवहेन--अग्निना, हृताङ्गयष्टिं--हृता दग्धा अङ्गयष्टिः तनुलता यस्याः तादृशीम्, हिमहतां--हिमेन तुषारेण हतां विनष्टां, (सुकुमारांगी नारी दुःखेनोपहता हिमहतपद्मिन्योपमीयते तत्र तत्र काव्ये--"हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता' रघुवंश । "जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनी वान्यरूपाम्" मेघदूत ।)पद्मिनी--कमलिनीम्, इव--तद्वत् चिन्तयामि--ध्यायामि । (अयं भावः--वासवदत्ताविनाशानन्तर कियत्यपि काले व्यतीते अहमनिच्छन्नपि पद्मावतीपरिग्रहणभारेणाक्रान्तो जातः । किन्तु प्रशस्तगुणशालिनी महाराजप्रद्योतस्यानुरूपा पुत्री मदीया प्रियतमा वासवदत्ता, या किल तुषारपातेन पद्मिनीव लावाणकग्रामे अग्निना दग्धदेहा अभूत्, सतत मत्स्मरणपदवीं गाहते ।)।।१।।

अनुवाद--(तदनन्तर राजा का प्रवेश ।)(समय बीतने पर फिर पत्नी के भार को स्वीकार कर लेने वाला मैं उज्जैन के राजा के अनुरूप एवं प्रशंसनीय उस पुत्री को, जिसका डंडे के समान छरहरा शरीर लावाणक ग्राम में आग से जल गया, पाले से मारी हुई कमलिनी के समान याद कर रहा हूँ ।।१।।

(Then enter the King) King--Having again been burdened with a wife in course of time, I remember the esteemed, worthy

daughter of the King of Avantis, that had her slender body burnt (of carried away)by fire in Lavanak like a lotus smitten by frost.

टिप्पणी--(१) कालक्रमेण--समय के माहात्म्य से। कालस्य क्रमः, तेन। करण मे तृतीया हुई।(२)पुनरागतदारभारः—दाराणा भारः दारभारः षष्ठी तत्पुरुष, पुनः आगतः पुनरागतः सुप्सुपा समास,पुनरागतः दारभारः यस्य स पुनरागतदारभारः बहुव्रीहि समास। दार शब्द पुल्लिग, बहुवचन में सदैव प्रयुक्त होता है यथा दाराः, दारान्, दारैः, दारेभ्यः आदि। (३) अवन्तिनृपतेः--यहाँ 'सदृशीम्' के योग मे 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्या तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से षष्ठी हुई। अवतीना नृपतिः तस्य अवन्तिनृपतेः। (४) श्लाघ्याम्--प्रशंसनीय। श्लाघ्+ण्यत्+स्त्रियाम् टाप् (आ)। (५) हुतवहेन--अग्नि द्वारा। 'अनुक्ते कर्त्तरि'तृतीया' से तृतीया हुई है। वह्+अच् (पचाद्यच्) हुतस्य वहः षष्ठी तत्पुरुष।(६)हृताङ्गयष्टिः—अङ्गं यष्टिरिव इति अङ्गयष्टिः उपमित कर्मधारय समास, हृता अङ्गयष्टिः यस्याः।सा हृताङ्गयष्टिः बहुव्रीहि। यद्यपि यहाँ पूर्वपद 'हृत' के 'हुतवह' शब्द से सापेक्ष होने के कारण समास नही होना चाहिए किन्तु 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' के अनुसार समास हुआ। (७)ताम्--यहाँ प्रसिद्धार्थक तत् शब्द है। इसलिए यत् शब्द की अपेक्षा किये बिना इसका प्रयोग हुआ है—'प्रकान्तप्रसिद्धानुभूतार्थविषयस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नापेक्षते' काव्यप्रकाश। (८) तनूजाम्—पुत्री को। तन्वाः जायते इति तनूजा तनू√जन्+ड 'पञ्चम्या जनेर्डः' इति सूत्रेण, ततः स्त्रियां टाप्(आ), ताम्। इस श्लोक मे कितना सजीव वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जैसे चारों ओर सुगन्धि फैलाता हुआ एक विकसित कमल हिमपात से नष्ट हो जाता है वैसे ही यौवनोल्लास से शोभित, स्वस्थ एवं प्रसन्न वासवदत्ता क्रूर काल द्वारा हमारे मध्य से हटा ली गई है। इस करुणाजनक घटना से मैं शोक-सन्तप्त हूँ ॥१॥ इस पद्य मे उदयन का वासवदत्ता के प्रति प्रगाढ़ रतिभाव व्यक्त हुआ है। इसमे उपमा और विशेषोक्ति अलंकार है। तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे—"विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।" अर्थात् सम्पूर्ण कारणों के होने पर फल का न होना विशेषोक्ति अलंकार है। इसमे वसन्ततिलक छंद है॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु दाव भवं।[त्वरतां त्वरतां तावद् भवान्।]

(प्रवेश करके) विदूषक—शीघ्रता कीजिये, महाराज! शीघ्रता!

(Entering) Vidushaka—Make haste, make haste, O King!

राजा—किमर्थम् ?

राजा—क्यों ?

King—Why ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा। [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता।]

विदूषक—माननीया पद्मावती जी सिर दर्द से पीड़ित हैं।

Vidushaka—Her ladyship Padmavati is suffering from headache.

राजा—कैवमाह ?

राजा—किसने ऐसा कहा ?

King—Who has said so.

विदूषकः—पदुमिणिआए कहिदं। (पद्मिनिकया कथितम्।)

विदूषक—पद्मिनिका ने कहा।

Vidushaka—It was told by Padminika.

राजा—भोः ! कष्टम्,

राजा—आह ! कष्ट (देने वाली बात है)।

King—Oh ! very sad.

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां लब्ध्वा प्रिया मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥
अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

अन्वय—रूपश्रिया समुदिताम् च गुणतः युक्ता प्रिया लब्ध्वा पूर्वाभिघातसरुजः अपि मम शोकः अद्य मन्द इव। तु अनुभूतदुःखः पद्मावतीम् अपि तथा एव समर्थयामि ॥

संस्कृत टीका—रूपश्रिया—रूपस्य सौन्दर्यस्य श्रिया शोभया, समुदितां—युक्ता, गुणतः—गुणैः, युक्तां—समन्विता, प्रियां—प्रेमास्पदं, लब्ध्वा—प्राप्य, पूर्वाभिघातसरुजः अपि—पूर्वः प्राथमिकः यः अभिघातः वासवदत्ताविनाशरूपआघातः तेन सरुजः अपि पीडितस्य अपि, मम—उदयनस्य, शोकः—दुःखम्,

अद्य—अधुना, मन्द इव—किञ्चित् न्यून इव (आसीत्)। तु—परन्तु, अनुभूतदुःखः—अनुभूतम् उपभुक्तं दुःखं कष्टं येन स तथाविधः (अहं), पद्मावतीम् अपि—दर्शकभगिनीम् अपि, तथा एव—वासवदत्तावदेव, समर्थयामि—मन्ये। (अयं भावः—रूपगुणसम्पन्नां पद्मावतीं नवपत्नीत्वेन लब्ध्वा मम वासवदत्ताविषयात्मकः शोकः किञ्चित्न्यून इव अभूत्। परमिदानीं दुर्भाग्यवेयोऽहं चिन्तयामि यत् कदाचित् पद्मावती अपि मां दुःखसागरे निमज्जयित्वा दिवं यास्यति।)॥२॥

अनुवाद—रूप-सम्पत्ति तथा गुणों से युक्त प्यारी स्त्री को प्राप्त करके पहली चोट से दुःखी हुये भी मेरा शोक अब कुछ कम-सा हो गया था। किन्तु भुक्तभोगी होने के कारण मैं पद्मावती को भी उसी तरह (वासवदत्ता के समान मर जाने वाली) समझ रहा हूँ ॥२॥

अच्छा, पद्मावती किस स्थान में है ?

Having obtained my beloved possessed of the beauty of form and endowed with virtues, my grief had been somewhat mitigated today; still suffering from the previous shock and having experienced the pain, I believe Padmavati to be also in the same plight. And where is Padmavati now.

टिप्पणी (१) रूपश्रिया—सौन्दर्य की शोभा से। रूपस्य श्रीः, तया। करण में तृतीया हुई। (२) समुदिताम्—समन्वित, युक्त। सम्—उद्√इ+क्त(त)—टाप् (आ)। (३) गुणतः—गुणों से। गुण शब्द से तृतीयार्थ में सार्वविभक्तिक तस् प्रत्यय। (४) पूर्वाभिघातसरुजः—प्राथमिक आघात से पीड़ित। √रुज्+क्विप्=रुज्=रोग, पीड़ा, रुजा सह वर्तमानः सरुक् 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इत्यनेन बहुव्रीहिसमासः. 'वोपसर्जनस्य' इत्यनेन सहस्य सादेशः, पूर्वश्चासौ अभिघातः पूर्वाभिघातः कर्मधारयसमासः, तेन सरुक् इति पूर्वाभिघातसरुक् तृतीयातत्पुरुषसमासः। मम का विशेषण है। (५) मम—यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से कर्ता में षष्ठी हुई। (६) शोकः—मन्द इव (अभूत्) मेरा शोक कुछ कम-सा हुआ। (७) तथैव—ठीक उसी तरह। अर्थात् 'स्नेहःपापशंकी' इस न्याय से राजा का सोचना कि पद्मावती भी वासवदत्ता की तरह न विनष्ट हो जाय। (८) समर्थयामि—सोचता हूँ, कल्पना करता हूँ। सम्√अर्थ+णिच्+लट्—मिप् उ० पु० ए० व०। इस श्लोक में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है और वसन्ततिलका छंद है ॥२॥

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा।]

विदूषक—समुद्रगृह में सेज बिछायी गई है।

Vidushaka—The bed is spread on the summer house.

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

राजा—तो उसका रास्ता बताओ।

King—Then show me its way.

विदूषकः—एदु एदु भवं। [एत्वेतु भवान्।] (उभौ परिक्रामतः।)

विदूषक—आइये, आइये महाराज! (दोनों चलते हैं।)

Vidushaka—Come on, come on, your honour. (Both go about).

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं। पविसदु भवं। [इदं समुद्रगृहकम्। प्रविशतु भवान्।]

विदूषक—यह समुद्रगृह है। आप प्रवेश करें।

Vidushaka—This is the palace. Be pleased to enter Sir.

राजा—पूर्वं प्रविश।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

King—Nay do you enter first.

विदूषकः—भो! तह।(प्रविश्य)अविहा! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [भोः! तथा। अविहा! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान्।]

विदूषक—जी! अच्छा। (प्रवेश करके) ओहो! आप जरा ठहर जाइये, ठहर जाइये।

Vidushaka—Well as you wish it (Enters) oh, horrible stay there, stay there sir.

राजा—किमर्थम्?

राजा—क्यों?

King—Why.

विदूषकः—एसो खु दीवप्पभायसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अअं काओदरो॥ [एष खलु दीपप्रभायसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानोऽयं काकोदरः।]

विदूषक—यह दीये के उजाले में स्पष्ट दिखाई पड़ने वाला जमीन पर लोटता हुआ सांप है।

Vidushaka—This form which is clearly seen in the light of the lamp is a cobra lying on the ground.

राजा—[प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्] अहो ! सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य।

राजा—(पैठकर और देखकर मुस्कराते हुए) अहो ! मूर्ख इसे सांप समझ रहा है।

King—(Enters and looks laughing) (*Aher.*) The foolish fellow and his fancied serpent.

टिप्पणी—(१) तेन हि—यदि ऐसा है तो। यहाँ हि शब्द वाक्यालंकारार्थ है।(२) आदेशय—सूचक। आङ्पूर्वक दिश् धातु सिद्ध होता है।(३) एत्वेंतु—यह द्विरुक्ति शीघ्रता-प्रकाशनार्थ है। (४) दीपप्रभावसूचितरूपः—दीपस्य प्रभावेण—सामर्थ्येन सूचितं—प्रकटीकृत रूपं—स्वरूपं यस्य सः अथवा दीपस्य प्रभया—प्रकाशेन अवसूचितं रूपम्—आकारो यस्य सः। (५) काकोदरः—सांप। 'कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी' इत्यमरः। ईषत् अकति इत्यर्थे अक कुटिलायां गतौ इति धातोः पचादित्वात् अच्प्रत्यये 'ईषदर्थे च' इत्यनेन कोः कादेशे काकम् इति रूपम्, तादृशम् अर्थात् ईषत् कुटिलगतिमत् उदरं यस्य स काकोदरः। (६) अहो ! सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य—हाय ! मूर्ख को सांप जान पड़ता है ! यहाँ तात्पर्य यह है कि जिस वस्तु को विदूषक ने सांप समझा था, वह तोरणमाला थी। अतएव राजा कहता है कि इस मूर्ख को तोरणमाला का भी ज्ञान नहीं है, जो उसे सर्प मान रहा है। (७) वैधेय—मूर्ख, जो दूसरों के बताने पर ही कोई कार्य करता है। विधेयं विधान तस्य अयम् अधिकारी इति विधेय+अण्।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम्।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

अन्वय—मूर्ख ! त्वम् तु ऋज्वायताम् क्षितौ भ्रष्टाम् मुखतोरणलोलमालाम् हि सर्पम् अवगच्छसि या निशि मन्दानिलेन परिवर्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि किञ्चित् करोति ॥३॥

संस्कृत टीका--मूर्ख ! --मूढ !, त्वं तु--भवान् किल, ऋज्वायताम्--ऋजुः सरला चासौ आयता च दीर्घा च ताम्, क्षितौ--पृथिव्यां, भ्रष्टा--पतिता, मुखतोरणलोलमाला--मुखं मुख्य यत् तोरणं गृहस्य बहिर्द्वारं तत्र या लोला चञ्चला माला पुष्पस्रक् तां, हि--निश्चयेन, सर्पम्--अहिम्, अवगच्छसि--जानासि, या--तोरणमाला, निशि--रात्रौ, मन्दानिलेन--मन्दवायुना, परिवर्तमाना--परितः स्पन्दमाना, भुजगस्य--सर्पस्य, विचेष्टितानि--चलनानि, किञ्चित्--ईषत्, करोति--विदधाति। (अयं भावः--वसन्तक ! नायं सर्पः, इयं किल समुद्रगृहस्य बहिर्द्वारे लम्बमाना सरला दीर्घा च पुष्पमाला वर्तते, या हि भूमौ पतिता तया मन्दपवनेन कम्पिता सती सर्पस्य इव चेष्टितानि करोति। अतो माला सर्पत्वेन अवगच्छतस्तव मौर्ख्यं प्रशंसनीयमस्ति।) ॥३॥

अनुवाद--मूर्ख ! तुम तो सीधी, लम्बी और धरती पर गिरी हुई बाहर के द्वार के महराव की चंचल माला को, जो रात्रि में मन्द-मन्द वायु से हिलती हुई कुछ-कुछ साँप की चेष्टायें कर रही है, साँप समझ रहे हो ॥३॥

Oh fool, you believe the long and straight hanging garland of the front entrance (now) fallen on the ground to be a serpent; which, waved little by the gentle wind at night, makes the movements of serpent.

टिप्पणी--(१) मूर्ख ! --मुह्यति इति मूर्खः,√मुह्+ख, मूर् आदेशः 'मुहेः खो मूर् च' इत्यौणादिकसूत्रेण, तत्सम्बुद्धौ। (२) ऋज्वायताम्--ऋजुश्चासौ आयता च विशेषणोभयपदकर्मधारय समास, ताम्। आङ्+यम्+क्त(त) कर्त्तरि+स्त्रियां टाप् (आ)--आयता। (३) मुखतोरणलोलमालाम्--मुख यत् तोरण कर्मधारय समास अथवा मुखे द्वारे तोरणम् सप्तमी तत्पुरुष, लोला चासौ माला लोलमाला कर्मधारय, मुखतोरणे लोलमाला सप्तमी तत्पुरुष, ताम्। (४) तोरण--किसी घर या नगर का बाहरी दरवाजा 'तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः। (५) सर्पम्--यह विधेय होने पर भी उद्देश्य 'माला' के लिंग से भिन्नता रखता है। सो इसका समाधान 'उद्देश्ये च विधेये च विभक्तिः सदृशी भवेत्। कदाचिज्जायते तत्र वैषम्यं लिङ्गसंख्ययोः' इस कारिका के बल से करना चाहिए। इस श्लोक में भ्रान्तापह्नुति अलंकार है तल्लक्षणम्--'भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कायां भ्रान्तिवारणे'। यहाँ पर माला में विदूषक को सर्प की भ्रान्ति हुई। उसका निराकरण राजा द्वारा किये जाने से भ्रान्तापह्नुति अलंकार हुआ। इसमें वसन्ततिलका छन्द है ॥३॥

विदूषकः—[निरूप्य] सुट्ठु भवं भणादि । ण हु अअं काओअरो । (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे । [सुष्ठु भवान् भणति । न खल्वयं काकोदरः । तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत् ।]

विदूषक—(गौर से देखकर) आप ठीक कह रहे हैं। यह साँप नहीं है। (भीतर जाकर और देखकर) माननीया पद्मावती यहाँ आकार चली गई होंगी।

Vidushaka—(Looking closely) Rightly says your honour. Really it is not a snake (Entering and looking) the ladyship padmavati must have come here and gone out.

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

राजा—मित्र आई न होंगी।

King—Friend, she must not have come.

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

विदूषक—कैसे आप जानते हैं ?

Vidushaka—How do you know ?

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

राजा—इसमे जानना क्या है ? देखो—

King—What is there to know ? see.

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ।।४।।

अन्वय—हि शय्या तथा आस्तृतसमा अवनता न, व्याकुलप्रच्छदा न, अमलं शिरोपधानं शीर्षाभिघातौषधैः न क्लिष्टम्, रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितु काचित् शोभा न कृता, पुनः प्राणी रुजा शयनं प्राप्य शीघ्र स्वयं न मुञ्चति ।।४।।

संस्कृत टीका—हि—यतः, शय्या—शयनीयम्, तथा—पूर्ववत्, आस्तृतसमा—आस्तृता कुथाद्यास्तरणेन युक्ता सा चासौ समा अविषमा, अवनता न शरीरभारेण किञ्चिदपि अवनति न प्राप्ता, व्याकुलप्रच्छदा न—व्याकुलः इतस्ततः

संकुचितः प्रच्छदः निचोलपटः आवरणपट इति यावत् यस्याः सा तथाभूता न, अमलं—निर्मलं, शिरोपधानम्—उपबर्हणम्, शीर्षाभिघातौषधैः—शिरोवेदना-निग्रहसमर्थैः ओषधिविशेषैः, न क्लिष्टम्—न दूषितम्, रोगे—व्याधौ सति, दृष्टिविलोभनम्—नयनाकर्षणं, जनयितुम्—उत्पादयितुम्, काचित्—कापि, शोभा—भित्तौ चित्रलेखनादिसम्भवं सौन्दर्यं, न कृता—न विहिता। पुनः—अन्यच्च, प्राणी—शरीरधारी, रुजा—रोगेण, शयनं—शय्यां, प्राप्य—लब्ध्वा, शीघ्रम्—आशु, स्वयं—स्वतः, न मुञ्चति—न त्यजति। (अयं भावः—राजा समुद्रगृहे पद्मावत्यनागमनसाधकानि प्रमाणानि दर्शयन् कथयति—यदि सा आगता भवेत् तर्हि शय्या किञ्चिदपि अवनता भवितुं युक्ता तथा प्रच्छदपटे वलीभङ्गेन भाव्यम्, किन्तु तदेतन्न दृश्यते किमपि। किञ्च निर्मले शिरःस्थानीयोपधानेऽपि शिरसि वेदनापनोदनस्यौषधस्य लेपेन मनागपि मालिन्य न लक्ष्यते। अपरञ्च व्याधिकाले दृष्टिविनोदार्थं भित्तौ चित्रादिभिः कापि शोभा न रचिताऽस्ति। अन्यच्च रोगातुरो जनः शयनं प्राप्य शीघ्र स्वयमेव तत् त्यक्त्वा अन्यत्र न गच्छति ॥४॥

अनुवाद—जिस लिए कि बिछौना उसी प्रकार बिछा हुआ है, दबा हुआ नहीं है। चादर सिकुडी हुई नहीं है। अच्छा तकिया शिर-पीडा की औषधियों से मैला नहीं हुआ है। रोग में आँखों को बहलाने के लिए कोई सजावट नहीं की गई है। और प्राणी रोग के कारण बिस्तर पर पहुँच कर अपने आप शीघ्र उसे नहीं छोडता है ॥४॥

The couch has not been pressed, its sheets are smooth, coverlet has not been disarranged; the pillow shows no mark of pressure and no ornaments attractive to the sight have been devised to please the patient's mind. Be sure of this, a person who has found a bed in sickness will not leave it lightly.

टिप्पणी—(१) आस्तृतसमा—फैली हुई और बराबर। आस्तृता चासौ समा कर्मधारय समास आङ+स्तृ+क्त (त) कर्मणि+स्त्रियाम्+टाप् (आ)—आस्तृता। (२) अवनता—झुकी हुई या दबी हुई। अव√नम्+क्त (त)—टाप् (आ)। (३) व्याकुलप्रच्छदा—जिसकी चादर सिकुड गई हो। व्याकुलः प्रच्छदः यस्याः सा बहुव्रीहिसमास। प्रच्छद—बिछावन की चादर। 'निचोलः प्रच्छदपटः' इत्यमरः। प्र√छद्+णिच्+घ 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' इति सूत्रेण, 'छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य' इत्यनेन ह्रस्वः। (४) शिरोपधानम्—तकिया। शिर

उपधीयते स्थाप्यते यत्र तत् शिरोपधानम् । यहाँ शिर शब्द अकारान्त है । क्योंकि कोश मे कहा है—'शिरोवाची शिरोऽदन्तो रजोवाची रजस्तथा'। और इसके प्रयोग भी मिलते हैं—'पिण्डं दद्यात् गयाशिरे', 'विचकर्त शिरान् द्रौणिः'। (५) शीर्षाभिघातौषधैः—शीर्षस्य अभिघातः षष्ठी तत्पुरुष, तस्य औषधानि (तादर्थ्ये षष्ठीतत्पुरुषसमासः) तैः विलष्टम् के योग मे अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। शिरोवेदना की औषधियों से। क्लिश्+क्त (त)—क्लिष्टम्। अभि+हन्+घञ् (अ)—अभिघातः। (६) रोगे—इसमें 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से भाव मे षष्ठी हुई। (७) दृष्टिविलोभनम्—आँखों को बहलाने वाली। दृष्ट्योः विलोभनम् (षष्ठी तत्पुरुष)। (८) जनयितुम्—जन्+णिच्+तुमुन्। उत्पन्न करने के लिए। (९) रुजा—अत्र हेतौ तृतीया। इस पद्य में पूर्वोक्त हेतुओं से पद्मावती के अनागमन रूप साध्य की सिद्धि होने के कारण अनुमान अलंकार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ।।४।।

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदिं पडिवालेदु भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान्।]

विदूषक—तो आप कुछ देर इस शय्या पर बैठकर श्रीमती की प्रतीक्षा करें।

Vidushaka—Then why not sit down here upon the bed and wait the lady's coming.

राजा—बाढम्। (उपविश्य) वयस्य ! निद्रा मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

राजा—अच्छा। (बैठकर) मित्र ! मुझे नींद सता रही है। कोई कथा कहो।

King—Very well (sits down) I feel an overwhelming drowsiness. Tell me some story.

विदूषकः—अहं कहइस्सं। हों त्ति करेदु अत्तभवं। [अहं कथयिष्यामि। हों इति करोत्वत्रभवान्।]

विदूषक—मैं कहूँगा। आप हुँकारी देते जाइये।

Vidushaka—If I tell you one will you say "Hem" to show that you hear me?

राजा—बाढम्।

राजा—अच्छा।

King—Yes.

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तर्हि अहिअरमणीआणि उदअट्ठाणाणि वसन्ति किल। [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।]

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। वहाँ अत्यन्त रमणीय जलाशय हैं।—

Vidushaka—There is a city named Ujjain, where there are various glorious bathing places.

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

राजा—क्या उज्जयिनी ?

King—Oh what Ujjaini ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं। [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।]

विदूषकः—यदि यह कथा नहीं रुचती हो तो दूसरी कहूँ।

Vidushaka—If this story is not agreeable I shall tell another.

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु,

राजा—मित्र ! यह बात नहीं है कि मुझे यह कथा अच्छी नहीं लगती। किन्तु—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ।।५।।

अन्वय—प्रस्थानकाले स्वजनं स्नेहात् स्मरन्त्याः प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं बाष्पं ममैव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि ॥५॥

संस्कृत टीका—प्रस्थानकाले—प्रयाणसमये, स्वजनं—बन्धुवर्गं, स्मरन्त्याः—ध्यायन्त्याः, स्नेहात्—प्रेम्णः, प्रवृत्तम्—उद्भूतं, नयनान्तलग्नम्—अपाङ्गयोः संसक्तम्, बाष्पम्—अश्रु, ममैव—मदीय एव, उरसि—वक्षःस्थले, पातयन्त्याः—मुञ्चन्त्याः, अवन्त्याधिपते—अवन्तिराजस्य, सुतायाः—पुत्र्याः, स्मरामि—चिन्तयामि । (अयं भावः—राजा कथयति—मित्र ! मम निषेधस्य कारणमिदं वर्तते यत् उज्जयिनीशब्दश्रवणमात्रेण अहं वासवदत्तायाः प्रस्थानकालिकं दृश्यम् अस्मार्षम् । तदानीं सा मदर्थे परित्यज्यमानं पित्रादिकं विचिन्तयन्ती जनजागरणभयात् तूष्णीमेव अरुदत् । तस्याः नयनयोः प्रवहमानया अश्रुधारया मम वक्षःस्थलं विलिन्नं सञ्जातम् अहो ! कीदृशं तत् मार्मिकं दृश्यम् !) ॥५॥

अनुवाद—चलने के समय अपने परिवार वालों का स्मरण करती हुई और स्नेह के कारण निकले हुए एवम् आँखों की कोर में लगे आँसुओं को मेरी ही छाती पर गिराती हुई अवन्तिराजकुमारी की याद कर रहा हूँ ।।५।।

But I remember the daughter of the King of Avantis, thinking of her relations at the time of starting and shedding, on my chest through affection, the gushing tears clinging to the corners of her eyes.

टिप्पणी—(१) स्मरन्त्याः—यह 'सुतायाः' का विशेषण है। स्मृ+शतृ+स्त्रियां ङीप् (ई) स्मरन्ती । तस्याः (२) स्नेहात्—यहाँ हेतु में पंचमी हुई। (३) प्रवृत्तम्—बहते हुए । प्र+वृत्+क्त (त)। (४) नयनान्तलग्नम्-आँखों के कोनों में रुके हुए । नेत्रों के कोनों को अपाङ्ग कहते हैं और अपाङ्ग से देखने को कटाक्ष । 'अपाङ्गौ नेत्रयोरन्ते कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने' इत्यमरः। (५)बाष्पम्—आँसू । यह 'पातयन्त्याः' का कर्म है। (६) अवन्त्याधिपतेः—मालव देश के स्वामी की । यह प्रयोग अपाणिनीय है। क्योंकि समास करने पर 'अवन्त्यधिपतेः' होगा और समास न करने पर 'अवन्त्या अधिपतेः' । ऐसी स्थिति में 'आ समन्ताद् भावेन अधिपतिः, आधिपतिः, अवन्त्याः आधिपतिः अवन्त्याधिपतिः, तस्य' इस तरह मान कर काम चला सकते हैं। अथवा 'गवा स्वामी', 'भुवा स्वामी' आदि

की तरह तृतीयान्त 'अवत्या' पद मान 'अधिपति' के साथ 'दीर्घसंधि' करने से शुद्ध रूप कहा जा सकता है। (७) सुतायाः—यहाँ 'स्मरामि' के योग में 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र से षष्ठी हुई। इस श्लोक के प्रथम चरण में उपेन्द्रवज्रा (और शेष तीन चरणों में इन्द्रवज्रा के होने) के कारण उपजाति छंद है 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।' 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।' 'अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः' ॥५॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया ।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

अन्वय—उपदेशेषु माम् ईक्षमाणया यया स्रस्तकोणेन हस्तेन बहुशः अपि आकाशवादितं कृतम् ॥६॥

संस्कृत टीका—उपदेशेषु—शिक्षासु, माम्—उदयनम्, ईक्षमाणया—पश्यन्त्या, यया—वासवदत्तया, स्रस्तकोणेन—स्रस्तः च्युतः कोणः वीणावादनसाधनीभूतो वस्तुविशेषो यस्मात् स तथाविधः तेन, हस्तेन—करेण, बहुशः अपि—अनेकवारमपि, आकाशवादितम्—आकाशे शून्ये वादितं वादनं, कृतम्—अनुष्ठितम् (अयं भावः—यदा किल वासवदत्ता मत्तो वीणावादनकलां शिक्षते स्म तदा सा प्रेमातिरेकेण सततं मन्मुखैकार्पितदृष्टिः आसीत्। तेन च तदानीं स्वकीयहस्ताच्च्युतं कोणं न ज्ञातवती सा। ततश्च सा मुधैव वीणां वादयितुम् अङ्गुलिव्यापारं कृतवती। तत् तस्या मुग्धाचरणमिदानीं स्मराम्यहम्।) ॥६॥

अनुवाद—(वीणा) सिखाते समय मेरी ओर एकटक देखती हुई जिसने छूटे हुए वीणा बजाने के यन्त्र वाले हाथ से अनेक बार शून्य स्थान में बजाने की क्रिया की थी (उसी प्रिया का स्मरण कर रहा हूँ) ॥६॥

And again. Many a time on occasion of instruction, while (she was) looking at me, her hand, from which the plectrum has dropped, would aimlessly move in the sky.

टिप्पणी—(१) उपदेशेषु—शिक्षा देते समय। यहाँ अधिकरण में सप्तमी हुई। (२) ईक्षमाणया—देखती हुई। √ईक्ष्+लट्—शानच्, मुगागम। (३) स्रस्तकोणेन—जिससे मिजराब गिर चुकी हो। स्रस्तः कोणो यस्मात् सः, तेन। (४) कोण—मिजराब, तार का बना छल्ला जिसकी नोक से आघात करके सितार, तानपूरा आदि बजाते हैं। 'कोणो वीणादिवादनं' इत्यमरः। इसके

'सारिका' भी कहते हैं। 'द्वयोस्तु कोणो वीणादिवादिनं सारिका च सा' इति शब्दार्णवः। यहाँ ग्रन्त में 'ग्रवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि' इस पूर्व श्लोक के वाक्य से सम्बन्ध समझना चाहिए। (५) ग्राकाशवादितम्--ग्राकाशे वादितम् (स० तत्पु०) वादनम् तालदत्तम्, उक्ते कर्मणि प्रथमा। वासवदत्ता महाराज उदयन पर इतनी मुग्ध थी कि मिजराब के सरक कर गिर पड़ने पर हाथ शून्य मे घूम रहे थे पर वीणा से किसी प्रकार का तान न निकलने पर भी उसे कुछ मान न होता था। यह अनुष्टुप् छद है ॥६॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि णअरं बह्मदत्तं णाम। तहिं किल राआ कंपिल्लो णाम। [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।]

विदूषक:—अच्छा, दूसरी (कथा) कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नामक एक नगर है। वहाँ का राजा काम्पिल्य है।

Vidushaka—Oh, very well, I will tell another tale. There is a city named Brahmadatta, where there reigned a King named Kampilya.

राजा—किमिति किमिति ?

राजा—क्या क्या ?

King—What, what do you say ?

विदूषकः—[पुनस्तदेव पठति।]

विदूषक—(फिर वही कहता है।)

Vidushaka—Again repeats the same.

राजा—मूर्ख! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

राजा—मूर्ख? 'राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य'—ऐसा कहो।

King—Oh fool, you should say King Brahmadatta, and the city of Kampilya.

विदूषकः—किं राआ बह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं? [किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम्?]

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

Vidushaka—What, King Brahmadatta and the city of Kampilya ?

राजा—एवमेतत् ।

राजा—हाँ, ऐसा ही।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पाडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राआ ब्रह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणिं सुणादु भवं । अयि! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं गणिह्लअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) तेन हि महूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्रभवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

विदूषक—तो आप जरा ठहर जाइये, जब तक मैं इसे कंठस्थ कर लूँ । राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य । (इस प्रकार उसी को कई बार कहकर) अब आप सुनिये । अरे ! आप सो गए? इस समय बहुत ठंड पड़ रही है। मैं अपनी चादर लेकर आता हूँ । (चल देता है ।)

Vidushaka—Then your honour should wait for some time; in the meantime I shall get it on my lips—King Brahmadatta city of Kampilya (thus he repeats the same many a time.) Now let your honour hear Oh, his honour is asleep, the hour is very cold. I shall bring my mantle and come, (Exit)

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी च ।) चेटी—एदु एदु अय्या ! दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

(तदनन्तर अवन्तिवासिनी के वेश में वासवदत्ता और दासी का प्रवेश।)

दासी—आइये, आर्या ! आइये । राजकुमारी जी सिर दर्द से बहुत व्याकुल है।

Then enter Vasavadatta in Avantika's garb and a maid)
Maid—Come on, madam, come on. The princess is pained, indeed severely, by headache.

वासवदत्ता—हद्धि ! कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

वासवदत्ता—आह ! कष्ट ! ! पद्मावती की शय्या कहाँ लगी है ?

Vasava·—Oh how painful, where is the bed of Padmavati spread ?

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा ।]

दासी—समुद्रगृह में सेज बिछी है ।

Maid—It is told the bed spread in the summer house.

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि । [तेन ह्यग्रतो याहि] उभे परिक्रामतः]।

वासवदत्ता—तो तुम आगे-आगे चलो । (दोनो चलती हैं ।)

Vasava.—Then walk in front. (Both walk)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । (निष्क्रान्ता ।)[इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

दासी—यह समुद्रगृह है । आर्या अन्दर चलें । तब तक मैं भी सिर के लेप के लिए जल्दी करती हूँ ।

Maid—This is the summer house your ladyship may enter just I shall expedite the unction for the headache.

टिप्पणी—(१) नगरं ब्रह्मदत्तं नाम—यहाँ विदूषक ने राजा को हँसाने के लिए नगर के नाम की जगह राजा का नाम और राजा के नाम के बदले नगर का नाम ले लिया । (२) किल—यह प्रसिद्धार्थक अव्यय है । (३) काम्पिल्य—यह दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी का नगर था । अब भी कम्पिला के नाम से प्रसिद्ध है और फर्रुखाबाद जिले का एक कसबा है । द्रौपदी का जन्म यहीं हुआ था । (४) मुहूर्तकम्—क्षण भर । यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया हुई । (५) ओष्ठगतम्—मुखस्थ; कंठस्थ । (६) प्रावारकम्—ओढ़ने का वस्त्र, चादर, ओढ़ना । प्र√वृ (आच्छादन)+घञ् 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति सूत्रेण उपसर्गस्य दीर्घः=प्रावार+क (स्वार्थे)=प्रावारकः, तम् । (७)एदु एदु—यहाँ शीघ्रता सूचित करने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है । (८)बृढम्—अत्यधिक । क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया । (९) शीर्षवेदनया-

सिरदर्द से, हेतु में तृतीया हुई है। (१०) दुःखिता—दुःखम् सञ्जातम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे दुःख+इतच् तारकादित्वात् ततष्टाप् (आ)। अथवा कण्ड्वादिगणीय दुःख् तत्क्रियायाम् धातु से क्त प्रत्यय करने पर इसकी सिद्धि होगी। (११) शीर्षानुलेपनम्—सिर दर्द को शान्त करने वाला लेप। (१) त्वरयामि—त्वरया सम्पादयितुं गच्छामि इत्यर्थः।

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे। विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा। जाव पविसामि। (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजणस्स पमादो ! अस्सत्थ पदुमावदि केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि। इअं पदुमावदी ओसुत्ता। जाव उवविसामि। अहव अञ्जासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि। ता इमस्सिं सय्याए उवविसामि। (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं। दिट्ठआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा। णिव्वुत्तरोआए होदव्वं। अहव एअदेससविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मं आलिङ्गेहि त्ति। जाव सइस्सं। (शयनं नाटयति।)

[अहो ? अकरुणाः खल्वीश्वरा मे। विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत् प्रविशामि। अहो ! परिजनस्य प्रमादः। अस्वस्था पद्मावतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति। इयं पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासनपरिग्रहेणाल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्यायामुपविशामि। किन्नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। दिष्ट्याविच्छिन्नसुखनिःश्वासा। निवृत्तरोगया भवितव्यम्। अथवैकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति। यावच्छयिष्ये।]

संस्कृत टीका—अहो !—खेदसूचकमिदमव्ययम्, मे—मम, ईश्वराः—भाग्य-देवताः, खलु—निश्चयेन, अकरुणाः—निर्दयाः (सन्ति)। विरहपर्युत्सुकस्य—विरहेण वियोगेन पर्युत्सुकस्य व्याकुलितचेतसः, आर्यपुत्रस्य—स्वामिनः, विश्रमस्थानभूता—मनोविनोदास्पदम्, इयं—दृश्यमाना, पद्मावती अपि, नाम—वाक्यालङ्कारार्थमव्ययमिदम्, अस्वस्था—रुग्णा, जाता—सञ्जाता।

यावत्—प्रस्तु, प्रविशामि—अन्तर्गच्छामि । अहो !, परिजनस्य–परिचारकवर्गस्य, प्रमादः—अनवधानता । अस्वस्थां—रुग्णां, पद्मावतीं, केवलं, दीपसहायां—दीप एव सहायः सहचरो यस्याः ताम् एकाकिनीमित्यर्थः, कृत्वा—विधाय, परित्यजति—अत्याक्षीत् । इयं, पद्मावती, अवसुप्ता—सुप्तवती । यावत्—अधुना, उपविशामि—उपवेशनं करोमि । अथवा—आहोस्वित् अन्यासनपरिग्रहेण—स्थानान्तरोपवेशनेन, स्नेहः—प्रेम, अल्प इव—न्यून इव प्रतिभाति–प्रतीयते, तत्—तस्मात्, अस्यां—पुरोऽवस्थितायां, शय्यायां,—शयनीये, उपविशामि । किन्तु खलु—किमिति, एतया—पद्मावत्या, सह—साकम्, उपविशन्त्याः—उपवेशनं कुर्वन्त्याः, मे—मम, हृदयम्—चित्तम्, अद्य—इदानीं प्रह्लादितमिव—हर्षोत्फुल्लमिव (जायते) । दिष्ट्या—भाग्येन, (इयम्) अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा—अविच्छिन्नः विच्छेदरहितः सुखः सुखपूर्वकः निःश्वासः उच्छ्वासः यस्याः सा तादृशी (वर्तते) । (अतएव अनया) निवृत्तरोगया—निवृत्तः अपगतः रोगः व्याधिः यस्याः सा तादृशी तया, भवितव्यम्—भाव्यम् । अथवा, शयनीयस्य—शय्यायाः एकदेशविभागतया—एकदेशे एकत्र प्रदेशे संविभागः पार्थक्येन अवस्थितिः यस्य तत् तद्भावः तत्ता तया, सूचयति–इङ्गितं करोति, इति—यत्, माम्—पद्मावतीम्, आलिङ्ग—परिष्वजस्व । यावत्—अतः शयिष्ये—स्वप्स्यामि—

अनुवाद-वासवदत्ता—हाय ! सचमुच विधाता मेरे प्रति निर्दय है । वियोग से व्याकुल आर्यपुत्र के मनोविनोद का साधन यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई । अच्छा, भीतर चलूं । (भीतर जाकर और देखकर) हाय ! दासियों की अनवधानता ! अस्वस्थ पद्मावती को केवल दीपक के सहारे पर छोड़ गई हैं । यह पद्मावती सोयी है । अब बैठती हूँ । अथवा अलग आसन पर बैठने से स्नेह में कमी मालूम पड़ती है । इसलिए इसी सेज पर बैठ जाती हूँ । (बैठकर) अहा ! आज इसके साथ बैठती हुई मेरा हृदय पुलकित-सा क्यों हो रहा है ? सौभाग्य से इसकी साँस बिना रुकावट के सुख से चल रही है । (अतएव) इसे नीरोग होना चाहिए । अथवा शय्या के एक भाग में सोने से (मानो) यह कह रही है कि मेरा आलिंगन करो । तो सोती हूँ । (सोने का अभिनय करती है ।)

Vasava.—Oh Indeed, God is cruel to me. This Padmavati too, who had become the place of rest of his lordship, yearning for me in my separation, has also become indisposed I shall now enter (enters and seen), Oh. the blunder of servants ! They have

left the indisposed Padmavati with only the lamp to help (her). *Here Padmavati is asleep. I shall just sit. Perhaps taking another* (different) seat might show less affection indeed. Therefore I shall sit on this bed (sitting) why indeed does my heart, while I am sitting (here) today with her, seem delighted, as it were ? Happily her breath is uninterrupted and easy (continuous and good). She must be out of her illness. Can it be that, by sharing a portion of the bed she suggests that I should embrace her ? *Then I shall lie down (or sleep) (she gesticulates sleep).*

टिप्पणी—(१) अकरुणाः—निष्ठुर, क्रूर। यहाँ वासवदत्ता के कहने का तात्पर्य यह है कि मेरे विधाता बड़े क्रूर हैं, नहीं तो भला विपत्ति पर विपत्ति क्यों पड़ती। अब मेरे पति को सान्त्वना देने वाली यह पद्मावती भी बीमार पड़ गई। निःसन्देह दैव मेरे प्रति निर्दय हैं। अविद्यमाना करुणा येषां ते अकरुणाः 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इति वार्त्तिकेन नञ्बहुव्रीहिसमासः। विद्यमान इत्यस्य लोपश्च। (२) विश्रमस्थानभूता—मन बहलाने का साधन। विश्रमस्य स्थानम् षष्ठी तत्पुरुष, *विश्रमस्थाने तुल्या इति विश्रमस्थानभूता अस्वपदविग्रहः* नित्यसमासः। भूत=सम, तुल्या। (भूत क्ष्मादौ ... प्राप्ते वित्ते समे सत्ये' इति मेदिनी। (३) दीपसहायाम्—दीप ही जिसका एकमात्र साथी था। दीप एव सहायः यस्याः सा (ब० वी०) ताम्। (४) अन्यासनपरिग्रहेण—अन्यत् आसनम् कर्मधारय, तस्य परिग्रहः ष० त०, तेन हेतौ तृतीया। यहाँ वासवदत्ता सोचती है कि अलग बैठने मे स्नेह थोड़ा प्रतीत होता है, गहरा नहीं। यहाँ अभी गहरा प्रेम नहीं है वहीं सकोच और दिखावट होती है। परन्तु मुझमे और पद्मावती मे अत्यधिक हार्द है, इसलिए मुझे अलग नहीं बैठना चाहिए। (५) प्रह्लादितमिव मे हृदयम्—प्रह्लाद आनन्द. सञ्जातोऽस्य तत् प्रह्लादितम्, प्रह्लाद+इतच् 'तदस्य सञ्जातम्' इत्यनेन। यहाँ कवि ने बड़ा ही मनोरम भाव प्रदर्शित किया है। क्योंकि वासवदत्ता जिसे पद्मावती समझ कर स्पर्श-सुख का अनुभव कर रही थी वह वास्तव में उसका प्रियतम ही था। इस रहस्य को न जानने के कारण वह आश्चर्य करती है कि न जाने क्यो आज मेरा मन प्रफुल्लित हो रहा है। मैं प्रतिदिन इसके साथ बैठती हूँ, पर आज का-सा सुख कभी अनुभव नहीं किया। *क्या बात है ? कालिदास की कृतियों में यह भाव द्रष्टव्य है यथाः—'मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।'* रघुवंश० ७, १२। *'तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।'* श०

पाकु० ५.२ (६) दिष्ट्या—सौभाग्य से, अव्यय। हेतु मे तृतीया हुई है। (७) अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा—न विच्छिन्नम् अविच्छिन्नम् (नञ्तत्पु०) अविच्छिन्नं सुखं यस्मिन् सः (ब० व्री०), अविच्छिन्नसुखः निश्वासः यस्याः सा (ब० व्री०)। बिना रुकावट सुखपूर्वक साँस लेने वाली। (८) निवृत्तरोगया—रोगरहित। निवृत्तः रोगः यस्याः सा (ब० व्री०) तया, अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। (९) एकदेशसंविभागतया—एक भाग मे होने से। एकश्चासौ देशः एकदेशः एकदेशस्य संविभागः (ष० तत्पु०) तस्य भावः तया हेतौ तृतीया।

विशेष—वासवदत्ता का यह स्वगत भाषण उसके उज्ज्वल चरित्र का द्योतक है। पद्मावती के प्रति उसका सापत्न्यभाव नहीं है। उसे वह अपने शोक-संतप्त पति को सान्त्वना का साधन समझती है तथा उसकी अस्वस्थता से अत्यन्त व्यग्र हो जाती है। अपने पति के सुख के लिए यह प्रेम और त्याग आदर्श की पराकाष्ठा है।

राजा—[स्वप्नायते।] हा वासवदत्ते!

राजा—(सपने मे) हाय वासवदत्ता!

King—(Talking in his sleep) Ah me Vasavadatta.

वासवदत्ता—[सहसोत्थाय] हं! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी। किं णु खु दिट्ठह्मि? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो। [हम्! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती। किन्नु खलु दृष्टास्मि? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः।]

वासवदत्ता—(झट उठकर) ऐं! आर्यपुत्र, पद्मावती नहीं। क्या मैं देख ली गई हूँ? निःसन्देह आर्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा का महान् उत्तरदायित्व मेरे देखे जाने से व्यर्थ हो गया।

Vasava.—(Starting up) what ? the King ? It is the King and not Padmavati Have I been seen ? Then all my tail and care to keep the great resolve have been useless.

राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि!

राजा—हाय मालवराजकुमारी!

King—Ah, princess of Ujjain.

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो। ण एत्थ कोच्चि जणो। जाव मुहुत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठि हिअअं च तोसेमि।

[दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।]

वासवदत्ता—भाग्य से आर्यपुत्र सपना देख रहे हैं । यहाँ कोई नही है । अतएव क्षण भर ठहर कर आँख और छाती को जुड़ा लूँ ।

Vasava.—Forutnately the King must be dreaming, There is no body here; just for a while, I shall wait and gratify my eyes and heart.

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

राजा—हाय प्यारी ! हाय प्रिय छात्रे ! मुझे उत्तर दो ।

King—Oh dear ! Oh dear disciple give me an answer.

वासवदत्ता—आलवामि भट्टा ! आलवामि । [आलपामि भर्तः ! आलपामि ।]

वासवदत्ता—उत्तर देती हूँ, स्वामी ! उत्तर देती हूँ ।

Vasava.—I am speaking, I am speaking,

राजा—किं कुपितासि ?

राजा—क्या रुष्ट हो गई हो ?

King—What, are you angry ?

वासवदत्ता—णहि णहि दुक्खिदह्मि । [नहि नहि, दुःखितास्मि ।]

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, मैं दुःखिता हूँ ।

Vasava.—No, no I am miserable.

राजा—यद्यकुपिता किमर्थं नालङ्कृतासि ?

राजा—यदि रुष्ट नहीं हो तो शृङ्गार क्यों नहीं किया ?

King—If you are not angry, why have you not put on ornaments.

वासवदत्ता—इदो वरं किं । [इतः परं किम् ?]

वासवदत्ता—इससे बढकर क्या (अर्थात् मैं दुःखी हूँ, इससे बड़ा और क्या कारण हो सकता है) ।

Vasava.—What would be better than this.

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

राजा—क्या विरचिका का स्मरण करती हो ?

King—Do you remember Virachika.

वासवदत्ता—[सरोषम्] श्रा अवेहि, इहावि विरचिश्रा ? [श्रा अपेहि, इहापि विरचिका ?]

वासवदत्ता—(क्रोधपूर्वक) आह ! हटो, यहाँ भी विरचिका ?

Vasava.—(Angrily) oh begone Virachika even here ?

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि । [हस्तौ प्रसारयति ।]

राजा—तो विरचिका के लिए तुम्हें मनाता हूँ । (दोनों हाथ फैलाता है ।)

King—Then I beg pardon of your ladyship for Virachika.

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि । को वि मं पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्यावलम्बिअं अय्यउत्तस्स हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं । [चिरं स्थितास्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि ।] (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता ।)

वासवदत्ता—बहुत देर ठहर गई । कोई मुझे देख लेगा । इसलिए चल दूँ । या शय्या पर से लटके हुए आर्यपुत्र के हाथ को शय्या पर रखकर चलूँ । (वैसा करके चली गई ।)

Vasava.—I have been here too long. Some one might see me. I will depart. But first let me replace His arm, which now is hanging from the bed. (Does so and exit.)

टिप्पणी—(१) स्वप्नायते—स्वप्न देखते हुए बोल रहा है । स्वप्न इव आचरति इति स्वप्नायते, स्वप्न+क्यङ, दीर्घ+लट्—ते । यहाँ स्वप्न शब्द स्वप्नवत्परक है । अर्धसुप्तावस्था में जागरित अवस्था की वासना के अनुसार मन का विषयों का उपभोग करना स्वप्न कहलाता है । इसका लक्षण यह है—"इन्द्रियाणामुपरमे मनोऽनुपरतं यदि । सेवते विषयानेव तद्विद्यात् स्वप्नदर्शनम् ।" फिर इसके सात भेद हैं—"दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा । भावितो दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधः स्मृतः ।" (२) प्रतिज्ञाभारः—यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा थी कि वासवदत्ता को छिपाकर मगधराजकुमारी

पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराने के बाद मगधराज की सहायता से उदयन के खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लेंगे। इसलिए वासवदत्ता घबड़ा रही है कि मेरे देखे जाने पर मेरे जल जाने का सारा रहस्य खुल जाएगा। तब राजा दर्शक मेरे स्वामी को सहायता नहीं देगा। फिर तो यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा-भार निष्फल ही है। (३) दृष्टिं हृदयं च तोषयामि—इस पंक्ति से वासवदत्ता की महाराज उदयन को देखने की उत्कट अभिलाषा प्रकट होती है। बहुत दिनों से वियुक्त होने के कारण वह अपने पति के दर्शनार्थ अत्यन्त उत्सुक है तथा उसे जी भरकर देखना चाहती है। (४) विरचिकाम्—कथासरित्सागर के अनुसार विरचिका उदयन की प्रेमिका थी। एक बार भूल से उदयन ने वासवदत्ता को विरचिका के नाम से सम्बोधित कर दिया था, जिस पर वह नाराज हो गई थी। फिर उदयन ने उसके पैर पकड़ कर मनाया था। (५) आ अपेहि—यहाँ 'आ' अव्यय कोप और स्मरण का बोधक है। इसलिए 'वाक्यस्मरणयोरङित्' के अनुसार इसे 'निपात एकाजनाङ्' सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा और 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' सूत्र से प्रकृति-भाव होने कारण सवर्णदीर्घ नहीं हुआ। (६) हस्तौ प्रसारयति—स्वप्न में कुपित होकर भागती हुई वासवदत्ता को पकड़ कर मनाने के लिए राजा अपने दोनों हाथ फैलाता है। यहाँ स्वप्न में राजा को वासवदत्ता का दर्शन होता है। इसीलिए कवि ने इस नाटक का नाम 'स्वप्न-वासवदत्तम्' रखा है। (७) शय्याप्रलम्बितम्—पलंग से नीचे लटकते हुए। शय्यायाः प्रलम्बितम् शय्याप्रलम्बितम्।

राजा—[सहसोत्थाय] वासवदत्ते! तिष्ठ, तिष्ठ। हा धिक्!

राजा—(एकाएक उठकर) वासवदत्ता! ठहरो, ठहरो। हाय! हाय!!

King—(Starting up) Vasavadatta stay. oh, stay, Alas.

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥७॥

अन्वय—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहम् द्वारपक्षेण ताडितः। ततः अयम् भूतार्थः मनोरथः (इति) व्यक्तं न जानामि ॥७॥

अनुवाद—जल्दी मे निकलता हुआ मैं दरवाजे के किनारे से टकरा गया। इस लिए स्पष्ट रूप से नही जानता कि यह वास्तविक घटना थी या (मेरे) मन का भाव (हो)।॥७॥

King—Rising in head long haste I ran against the door that bars my passage forth. and now I have no certainty whether or not this desire is a reality.

टिप्पणी—(१) **सम्भ्रमेण**—हड़बडी मे वेग से। इसमे 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इस वार्तिक से तृतीया हुई। (२) **भूतार्थः**—भूतः=सत्यः अर्थः यस्य स भूतार्थः। 'भूत क्ष्मादौ·····प्राप्ते वित्ते समे सत्ये' इति मेदिनी। यहाँ राजा के कहने का भाव यह है कि मैं नही जानता कि यह सत्य घटना है या मेरे मन का भाव, टक्कर लगने से मैं वासवदत्ता को न पकड़ सका। पकड़ लेता तो तथ्य का पता चल जाता। अब तो यह मेरे मन की भावना भी हो सकती है जो मूर्त रूप मे स्वप्न के उपरान्त सामने दिखाई पड़ी। दोनो मे से कौन-सी बात है, मैं नही जानता। (३) **निष्क्रामन्**—निकलता हुआ निस्+क्रम्+शतृ। (४) **व्यक्तम्**—इसमें क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया हुई। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है ॥७॥

(प्रविश्य) **विदूषकः**—**अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]**

(भीतर जाकर) विदूषक—अरे ! महाराज तो जग गये।

(entering) **Vidushaka**—Oh, his honour is awake.

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

राजा—मित्र ! मै खुशखबरी सुनाता हूँ। वासवदत्ता निसंदेह जीवित है।

King—Friend, I tell you some happy news. Vasavadatta is really alive.

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ! कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ! कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

विदूषक—हाय ! वासवदत्ता ! कहाँ है वासवदत्ता। वह तो बहुत पहले ही मर गई।

Vidushaka—Alas Vasavadatta where is Vasavadatta ? Vasavadatta is really dead long since.

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

राजा—मित्र ! ऐसा न कहो,

King—Friend do not say so.

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥८॥

अन्वय—सखे ! शय्यायाम् अवसुप्तं मा बोधयित्वा (सा) गता । पूर्वम् दग्धा इति ब्रुवता रुमण्वता (अहम्) वञ्चितः अस्मि ॥८॥

संस्कृत टीका—सखे !—मित्र !, शय्यायाम्—शयनीये, अवसुप्त—शयित, माम्—उदयनं, बोधयित्वा—जागरयित्वा, (वासवदत्ता) गता—ततो याता। पूर्वम्—पुरा, दग्धा—वासवदत्ता भस्मीभूता, इति—इत्थ, ब्रुवता—कथयता, रुमण्वता—एतन्नामकेन मन्त्रिणा, (अहम्) वञ्चितः—प्रतारितः, अस्मि—जातः। (अय भावः—राजा कथयति—हे मित्र ! वासवदत्ता नूनमेव जीवति। इदानीमेव सा पर्यङ्के गाढ प्रसुप्त मां प्रबोध्य समुद्रगृहान्निर्गता। अनुमिनोम्यहं यत् रुमण्वान् वासवदत्ता दग्धेत्यलीकवार्ताप्रख्यापनेन मा प्रतारितवान् ।) ॥८॥

अनुवाद—मित्र ! पलग पर सोये हुए मुझे जगाकर (वासवदत्ता) चली गई है। पहले (वासवदत्ता) जल गई—ऐसा कहने वाले रुमण्वान् ने मुझे धोखा दिया है ॥८॥

Oh friend waking me up when I was asleep on the couch, she went away. Rumanwan did deceive me before, when he said that she was burnt.

टिप्पणी—(१) बोधयित्वा—जगाकर। √बुध्+णिच्+क्त्वा। (२) पूर्वम्—इसमें 'ब्रुवता' इस क्रिया का विशेषण होने से द्वितीया हुई।(३) अस्मि—यहाँ भूतकाल के अर्थ में लट् लकार हुआ। यह अनुष्टुप् छन्द है। महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री इस श्लोक के बाद और विदूषक की उक्ति से पहले एक और श्लोक का पाठ मानते हैं—'पद्मावत्या मुख वीक्ष्य विशेषकविभूषितम्। जीवत्या-वन्तिकेऽरेव पूर्वं विज्ञातमेव मे ॥' अर्थात् पद्मावती के मुख पर तिलकों की विचित्रता देखकर मैंने पहले ही समझ लिया था कि वासवदत्ता जीवित है, क्योंकि

तिलक-रचना दूसरे हाथ से संभव नही।) परन्तु यह पाठ आदर्श पुस्तकों में नही मिलता है और प्रकरण के अनुरोध से इसकी वैसी आवश्यकता भी नही प्रतीत होती है। इसलिए हमने भी छोड़ दिया ॥८॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण। आ उदअह्लाण-सङ्कित्तणेण तत्तोहोदि चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्टा भवे [अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न। आ उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत्।]

विदूषक—हाय ! यह असंभव नही है। हाँ, उदकस्नान की चर्चा होने के कारण आपने महारानी का स्मरण करते हुए स्वप्न मे उन्हें देखा होगा।

Vidushaka—Alas, this is not impossible, you fell asleep as I was mentioning Ujjain and its delightful bathing places, and no doubt the King of your late queen you dreamed of her.

टिप्पणी—(१) अविहा—यह शोकसूचक अव्यय है। (२) असम्भावनीय-मेतद् न—यह असम्भव नही है अर्थात् आपने जो कहा—'मित्र ! मैने वासवदत्ता को देखा, वह मुझे जगाकर चली गई'—वह असम्भव नहीं है। (३) आ—यह स्मरणार्थक अव्यय है। (४) उदकस्नानसङ्कीर्तनेन—जल-स्नान के वर्णन से अर्थात् पहले जो मैने कहा था कि उज्जयिनी मे बहुत-से रमणीय स्नानागार है, उसके श्रवण से।

राजा—एवम् मया स्वप्नो दृष्टः ?

राजा—ऐसा, तो मैने स्वप्न देखा है ?

King—Well then it was a dream.

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥६॥

अन्वय—यदि तावत् अयम् स्वप्नः, अप्रतिबोधनं धन्यम् अथ अयं विभ्रमो वा स्यात्, मे विभ्रमो हि चिरम् अस्तु ॥६॥

संस्कृत टीका—यदि—चेत्, तावत्—वाक्यालंकारार्थमिदम्, अयम्—एषः वासवदत्तादर्शनरूपो विषय इत्यर्थः, स्वप्नः—मनःसङ्कल्पजन्यं स्वप्नं विज्ञान, (तर्हि) अप्रतिबोधनम्—अजागरणं, धन्यं—प्रशस्तम् इष्टतमम् इति यावत्। अथ—पक्षान्तरे, अयं—वासवदत्तादर्शनरूपो विषयः, विभ्रमः—मनोभ्रान्तिः,

वा--पादपूरणार्थकमिदम्, स्यात्--भवेत्, (तर्हि) मे--मम, विभ्रमः--बुद्धिभ्रमः, हि--एव, चिरं--दीर्घकालम्, अस्तु--तिष्ठतु। (अथ भावः--वासवदत्ता मया विलोकिता इत्ययं यदि स्वप्नो वर्तते तर्हि स एव स्वप्नः सर्वदा मे अनुवर्तताम्। अथवा यद्ययं मतिभ्रमो वर्तते तर्हि सा भ्रान्तिरेव मे भूयासं कालं यावदनुवर्तताम्।) ॥९॥

अनुवाद--अगर यह स्वप्न है तो न जागना ही अच्छा होता और यदि यह मतिभ्रम हो तो मेरा (यह) मतिभ्रम चिरकाल तक बना रहे ॥९॥'

टिप्पणी--(१) स्वप्नः--स्वप्+नन् (स्वपो नन्) अदादिः परस्मैपदी। (२) अप्रतिबोधनम्--न जागना। न प्रतिबोधनम् इत्यप्रतिबोधनम् (नञ् तत्पु०)। प्रति+बुध्+णिच्+ल्युट् (भावे)। (३) धन्यम्--यहाँ धन्य का अर्थ है 'भाग्यवान्'। निद्रा में ही रहना उसके लिए (राजा के लिए) सौभाग्य की बात है क्योंकि स्वप्न में उसे अपनी प्रियतमा का दर्शन होता है। (४) विभ्रमः--चित्त का विक्षेप। वि√भ्रम्+घञ् (अ)। 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इति सूत्रेण वृद्धिनिषेधः। यहाँ राजा स्वप्न या विभ्रम की अवस्था को भी चिरकाल तक बनाये रखना चाहता है। क्योंकि सुखार्थी मनुष्य जिस अवस्था में सुख पाता है, उसी अवस्था में रहना चाहता है। वत्सराज को स्वप्न में ही वासवदत्ता के दर्शनों का सुख मिला। यदि इसे उसके मन का भ्रम माना जाय तो भी उसे अपनी प्रियतमा के देखने का सुख मिलता है। सुख को हाथ से क्यों जाने दे? अभिज्ञानशाकुन्तल के छठवें अंक का दसवाँ श्लोक द्रष्टव्य है। वहाँ दुष्यन्त के विभ्रम का ऐसा ही वर्णन है 'स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम्।' यह अनुष्टुप् छन्द है ॥९॥

विदूषकः--भो वअस्स ! एदस्सिं णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि। सा तुए दिट्ठा भवे। [भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति। सा त्वया दृष्टा भवेत्।]

विदूषक--हे मित्र ! इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है। उसे आपने देखा होगा।

Vidushaka—Oh friend, a Yakshini named Avanti Sundari lives here. You might have seen her.

टिप्पणी—(१) नाम—यह अव्यय है। (२) यक्षिणी—अप्सराविशेष जिसका सम्बन्ध मर्त्यलोकवासियों से कहा जाता है। यक्षः पूजा अस्ति अस्याः इति विग्रहे यक्ष+इनि—ङीप् (ई)।

राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥

अन्वय—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन (मया) चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् दीर्घालकम् मुखम् दृष्टम् ॥१०॥

संस्कृत टीका—स्वप्नस्य—स्वप्नावस्थायाः, अन्ते—समाप्तौ, विबुद्धेन—जागरितेन (मया) चारित्रम्—सच्चरित्रताम् सतीत्वमिति यावत्, अपि—जीवितेन सह इति भावः, रक्षन्त्याः—पालन्त्याः, (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्—नेत्राभ्यां विप्रोषितं प्रवासं गतं दूरीभूतमिति यावत् अञ्जनं कज्जलं यस्मिन् तत् तथाभूतं, दीर्घालकं—दीर्घाः लम्बमानाः अलकाः चूर्णकुन्तलाः यस्मिन् तत् तादृशं, मुखम्—आननं, दृष्टम्—अवलोकितम् (अयं भावः—यदा अहं स्वप्नात् प्रबुद्धः तदा ताम् अपश्यम्। तस्या नेत्रे अञ्जनशून्ये आस्ताम्। मुखे च दीर्घाः केशाः लम्बमाना आसन्। अतोऽहं मन्ये यत् सा न केवलं जीवति परञ्च स्वचरित्रमपि रक्षति। तथा च नेयं त्वत्कथिता यक्षिणी इति मे स्थिरो निश्चयः।) ॥१०॥

अनुवाद—राजा—नहीं, नहीं, स्वप्न के अन्त में जागने पर मैंने चरित्र की रक्षा करती हुई वासवदत्ता का बिना काजल की आँखों वाला और लटके हुए बालों वाला मुख देखा ॥१०॥

King—No, no. When I woke up after the dream, I saw her face with eyes devoid of collyrium and the long hair of hers still guarding her character.

टिप्पणी—(१) विबुद्धेन—जागे हुए। वि√बुध्+क्त(त) (कर्तरि)। यहाँ विशेष्य 'मया' अप्रकट है, फिर भी विशेषण से काम चल जाता है—'विशेषणमात्रप्रयोगो विशेष्यप्रतिपत्तौ'। (२) चारित्रम्—चरित्रमेव चारित्रम्, चरित्र+अण् (स्वार्थे)। (३) दीर्घालकम्—जिस पर घुंघराले बाल लटके हुए हों अर्थात् बिना सँवारे हुए हों। क्योंकि पति-वियोग-काल में शृङ्गार आदि करना वर्जित है—'क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितमर्तृका ॥' अलक—जुल्फ, घुंघराले बाल। 'अलकाश्चूर्णकुन्तलाः' इत्यमरः।

(४) नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्—बिना काजल की आँखों वाला। नेत्राभ्यां विप्रोषितम् (तृ० तत्पु०) नेत्रविप्रोषितम् अञ्जनम् यस्मिन् तत्। (बहुव्रीहि)। यह अनुष्टुप् छन्द है ॥१०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

अन्वय—सन्त्रस्तया तया देव्या यः अयम् बाहुः निपीडितः स्वप्ने अपि उत्पन्नसंस्पर्शः रोमहर्षम् न मुञ्चति ॥११॥

संस्कृत टीका—सन्त्रस्तया—भीतया, तया देव्या—वासवदत्तया, योऽयं—पुरो दृश्यमानः, बाहुः—भुजः, निपीडितः—शनैः गृहीतः, (स भुजः) स्वप्नेऽपि—स्वप्नावस्थायामपि, उत्पन्नसंस्पर्शः—उत्पन्नः सञ्जातः संस्पर्शः सम्पर्को यत्र तादृशः, रोमहर्षं—रोमाञ्चं, न मुञ्चति—न त्यजति। (अय भावः—यदा शयानस्य मम बाहुं वासवदत्ता अस्पृशत् तदा तस्मिन् रोमाञ्चः सञ्जातः। इदानीमपि स भुजः रोमाञ्चित एव। प्रत्यक्षं पश्य इमम्। अतो मन्ये यत् सा वासवदत्तैव न तु यक्षिणी।)॥११॥

अनुवाद—और भी मित्र ! देखो देखो, डरती हुई उस देवी ने जो इस बाँह को पकड़ा सो निद्रावस्था में भी स्पर्श-सुख के कारण इसमें रोमाच हो आया, जो अभी तक बना हुआ है ॥११॥

And again see friend. This hand that was held fast by the queen in fear, does not give up the joy of horripilation even though produced in a dream.

टिप्पणी—(१) सन्त्रस्तया—भयभीत, सशंकित। सम्+त्रस्+क्त (त) (कर्तरि) टाप्, (आ) तया। वासवदत्ता भयभीत इसलिए थी कि कहीं राजा जाग न जायें। (२) निपीडितः—धीरे या हलके हाथों पकड़ा हुआ। नि√पीड्+णिच् (स्वार्थे)+क्त (त)। (३) संस्पर्शः—सम्+स्पृश्+घञ् (अ)। (४) रोमहर्षम्—रोम्णां हर्षः, तम्। रोमों का पुलकित हो जाना। जैसे यहाँ वासवदत्ता के कर-स्पर्श से उदयन को रोमाच हुआ है उसी तरह उत्तररामचरित मे सीता के हस्तस्पर्श से राम के पुलकित होने का वर्णन मिलता है। रोमाच को शृंगार रस के आठ सात्त्विक भावों में से अन्यतम माना गया है। (५) मुञ्चति—छोड़ता है। मुच्+लट्। प्र० पु० ए० व०। यह अनुष्टुप् छन्द है ॥११॥

विदूषकः—मा दाणि भवं अणत्थं चिन्तिअ । एदु एदु भवं । चउस्सालं पविसामो । [इदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा । एत्वेतु भवान् । चतुःशालं प्रविशामः ।]

विदूषक—अब आप व्यर्थ की बात मत सोचिये । आइये, आप आइये। चौसाल में चलें ।

Vidushaka—Now enough of thinking of useless things. Come, come on we enter the quadrangle.

(प्रविश्य) काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह—एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् ॥ तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान् । अपि च—

संस्कृत टीका—आर्यपुत्रः—श्रीमान्, जयतु—विजयताम् । अस्माकं महाराजः—मगधेश्वरः, दर्शकः, भवन्त—श्रीमन्तम्, आह—कथयति, (यत्) एष खलु—अयं हि, भवतः—तव, अमात्यः—मन्त्री, रुमण्वान्, महता—विशालेन, बलसमुदायेन—सैन्यसमूहेन, (सह) उपयातः—समुपस्थितः, आरुणिम्—वत्सराजस्य शत्रुम्, अभिघातयितुम्—नाशयितुम् । तथा तमेवार्थं साधयितुं, मामकानि—मदीयानि, हस्त्यश्वरथपदातीनि—हस्तिनः गजाः अश्वाः घोटकाः रथाः पदातयश्च पादचारिणश्च येषु सन्ति तादृशानि, विजयाङ्गानि—विजयसाधनीभूतानि सैन्यानि, सन्नद्धानि—सज्जितानि (सन्ति) । तत्—तस्मात्, भवान्—श्रीमान्, उत्तिष्ठतु—विजययात्रार्थम् उद्यतो भवतु । अपि च—अन्यच्च,

अनुवाद—(प्रवेश करके) कंचुकी—महाराज विजयी हों। हमारे महाराज दर्शक ने आपसे कहा है कि यह आपका मन्त्री रुमण्वान् भारी सेना के समूह के साथ (आप से) आरुणि का वध कराने के लिए आ पहुँचा है। और मेरी विजय की सेनायें—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—तैयार हैं। इसलिए आप उठिये । और भी—

Chamberlain—Victory to his Majesty. Our great King Darshak says to your Majesty. Here is your Minister Rumanvan with a great gathering of forces to attack Aruni. My own divisions for victory—elephants, horses, chariots, and foot-soldiers are ready. Therefore arise your honour, and again.

टिप्पणी—(१) मा चिन्तयित्वा—यहाँ माङ के योग में क्त्वा प्रत्यय चिन्त्य है। इस नाटक मे ऐसे प्रयोग कई जगह आये हैं। यदि इन प्रयोगों को पाणिनि-सम्मत बनाना ही हो तो 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' सूत्र में 'अलम्' और 'खलु' को उपलक्षणार्थक मानकर क्त्वा प्रत्यय कीजिये। (२) आर्यपुत्रः—आर्यस्य पुत्रः षष्ठी तत्पुरुष वा आर्यश्चासौ पुत्रश्च कर्मधारय। (३) एव खलु भवतः—इस वाक्य मे दोनों खलु शब्द वाक्यालंकारार्थ हैं। (४) अभिघातयितुम्—मरवाने के लिए। अभि√हन्+णिच्+तुमुन् 'हनस्तोऽचिण्णलोः' इति सूत्रेण तकारान्तादेशः, 'हो हन्तेः'—इति सूत्रेण हस्य घः। (५) हस्त्यश्वरथपदातीनि—हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च तेषां समाहारः हस्त्यश्वरथम् समाहार द्वन्द्व समास, हस्त्यश्वरथयुक्ताः पदातयः येषु तानि बहुव्रीहि समास। 'विजयाङ्गानि' का विशेषण है। पदाति—पैदल। पादाभ्याम् अतति गच्छति इति पदातिः, पाद√अत्+इण् 'अज्यतिभ्यां पादे च' इत्यनेन; ततः 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति सूत्रेण पादस्य पदादेशः। (६) मामकानि—मम इमानि इति विग्रहे अस्मद्+अण् 'तवकममकावेकवचने' इति सूत्रेण अस्मदो ममकादेशः। (७) विजयाङ्गानि—विजयकारकाणि अङ्गानि—सैन्यानि इति विजयाङ्गानि मध्यमपदलोपी समास। (८) सन्नद्धानि—सज्जित, तैयार। सम्√नह्+क्त (त)।

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम्।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

अन्वय—ते रिपवः भिन्नाः, भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः अपि भवत्प्रयाणसमये या पार्ष्णी तस्याः विधानं कृतम्। अरिप्रमाथजननं यत् यत् साध्यम् तत् तत् मया अनुष्ठितम्। अपि च बलैः त्रिपथगा नदी तीर्णा, च वत्साः तव हस्ते ॥१२॥

संस्कृत-टीका—ते—तव, रिपवः—शत्रवः, भिन्नाः—भेदं प्रापिताः, भवद्गुणरताः—भवतः श्रीमतः गुणेषु दयादाक्षिण्यादिषु रताः अनुरक्ताः, पौराः—नागरिकाः प्रजा इत्यर्थः, समाश्वासिताः—आश्वासनं प्रापिताः, अपि—तथा, भवत्प्रयाणसमये—भवदीयविजययात्रावसरे, या पार्ष्णी—यत् सैन्यपृष्ठं, तस्याः—पार्ष्ण्याः, विधानं—रचना, कृतम्—सम्पादितम्। अरिप्रमाथजननं—अरीणां शत्रूणां प्रमाथः विध्वंसः तस्य जननम् उत्पादकं, यत्, यत् कार्यं, साध्यं—करणीयं,

तत् तत् कार्यं, मया—दर्शकेन, अनुष्ठित—साधितम्। अपि च—अन्यच्च, बलैः—सैन्यैः, त्रिपथगा नदी—गङ्गा नाम सरित्, तीर्णा—लङ्घिता। च—अतः, वत्साः—वत्सराज्यं, तव—भवतः, हस्ते—करे (स्थिताः सन्ति।) (अयं भावः—मया भवतः शत्रवः कूटनीत्या परस्परं विभक्ताः कृताः। भवद्गुणानुरक्ताः प्रजाः 'शीघ्रं वः नृपः शत्रून् पराजित्य आगमिष्यति' इति कथनेन समाश्वासिताः। अपि च भवतो यात्रावसरे पृष्ठानुवर्तिन्याः सेनाया अपि सम्यक् प्रबन्धः कृतः। किं बहुना—शत्रुविध्वंसनोचितं सकलमपि संविधानकमाचरितम्। सेनापि गङ्गानदी तीर्त्वा अग्रे गता। इत्थञ्च वत्सराज्यं भवतो हस्तगतं वर्तते इत्यवगम्यताम्)।।१२।।

अनुवाद—आपके शत्रुओं में फूट डाल दी गयी है। आपके गुणों पर रीझे हुए नगरवासियों को आश्वासन दिला दिया गया है और आपकी विजय-यात्रा के समय पीछे चलने वाली सेना का भी प्रबन्ध कर दिया है। (इस प्रकार) शत्रु का नाश करने वाला जो-जो काम होना चाहिए, वह सब मैंने कर लिया है। यहाँ तक कि सेनायें गङ्गा नदी पार कर चुकी है। अब वत्सदेश आपके हाथ में ही है (ऐसा समझिये) ।।१२।।

Your enemies are split, the citizen attached to your virtues are cheered up. The protection of the rear that would march at the time of your departure, is arranged, what ever has to be accomplished for bringing about the destruction of the enemy has been all done by me. The river Ganga (Tripathaga) is also crossed by the forces. and the land of the vatsas is in your hands.

टिप्पणी—(१) भिन्नाः—एक दूसरे से अलग कर दिये गए। यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ है। शत्रुओं में फूट डालना यह एक नीति है। (२) भवद्गुणरताः—आपके गुणों पर अनुरक्त। भवतः गुणाः (ष० तत्पु०) तेषु रताः (स० तत्पु०)। 'पौराः' का विशेषण है। (३) समाश्वासिताः—जिन्हें आश्वासन या सान्त्वना दी गई हो। सम्—आ√श्वस्+णिच्+क्त (त)। (४) पौराः—पुरवासी लोग। पुरे भवाः इति पौराः, पुर+अण् 'तत्र भवः' इति सूत्रेण। जब शत्रुओं में फूट हो तथा अपनी प्रजा के लोग राजभक्त हो तब शत्रुओं पर आक्रमण करना चाहिए। कामन्दक-नीतिशास्त्र इस मत का समर्थन करता है, यथा—"स्फीतं पदानुरक्तं च भवेत्प्रकृतमण्डलम्। परस्य विपरीतं च तदा विग्रहमाचरेत्।।"
(५) पार्ष्णी—सेना का पृष्ठभाग। 'पार्ष्णिः स्यादुन्मदस्त्रियाम्' इस कोश के

प्रमाण से यह शब्द इकारान्त स्त्रीलिंग है। किन्तु 'कृतिकारादक्तिनः' से ङीप् करने पर 'रात्रिः, रात्री:' की तरह 'पार्ष्णिः,पार्ष्णी' दोनों रूप चलते हैं। कामन्दक-नीति के अनुसार—'पुरश्च पश्चाच्च यदा समर्थः तदाभियायान्महते फलाय। पुरः प्रसर्पन्नविशुद्धपृष्ठः प्राप्नोति तीव्रं खलु पार्ष्णिमेदम् ॥' (६) भवत्प्रयाण-समये—आपके प्रयाण के समय। भवतः प्रयाणम् तस्य समयः तस्मिन्। (ष० तत्पु०) अधिकरण मे सप्तमी हुई है। प्रयाण—सैन्य-अभियान। (७) यत् यत्—तत्—जो जो मो सो वीप्सायां द्विरुक्तिः। 'नित्यवीप्सयोः' द्वित्वम् (८) अरिप्रमायजननम्—शत्रुओं को विध्वंस करने वाले। अरेः प्रमायः तस्य जननम् (ष० तत्पु०)। प्र+मय्+घञ्। जननम्—जन्+णिच्+ल्युट्। (६) त्रिपथगा—गंगा। 'भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि' इत्यमरः। त्रयाणा स्वर्ग-मर्त्यपातालात्मना पथां मार्गाणां समाहारः त्रिपथम् द्विगुसमास, तेन गच्छति या सा त्रिपथगा, त्रिपथ√गम्+ड—टाप्। (१०) वत्साः—वत्स देश। 'जनपदवाचिनः शब्दाः भूम्नि प्रयुज्यन्ते' इस नियम के अनुसार यहाँ बहुवचनान्त प्रयोग शुद्ध है। वत्साना निवासो जनपदः वत्साः, वत्स+अण् 'तस्य निवासः' इत्यनेन ततः 'जनपदे लुप्' इति सूत्रेण अणो लुप्, 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' इति सूत्रेण प्रकृतिवत् लिंगवचनभाव। यह शार्दूल-विक्रीडित छंद है ॥१२॥

राजा—(उत्थाय) बाढम्। अयमिदानीम्,

राजा—(उठकर) बहुत ठीक। अभी मैं—

The King—(Rising) very well, now this.

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे समार्गणं दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥१३॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।) इति पञ्चमोऽङ्कः।

अन्वय—उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि दारुणकर्मदक्षम् तम् आरुणिम् नाशयामि ॥१३॥

संस्कृत टीका—उपेत्य—अभिगम्य आक्रम्य इति यावत्, नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे—नागेन्द्राः हस्तिश्रेष्ठाः तुरङ्गाः अश्वाश्च तैः तीर्णे तरणक्रीडाविषयीकृते, विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे—विकीर्णाः प्रक्षिप्ताः ये बाणाः शराः त एव उग्राः भयानकाः तरङ्गाणाम् ऊर्मीणां भङ्गा इव यस्मिन् तथाभूते। महार्णवाभे—महार्णवस्य महासागरस्य आभा इव आभा यस्य तथाभूते, युधि—संग्रामे, दारुणकर्मदक्षम्—दारुणकर्मसु भयंकरकार्येषु दक्ष निपुणम्, तं—प्रसिद्धम्,

आरुणिम्--एतन्नामकशत्रुम्, नाशयामि--हन्मि। (अय भावः--अहमिदानीमेव गजवाजिसञ्चारसङ्कुले विकीर्णबाणरूपभयानकरतरङ्गलहरीव्याप्ते महासागरोपमे संग्रामे दुष्टमारुणिम् आक्रम्य समूलं विध्वंसयामि।) ॥१३॥

अनुवाद--आक्रमण करके विशाल हाथियों एवं घोड़ों से पार किए हुए और लाए हुए बाणो रूपी भयंकर लहरों वाले महासागर के समान युद्ध मे घोर कर्म करने मे पटु उस आरुणि को मार डालता हूँ ॥१३॥

(सब का प्रस्थान) पाँचवा अक समाप्त।

Meeting that Aruni, clever in horrible deeps. I shall destroy him in the great ocean of the battle-field, where elephants and horses stem the great tide where singng waves of cruel arrows break. (Exeunt omnes End of Act V)

टिप्पणी--(१) उपेत्य--समीप जाकर या चढाई करके। उप√इ+क्त्वा--ल्यप्। (२) नागेन्द्रतुरङ्गत्तीर्णे--जहाँ बड़े-बड़े हाथी और घोड़े तैर रहे हों अर्थात् घूम रहे हों। नागा इन्द्राः इव इति नागेन्द्राः उपमित समास, नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्च इति नागेन्द्रतुरङ्गाः इतरेतरद्वन्द्व, नागेन्द्रतुरङ्गैः तीर्णः तृतीया तत्पुरुष, तस्मिन्। (३) दारुणकर्मदक्षम्--घोर कर्म करने में पटु। 'आरुणिम्' का विशेषण है। दारुणानि च तानि कर्माणि (कर्मधा०) तेषु दक्षः तम्। (स० तत्पु)। (४) विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे--जहाँ बाणप्रक्षेपरूपी भयकर लहरें उठ रही हो। विकीर्णाः=प्रक्षिप्ताः बाणाः विकीर्णबाणाः कर्मधारय समास, उग्रा. तरङ्गाः उग्रतरङ्गाः कर्मधारय, उग्रतरङ्गाणा भङ्गाः उग्रतरङ्गभङ्गाः ष०त०, विकीर्णबाणाः उग्रतरङ्गभङ्गाः इव यत्र सः बहुव्रीहि समास, तस्मिन्। अथवा बाणाः उग्रतरङ्गभङ्गा इव इति बाणोग्रतरङ्गभङ्गाः उपमित समास, विकीर्णाः= व्याप्ताः बाणोग्रतरङ्गभङ्गाः यत्र सः बहुव्रीहिसमास। (५) महार्णवाभे-महासमुद्र के समान भासमान। महांश्चासौ अर्णवः महार्णवः कर्मधारय, 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' सूत्रेण महतः तकारस्य आत्वम्, महार्णवस्य आभा इव आभा यस्य स महार्णवाभः, बहुव्रीहि, तस्मिन्। (६) युधि०-युद्ध में √युध्+क्विप् 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' इति वार्तिकेन। यहाँ 'स्त्रियाम्' इस अधिकार में क्विप् प्रत्यय होने से तथा 'समित्याजिसमिद् युधः' इस कोश प्रमाण से युध् शब्द के स्त्रीलिंग होने पर भी भास ने इसका प्रयोग पुंलिंग मे किया है। इससे सिद्ध होता है कि या तो भास के समय इसका प्रयोग पुलिग में भी होता रहा होगा या

'नरंकुशाः कवयः' का अनुसरण उन्होंने किया है (७) नाशयामि—√नश्+णिच्+लट्—मिप् उ० पु० ए० व०। यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ में लट्लकार हुआ है। इस श्लोक में युद्ध की उपमा महासमुद्र से दी गई है। जैसे महासमुद्र में जल-हस्ती और जल-घोटक इधर-उधर घूमते रहते हैं उसी तरह इस समरांगण में भी हाथी-घोड़े घूम रहे हैं। उधर महासागर उत्ताल तरंगों से उद्वेलित होता रहता है तो समर-क्षेत्र भी बाणवर्षण की लहरों से तरंगित हो रहा है। इसमें उपमा अलंकार है और उपेन्द्रवज्रा छंद है ॥१३॥

अथ षष्ठोऽङ्कः

(Act VI)

(उज्जयिनी के राजा और रानी द्वारा प्रेषित दूत निजी धात्री के साथ महाराज उदयन की विजय पर बधाई देने आया और विवाह के समय वासवदत्ता के साथ लिये गये चित्र को उन्हें भेंट किया। पद्मावती ने देखा कि चित्रस्थ वासवदत्ता ब्राह्मणी आवन्तिका से मिलती-जुलती है। उसी समय यौगन्धरायण धरोहर रूप अपनी बहिन को वापिस लेने आता है। धात्री वासवदत्ता को पहचान जाती है और रहस्योद्घाटन हो जाता है। इस प्रकार पति-पत्नी का सानन्द मिलन होता है। यौगन्धरायण ने यह योजना राजहित में बनाई थी। महासेन को यह शुभ सवाद सुनाने के लिए राजा सभी के साथ उज्जयिनी के लिए प्रस्थान करते हैं।)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः।) काञ्चुकीयः—क इह भोः ? काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(तदनन्तर कचुकी का प्रवेश।) कचुकी—अजी! यहाँ सोने के बाहर वाले फाटक पर कौन है ?

(Enter a Chamberlain) Chamderlain—Who is here please ? Who is occupying the jewelled archgate ?

(प्रविश्य) प्रतीहारी—अय्य! अहं विजआ। किं करीअदु ? [आर्य! अहं विजया। किं क्रियताम् ?

(प्रवेश करके) प्रतीहारी—आर्य! मैं विजया हूँ। क्या आज्ञा है ?

Door-keeper—(Entering) Sir, I Vijaya. What is to be done ?

काञ्चुकीयः—भवति! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति।

संस्कृत टीका—भवति!—कल्याणि!, निवेद्यतां—सूच्यताम्, वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय—वत्सानाम् एतन्नामकानां देशानां राज्यस्य लाभेन—पुनः

प्राप्त्या प्रवृद्धः वृद्धिं गतः उदयः सम्नतिः यस्य तस्मै, उदयनाय, एषः—अहम्, खलु—निश्चयेन, महासेनस्य—उज्जयिनीपतेः, सकाशात्—समीपात्, रैभ्यसगोत्रः—रैभ्यगोत्रोत्पन्नः, काञ्चुकीयः—कञ्चुकी, प्राप्तः—उपस्थितः, तत्र भवत्या—मान्यया, अङ्गारवत्या—महासेनपत्न्या, प्रेषिता—प्रेरिता, धात्री, वसुन्धरा नाम—वसुन्धरेति नाम्नी, वासवदत्ताधात्री च—वासवदत्ताया उपमाता च, (द्वौ आवाम्) प्रतीहारम्—द्वारदेशम्, उपस्थितौ—समुपागतौ (स्वः) इति।

अनुवाद—कंचुकी—भद्रे! वत्सदेश के राज्य पा जाने से विशेष उन्नति को प्राप्त हुए उदयन से निवेदन कीजिये कि महासेन के पास से आया हुआ रैभ्यगोत्रोत्पन्न (अथवा रैभ्य नाम का) कंचुकी और माननीया अंगारवती की भेजी हुई श्रीमती वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाय दोनों ही दरवाजे पर आये हुए हैं।

…yan, whose rise is advanced …ying, "This Chamberlain, a … here from Mahasena, and …of Vasavadatta, sent by her ladyship, Angarvati. Both are waiting at the gate.

टिप्पणी—(१) काञ्चनतोरणद्वारम्—सोने के बने हुए बाहरी फाटक पर। तोरणमेव द्वारम् तोरणद्वारम् मयूरव्यंसकादित्वात् समास, काञ्चननिर्मितं तोरणद्वारम् काञ्चनतोरणद्वारम् मध्यमपदलोपी समास। (२) अलङ्कुरुते—सजाय या शोभित कर रहा है। (३) प्रतीहारी—द्वारपाल का काम करने वाली, स्त्री, द्वारपालिका। प्रति√हृ+घञ् (अ), 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति सूत्रेण उपसर्गस्य दीर्घः=प्रतीहारः=द्वारम् 'स्त्री द्वार्द्वार प्रतीहारः' इत्यमरः। प्रतीहारः अस्ति अस्य इति प्रतीहारः=द्वारपाल, प्रतीहार+अच् अर्श आदिभ्यात्, स्त्रियाम् प्रतीहार+ङीष्=प्रतीहारी। (४) निवेद्यताम् निवेद्यताम्—शीघ्रता सूचित करने के लिए दो बार उच्चारण हुआ है। नि√विद्+णिच्+लोट् (कर्मणि) यक्। (५) वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयाय—वत्सानां राज्यम् ष० त०, तस्य लाभः ष० त०, तेन प्रवृद्धः तृ० त०, वत्सराज्यलाभप्रवृद्धः उदयः यस्य सः ब० स०, तस्मै। यहाँ नाटककार कञ्चुकी के मुँह से मात्र उदयन के वत्सराज्य की प्राप्ति की सूचना देकर युद्ध का वर्णन बचा गये हैं। क्योंकि नाटक में युद्ध का वर्णन करना निषिद्ध है। दूराह्वानं वधं युद्धं ··· प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्। दशरूपक। (६) रैभ्यसगोत्रः—रैभ्य गोत्र में उत्पन्न या नाम का व्यक्ति। (७)—रैभ्येण समानं तदनुपूर्वीकं गोत्रं नाम यस्य स तादृशः। यहाँ 'ज्योतिर्जनपद-

रात्रिनामि नामगोरूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुपु' सूत्र से समान को स आदेश हुआ। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि गोत्रनाम के आगे 'स' का प्रयोग अवश्य करना चाहिए —'सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र धीमता। सकारः कुतुपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत्।" (८) प्रेषिता—भेजी हुई। प्र√इष्+णिच्+क्त(त)—टाप् (आ)।

प्रतीहारी—अय्य ! अदेसकालो पडिहारस्स। [आर्य ! अदेशकालः प्रतीहारस्य।]

प्रतीहारी—आर्य ! द्वारपाल का स्थान और समय नही है। अर्थात् इस समय द्वारपाल के लिए राजा से कुछ कहने-सुनने का अवसार नही है)।

Door-keeper—Sir, the occaison is not suitable for me to go before the King.

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

कंचुकी—क्यों स्थान और समय (अर्थात् अवसर) नही है।

Chamberlain—No suitable. And why ?.

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो। अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा। तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति। [शृणोत्वार्यः। अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता। तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति।]

प्रतीहारी—आर्य सुने—आज स्वामी के सूर्यामुख नामक महल में जाकर किसी ने बीणा बजाई। उसे सुनकर स्वामी ने कहा कि घोषवती का-सा स्वर सुनाई दे रहा है।

टिप्पणी—(१) अदेशकालः प्रतीहारस्य—प्रतीहार=द्वारपाल। 'प्रतीहारो द्वारपालः' इत्यमरः। अदेशकाल —देशसहितः कालो देशकालः मध्यमपदलोपी समास, अप्रशस्तः अयुक्तः वा देशकालः इति अदेशकालः नञ् समास। राजा से निवेदन करने के लिए द्वारपाल के उपस्थित होने योग्य यह समय और स्थान नही है। (२) सुर्यामुखप्रासादगतेन—सूर्यामुख नामक प्रासाद मे गये हुए अथवा सूर्या=नवोढा पद्मावती के मुख=प्रमुख प्रासाद=महल में गये हुए। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के प्रथमाध्याय के 'देववया सूर्यया सार्धम्' इस श्लोक का

अर्थ करते हुए श्रीधर स्वामी ने मूर्या शब्द की व्याख्या नवोढा की है। (३) घोषवत्या:—घोषवती नामक वीणा का। घोषः प्रशस्तः घोषः=शब्दः अस्ति अस्याः इत्यर्थे घोष+मतुप्, मस्य वः, ङीप्=घोषवती, तस्याः। कहते हैं कि उदयन को यह घोषवती वीणा वासुकि के भाई वसुनेमि ने दी थी। यह ऐन्द्रजालिक वीणा थी। इसके शब्द से हाथी वशीभूत हो जाता था। उदयन ने अपनी प्रियतमा वासवदत्ता को यह वीणा दे दी थी। वासवदत्ता की नाटकीय मृत्यु के पश्चात् यह वीणा भी रहस्यमय ढंग से गायब हो गई थी। अब पुनः प्रकट हुई। राजा उसके स्वर को पहचान जाता है और बड़े प्रेम से प्राणप्रिया वासवदत्ता का स्मरण करने लगता है।

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

कंचुकी—फिर क्या हुआ ?

Chamberlain—Well, then ?

प्रतिहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो—कुदो इमाए वीणाए आगमो ? तेण भणिअं—अह्मेहि णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठ। जइ प्पओअणं इमाए, उवणीअदु भट्टिणो त्ति। तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा। तदो मोहप्पच्चागदेण वप्फपज्जाउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं दिट्ठासि घोसवदि ! सा हु ण दिस्सदि त्ति। अय्य ! ईदिसो अणवसरो। कहं णिवेदेमि ?

[ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोऽस्या वीणाया आगम इति। तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा। यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्र इति। तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता। ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्—दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति। आर्य ! ईदृशोऽनवसरः। कथं निवेदयामि ?]

-सवता, दृष्टा--प्रवलोकिता। यदि--चेत्, (श्रीमतः) प्रनया--घोषवत्या प्रयोजनम्--कार्यम्, (तर्हि प्रस्माभिः इयम्) मर्षे--स्वामिने श्रीमते इति यावत्, उपनीयताम्--समर्प्यताम्। उपनीतां--समर्पितां, तां--वीणाम्, प्रङ्के कृत्वा--उत्संगे संस्थाप्य, भर्ता--स्वामी, मोहं गतः--मूर्च्छां प्राप्तः। ततः--पश्चात्, मोहप्रत्यागतेन--मोहात्प्रतिनिवृत्तेन, बाष्पपर्याकुलेन--प्रश्रुमलिनेन, मुखेन--वदनेन, भर्त्रा--स्वामिना, भणितम्--उक्तम् घोषवति!, (त्व) दृष्टासि--प्रवलोकितासि, (परं) सा--वासवदत्ता, न दृश्यते--न विलोक्यते। प्रार्य!--श्रीमन्!, ईदृशः--पूर्वोक्तप्रकारः, प्रनवसरः--प्रयोग्यः समयः निवेदनस्येति शेषः। कथं--केन प्रकारेण, निवेदयामि--सूचयामि भवतः सन्देशमागत-मिति शेषः।

प्रनुवाद--प्रतीहारी--तब वहां जाकर (उससे) पूछा कि यह वीणा कहाँ से मिली है। उसने कहा--हमने नर्मदा के किनारे कुशाग्रों की झाड़ी मे उलझी हुई इसे पाया। यदि इसकी प्रावश्यकता हो तो महाराज को यह भेंट दे दूँ। समर्पित की हुई उस वीणा को गोद में लेकर स्वामी मूर्च्छित हो गये। फिर सचेत होने पर प्रांसुप्रों से व्याप्त मुख से स्वामी ने कहा--'घोषवती'! तुम तो मिल गई हो परन्तु वह दिखाई नही देती।' महोदय! इस प्रकार उचित अवसर नही है। कैसे निवेदन करूँ?

Then having gone there he asked. "How did you get this lute ?" He said., "I found it in a clump of jungle grass on the banks of Narbada. If there is any use for it, be pleased, sire, to accept it." The king took it and elasped it to his breast and swooned away. Then recovering from the swoon and with the face flooded with tears, the lord said, "you are seen Ghoshavati; she however is not seen" Sit, thus the time is improper. How can I usher you ?

टिप्पणी--(१) **कूर्चगुल्मलग्ना**--कूर्चाना गुल्माः कूर्चगुल्माः ष० त०, तेषु लग्ना कूर्चगुल्मलग्ना स० त०। कूर्च=कुश। 'कूर्चोऽस्त्री श्मश्रुपीठयोः, भ्रूमध्ये कत्थने दर्भे' इति कोशः। (२) **प्रनया**--यहाँ फल को भी हेतु मानकर हेतु में तृतीया हुई। (३) **मोहप्रत्यागतेन**--होश में प्राने पर। (४) **बाष्पपर्याकुलेन**--प्राँसुप्रों से भरे हुए बाष्पैः पर्याकुलम् तृतीया तत्पुरुष तेन।

काञ्चुकीयः--भवति! निवेद्यताम्। इदमपि तदाश्रयमेव।

कंचुकी—महोदये ! निवेदन कर दीजिये। यह भी उसी से संबंध रखता है।

Chamberlain—Lady, please inform this also has reference to it.

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि। एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ। ता इह एव्व णिवेदइस्सं। [आर्य ! इयं निवेदयामि। एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति। तदिहैव निवेदयिष्यामि।]

प्रतीहारी—आर्य ! अभी निवेदन करती हूँ। यह महाराज सूर्यामुख महल से उतर रहे हैं। अतः यहीं पर निवेदन कर दूँगी।

Door-keeper—*I shall just announce you. Here is the lord* coming form the palace facing the last. Then I shall just inform him here.

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा। (उभौ निष्क्रान्तौ।) इति मिश्रविष्कम्भकः।

कंचुकी—ठीक है, श्रीमती ! (दोनों का प्रस्थान।) मिश्रविष्कम्भक समाप्त।

Chamberlain—Alright, madam, (Both retire)

टिप्पणी—(१) तदाश्रयम्—तद्विषयकम्। उसी के सम्बन्ध का। सा वासवदत्ता आश्रयो यस्य तत् तदाश्रयम् ब० स०। (२) अवतरति—उतर रहा है। अव+तृ+लट्। प्र० पु० ए० व०। (३) मिश्रविष्कम्भकः—भूत और भावी घटनाओं के सम्बन्ध का संक्षेप में निर्देश करने वाली प्रस्तावना मिश्रविष्कम्भक कहलाती है। यहाँ उदयन की पुनः राज्य-प्राप्ति तथा महासेन के संवाद का निवेदन—ये दोनों भूत और भविष्यत् काल के वृत्तान्त मध्यम पात्र कंचुकी और नीच प्रतीहारी द्वारा बताये गये हैं। इसलिए मिश्र या संकीर्ण विष्कम्भक हुआ। कहा भी है—'स तु सकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः'

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च।)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥१॥

अन्वय—श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयम् अरण्यवासम् कथं नु अध्युषिता असि ॥१॥

संस्कृत टीका—श्रुतिसुखनिनदे !—श्रुत्योः कर्णयोः सुखः आनन्दप्रदः निनदः शब्दः यस्याः सा तथाभूते ! (वीणे !), देव्याः—वासवदत्तायाः, स्तनयुगले—कुचद्वन्द्वे, जघनस्थले—कटिपुरोभागे च, सुप्ता—शयनं प्राप्ता सुखस्थितेत्यर्थः, (त्वम् अधुना) विहगगणरजोविकीर्णदण्डा—विहगानां पक्षिणां गणः समूहः तस्य रजसा मलेन विकीर्णः व्याप्तः दूषित इति यावत् दण्डः प्रवालः यस्याः सा तथाभूता, प्रतिभयं—भयङ्करम्, अरण्यवासम्—वनवासम्, कथं नु—कथमिव, अध्युषिताऽसि—आश्रितवत्यसि। (अयं भावः—अयि ! कर्णमधुरस्वरे ! वीणे या त्वं पुरा वासवदत्तायाः उत्सङ्गे कुचयुगले च सुखमस्वाप्सीः, सा त्वं कथं पक्षिमलदूषित प्रवालं दधाना भयङ्करं वनवासम् अध्यवात्सीः ?) ॥१॥

अनुवाद—(तदनन्तर राजा और विदूषक का प्रवेश।) हे कानों को सुख देने वाले स्वर वाली वीणा ! तुम तो महारानी के दोनों स्तनों और जाँघों पर सोती थी, फिर पक्षियों के समूह की बीटों से भरे हुए डंडे वाली होकर भयंकर जङ्गल में किस प्रकार रही हो ? ॥१॥

Then enter king and the jester) Oh (lute) of melodious tunes when indeed (once) you rested on the (pair) of breasts and broad thighs of the queen, how could you suffer the brightful residence in the forests, with your neck scattered with the dirt of multitudes of birds ?

टिप्पणी—(१) निनद—शब्द। 'शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः' इत्यमरः। नि√नद्+अप् 'नौ गदनदपठस्वनः' इत्यनेन। (२) स्तनयुगल—स्तनयोः युगलम् ष० त०, तस्मिन् अधिकरणे सप्तमी। (३) जघनस्थले-जघनस्य स्थलम् ष० त०, तस्मिन्। (४) विहग—विहायसा गच्छति-विहायस्+गम्√ड। (५) दण्ड—वीणा के दण्ड को प्रवाल कहते हैं। 'वीणादण्ड' प्रवालः स्यात्' इत्यमरः। (६) प्रतिभयम्—भयकर। 'भयङ्करं प्रतिभयम्' इत्यमरः। (७) अरण्यवासम्—उष्यते यत्र इति वासः=निवासस्थानम्,√वस्+घञ् 'हलश्च' इत्यनेन, अरण्यमेव वासः तम् वनस्थलमित्यर्थः। यहाँ 'उपान्वध्याङ्वसः' सूत्र से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया हुई। (८) विहगगणरजोविकीर्णदण्डा—पक्षियों के समूह की बीटों से भरे हुए डंडवाली। विहगानां गणस्य रजः (ष० तत्पु०) तेन विकीर्णः—(तृ० तत्पु०) विहगगणरजोविकीर्णः दण्डः यस्याः सा (ब० व्री०)। विकीर्ण—वि+कृ+क्त(त) व्याप्त। इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है। तल्लक्षण—"अयुजि नयगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा" ॥१॥

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या स्मरसि—

और भी, हे घोषवती ! तुम स्नेह-शून्य हो, जो कि तुम बेचारी को याद नहीं करती हो—

And again, Ghoshawati, you are unkind, you do not (unfortuately) remember the poor (queen).

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥२॥

अन्वय—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि च विरहे माम् उद्दिश्य परिदेवितानि च वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि ॥२॥

संस्कृत टीका—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि—श्रोण्या कटिभागेन समुद्वहनानि धारणानि पार्श्वेन कक्षाध.प्रदेशन निपीडितानि सघर्षणानि, खेदस्तनान्तरसुखानि—खेदे वादनश्रमे (सति) स्तनयोः कुचयो. अन्तरे मध्यभागे सुखानि सुखोत्पादकानि, उपगूहितानि—आलिङ्गनानि, च—पुनः, विरहे—वियोगे, माम्—उदयनम्, उद्दिश्य—अभिलक्ष्य, परिदेवितानि—विलापान्, च—तथा, वाद्यान्तरेषु—वाद्यानाम् सगीतानाम् अन्तरेषु विरामेषु, सस्मितानि—मन्दहासेन सहितानि, कथितानि—भाषितानि (न स्मरसि) । (अयं भावः—घोषवति ! नून त्व स्नेहरहिता शुष्कहृदयासि । यतस्त्व देव्याः किमपि मधुरचेष्टित न स्मरसि । वादनावसरे सा त्वाम् स्वकीयोत्सङ्गे धृतवती, पार्श्वभागेन निपीडितवती, संगीतश्रमेषु कुचयोर्मध्ये आलिंगितवती, मम वियोगकाले मामुद्दिश्य स्वरस्वरानुगतानि विलपितानि कृतवती, तथा सगीताना विरामे सस्मितम् उक्तवती । एतानि तस्याः चेष्टितानि स्मरसि किम् ? वद ।) ॥२॥

अनुवाद—जाँघों पर धारण करने और बगलों में दबाने को, थक जाने पर स्तनों के बीच सुखद आलिंगनों को, वियोग में मुझे उद्देश्य करके रोने-कलपने को और संगीत के बीच-बीच में मुसकान भरी बातों को याद नहीं करती हो ॥२॥

Her close grasps on the sides while bearing (you) on the hips, her pleasant embrace between her breasts full of sweets, her smiling conversations in the intervals of music (how do you forget all this ?)

टिप्पणी—(१) **तपस्विन्याः**—दीन, दुखिया। 'मुनिदीनौ तपस्विनौ' इत्यमरः। यहाँ शेषे षष्ठी या 'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' सूत्र से 'स्मरसि' के योग में षष्ठी हुई। (२) **श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि**—श्रोण्या समुद्वहनानि तृ० त० वा श्रोण्या समुद्वहनानि स० त०, पार्श्वेन निपीडितानि तृ० त०, श्रोणीसमुद्वहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च इति श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि इतरेतरयोगद्वन्द्वसमास। श्रोणी—कमर। 'कटिः श्रोणिः' इत्यमरः। श्रोणि+ङीप् सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके' इति गणसूत्रेण। निपीडितानि—नि√पीड्=णिच्+क्त (त) भावे)। (३) **खेदस्तनान्तरसुखानि**—स्तनयोः अन्तरम् ष० त०, स्तनान्तरे सुखानि स० त०, खेदे स्तनान्तरसुखानि स० त०। यहाँ 'खेदे स्तनान्तरे' इस प्रकार व्यस्त पदों का पाठ होना चाहिए, क्योंकि सामर्थ्याभाव के कारण समास असम्भव है। (४) **अन्तर**—मध्य। 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च' इत्यरः। (५) **उपगूहितानि**—आलिंगन। उप√गुह्+क्त (त), (भावे)। **विरहे**—इसमें 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' सूत्र से भाव में सप्तमी हुई। (७) **परिदेवितानि**—विलाप। 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः। परि√देव्+क्त (त) (भावे)। (८) **वाद्यान्तरेषु**—वाद्यों के बीच-बीच में अर्थात् संगीतात्मक स्वरों के विराम-काल में। (९) **कथितानि**—वचनानि। कर्मणि द्वितीया। 'स्मरसि' क्रिया का कर्म है। √कथ्+णिच्+क्त (त) (भावे)। (१०) **सस्मितानि**—मुस्कराहट के साथ। स्मितेन सह वर्तमानानि यानि तानि। यह 'कथितानि' का विशेषण है। यह वसन्ततिलका छंद है ॥२॥

विदूषकः—अलं दाणि भव अदिमत्तं सन्तप्पिअ। [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य।]

विदूषक—इस समय आप बेकार इतना संताप कर रहे हैं।

Vidushaka—Away with this great anguish now, your Majesty.

राजा—वयस्य! मा मैवम्,

राजा—मित्र! न ऐसा न कहो—

King—Friend—no, do not say so.

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥३॥

अन्वय—चिरप्रसुप्तः मे कामः वीणया प्रतिबोधितः। यस्या घोषवती प्रिया तां देवी तु न पश्यामि ॥३॥

संस्कृत टीका—चिरप्रसुप्तः—चिरं दीर्घकालं प्रसुप्तः शयितः, मे—मम, कामः—प्रियासङ्गमेच्छा, वीणया—अनया घोषवत्या, प्रतिबोधितः—जागरितः। यस्याः—वासवदत्तायाः, घोषवती—इयं वीणा, प्रिया—प्रीतिपात्रम् (आसीत्), तां—मत्प्राणवल्लभा, देवी—वासवदत्ता तु, न पश्यामि—नावलोकयामि। (अयं भावः—वासवदत्तानिधनान्तरम् मम कामः सुप्तप्रायः इव आसीत्। परन्तु अद्य घोषवत्या स प्रतिबोधितः। हा धिक्! एषा वीणा यस्यै मुदमरोचत, सा मे प्रिया वासवदत्ता अद्यापि न दृश्यते।) ॥३॥,

अनुवाद—बहुत दिनों के सोये हुए मेरे काम को वीणा ने जगा दिया। किन्तु जिसको यह वीणा प्रिय थी, उस देवी को नहीं देख रहा हूँ ॥३॥

That long dormant desire of mine is roused by the lute. I do not see the queen to whom Ghoshavati was dear.

टिप्पणी—(१) अतिमात्रम्—अत्यन्त, अधिक। 'अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम्' इत्यमरः। मात्राम् अतिक्रान्तः इति विग्रहे 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इत्यनेन प्रादितत्पुरुषसमासः, ततः क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया। (२) अलम् "सन्तप्य—सन्ताप करना व्यर्थ है। सम्√तप्+क्त्वा 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' इत्यनेन, ततः क्त्वास्थाने 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति सूत्रेण ल्यप् आदेशः। (३) चिरप्रसुप्तः—चिरं वा चिरात् प्रसुप्तः। इति चिरप्रसुप्तः सुप्सुपा समास। प्रसुप्त—प्र√स्वप्+क्त(त)। (४) प्रतिबोधितः—प्रति√बुध्+णिच्+क्त(त)। (५) कामः—√कम्+णिङ+घञ्(अ)। (६) प्रिया—√प्री+क'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इत्यनेन, ततः इयङ, टाप्। यह अनुष्टुप् छन्द है ॥३॥

वसन्तक! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय।

वसन्तक! घोषवती को कारीगर से नयी बनवा कर (अर्थात् मरम्मत करा कर) शीघ्र ले आओ।

Vidushaka! Quickly bring back Ghoshavati after putting strings from the artisans.

विदूषकः—ज भवं आणवेदि। [वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः ॥] [यद् भवानाज्ञापयति ।]

विदूषक—जो आपकी आज्ञा। (वीणा लेकर चला जाता है।)

Vidushaka—As your Majesty commands (Retires with the lute.)

(प्रविश्य) प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो खु महासेणस्स सम्रासादो रेब्भसगोत्तो कंचुईओ देवीएअङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ताधत्तो अ पडिहारं उवट्ठिदा। [जयतु भर्ता। एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याङ्गारवत्या प्रेपितार्या वसुन्धरा नाम वासवत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ।]

(प्रवेश करके) प्रतीहारी—महाराज की जय हो। महासेन जी के पास से ये रैभ्य नामक कंचुकी और महारानी अंगारवती की भेजी हुई श्रीमती वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाई द्वार पर उपस्थित हैं।

(Entering) Door-keeper—Hail, Sire, A herald of the Raibhya clan, from Mahasen's court stands at the gate and the lady Vasundhara, the nurse of Vasavadatta sent by Angarwati has also come.

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम्।

राजा—तो पद्मावती को पहले बुला लाओ।

King—Then first let queen Padmavati be called.

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता।) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

प्रतीहारी—जो महाराज की आज्ञा। (चली जाती है।)

Door-keeper—As you command. (Exit).

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

राजा—क्या अभी इतनी जल्दी यह समाचार महासेन जी को मालूम हो गया ?

King—Can it be that so soon has this news been 'known by Mahasena ?

टिप्पणी—(१) शिल्पिजनसकाशात्—कारीगर के पास से। शिल्पी चासौ जनश्च इति शिल्पिजनः कर्मधारयः समास, तस्य सकाशम् ष० त०, तस्मात्। (२) नवयोगाम्—जिसका नया निर्माण या मरम्मत की गई हो। नवः योगः यस्याः सा ब० स०, ताम्। (३) उपस्थितौ—यहाँ एक स्त्री और एक पुरुष

कर्त्ता है। इसलिए 'उपस्थितः च उपस्थिता च' इस विग्रह मे पुंलिंग का एकशेष हो जाने से 'उपस्थितौ' यह प्रथमा-द्विवचन का रूप बनता है। (४) प्रतीहारम्—ड्योढी पर। (५) तेन—यहाँ हेतु में तृतीया हुई। (६) तेन हि तावत्—यदि ऐसा है तो पहले। (७) विदितः—ज्ञातः। विद् धातु अनेक गणों मे अनेक अर्थों मे पठित है। दिवादिगण में इसका अर्थ होता है 'सत्ता' और रूप 'विद्यते', अदादिगण में अर्थ 'जानना' और रूप 'वेत्ति', रुधादिगण मे अर्थ सोचना' और रूप 'विन्ते' तथा तुदादिगण में अर्थ 'पाना' और रूप 'विन्दते—विन्दति'। कहा भी है—'सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे। विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्-लुक्-श्नम्-शेष्विद क्रमात्'।

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च।) प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ। [एत्वेतु भर्तृदारिका।]

(तदनन्तर पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश।) प्रतीहारी—आइये, राजकुमारी जी! आइये।

(Then enter Padmavati and door-keeper.) Door-keeper—Come, Come, Princess.

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो। [जयत्वार्यपुत्रः।]

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो।

Padmavati—Victory to the king.

राजा—पद्मावति! किं श्रुतं महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तस्तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति।

राजा—पद्मावती! क्या तुमने सुना कि महासेन जी के पास से रैभ्य नामक कंचुकी और पूजनीया अगारवती की भेजी हुई श्रीमती वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धाई दोनो ड्योढ़ी पर आये हुए हैं।

King—Padmavati, have you heard that the Chamberlain, a kinsmen of the Raibhyas has come from Mahasena, and also a lady Vasundhara, the nurse of Vasavadatta sent by the ladyship, Angarvati; and that both are wating at the door.

पद्मावती—अय्यउत्त! पिअं मे आदिकुलस्य कुसलवुत्तन्तं सोदुं। [आर्यपुत्र! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम्।]

पद्मावती--आर्यपुत्र ! कुटुम्ब-परिवार का कुशल-समाचार सुनना मुझे प्रिय है।

Padmavati--Your Majesty is will be a (matter of) pleasure to me to hear happy news about my kinsmen.

राजा--अनुरूपमेतद्भवत्याभिहितं--वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

राजा--तुमने यह उचित कहा कि वासवदत्ता के भाई-बिरादर मेरे भाई बिरादर हैं। पद्मावती ! बैठो। अब क्यों नहीं बैठती ?

King--Fitly has it been said by your ladyship, that the household of Vasavadatta are your relations. Padmavati take seat, why do you not take a seat now ?

पद्मावती--अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एदं जणं पेक्खिस्सदि ? [आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं प्रेक्षिष्यते ?]

पद्मावती--आर्यपुत्र ! क्या आप मेरे साथ बैठकर उन लोगों से मिलेंगे ?

Padmavati--Your Majesty, would you like to see them sitting with me ?

राजा--कोऽत्र दोष: ?

राजा--इसमें क्या दोष है ?

King--What harm is there.

पद्मावती--अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि । [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इति उदासीनमिव भवति ।]

पद्मावती--आर्यपुत्र ने दूसरा विवाह कर लिया है, यह उन्हें अच्छा न लगे।

Padmavati--Perhaps your second marriage might displease them ?

राजा--कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति । तस्मादास्यताम्

राजा--पत्नी को देखने योग्य व्यक्ति को देखने से रोकने में बहुत ही बुराई होती है। इसलिए बैठ जाओ।

King--The man who from his wife's sight banishes those who are worthy of it, does great wrong. Therefore be seated.

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि]। [उपविश्य] अय्यउत्त ! तादो वा अम्बा वा किंणु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति। आर्यपुत्र ! तातो वाम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेव संवृत्ता।]

पद्मावती—जो आर्यपुत्र की आज्ञा। (बैठकर) आर्यपुत्र ! पिता जी या माता जी क्या कहेंगी, यह सोच कर उद्विग्न-सी हो रही हूँ।

Padmavati—As my Lord commands (sits). My lord, my heart is anxious to learn what message, our father or mother have sent.

टिप्पणी—(१) ज्ञातिकुलस्य—सम्बन्धियों या बन्धुओं के वर्ग का। 'सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः' इत्यमरः। अथवा ज्ञातिकुल—तातकुल। 'ज्ञातिस्तातसगोत्रयोः' इति मेदिनी। ज्ञाति—√ज्ञा+क्तिच्। (२) प्रियं मे—यहाँ 'मे' पद का अन्वय 'मध्यमणिन्याय' से 'प्रियम्' और 'ज्ञातिकुलस्य' दोनो के साथ है। (३) श्रोतुम्—यहाँ प्रियम्' और 'श्रोतुम्' दोनों के एक ही कर्ता होने के कारण 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' सूत्र से तुमुन् प्रत्यय हुआ। (४) अनुरूपम्—उचित। अर्थात् कुल-शील के योग्य। रूपस्य योग्यम् इति अनुरूपम्, योग्यता के अर्थ मे अव्ययीभाव समास। (५) परिग्रहः—पत्नी। परिगृह्यते इति। परि√ग्रह्+अप्। 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः' इत्यमरः। (६) उदासीनमिव—अवाञ्छनीय जैसा। अर्थात् आपने दूसरी पत्नी कर ली, यह उन्हें अरुचिकर प्रतीत होगा। (७) कलत्रदर्शनार्हं जनं "यहाँ राजा के कहने का भाव यह है कि जो व्यक्ति पत्नी को देखने का अधिकारी है, उसे यदि पत्नी न दिखायी जाय तो बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं। आगन्तुक कंचुकी और धात्री के लिए जिस प्रकार वासवदत्ता थी उसी प्रकार पद्मावती भी। इससे पत्नी को छिपाना मन मे पाप रखना है। ऐसे दुराव से हम केवल अपयश के भागी बनेंगे। इसलिए तुम्हारे साथ ही मैं उनसे मिलूँगा। कलत्र—पत्नी। 'कलत्रं श्रोणिभार्ययोः' इत्यमरः। कलत्रस्य दर्शनम्, तस्य अर्हः ष० त०, तम्। (८) अर्ह—√अर्ह् (पूजायाम्)+अच्। (९) बहुदोषम्—अनेक प्रकार के दोषों को। यहाँ 'बहून् दोषान्' होना चाहिये था, किन्तु जातिगत एकत्व की विवक्षा से एकवचन हुआ। (१०) कलत्रदर्शनात् परिहरति—'अपादाने पञ्चमी' तथा 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' सूत्र मे पञ्चमी हुई है। यहाँ 'वारणार्थानामीप्सितः' सूत्र लागू नही होता, क्योंकि। कर्त्ता को कलत्रदर्शन अभीष्ट नही है।

इन पंक्तियों में पद्मावती के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है। उसमें सापत्न्य भावना का सर्वथा अभाव है। अपनी सपत्नी वासवदत्ता के संबंधी जनों में उसका आत्मीय भाव है। प्रतीहारी तथा धात्री की भावना पर आघात पहुँचने की आशंका से वह राजा के साथ नहीं बैठना चाहती।

राजा—पद्मावती ! एवमेतत् ।

King—Even so Padmavati.

राजा—पद्मावती ! बात तो ऐसी ही है।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा ।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ।।४।।

अन्वय—किं वक्ष्यति इति मे अपि हृदयं परिशङ्कितम्, कन्या मया अपहृता न च सा रक्षिता। चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्र इव भीतः अस्मि ।।४।।

संस्कृत टीका—किं वक्ष्यति—किं कथयिष्यति दूतमुखेनेति शेषः, इति—अस्मिन् विषये, मे अपि—ममापि, हृदयं—मनः, परिशङ्कितम्—शङ्काकुलं (वर्तते) कन्या—कुमारी वासवदत्तेति यावत्, मया—उदयनेन, अपहृता—अपनीता, न च—नैव, सा—कन्या, रक्षिता—परिपालिता। चलैः—चञ्चलैः, भाग्यैः—दैवैः, महदवाप्तगुणोपघातः—महत्सु गुरुजनेषु अवाप्तः प्राप्तः गुणानां सदाचारादीनाम् उपघातः भङ्गः येन स तथाभूतः, (अहम्) पितुः—जनकस्य, जनितरोषः—जनितः उत्पादितः रोषः क्रोधः येन स तादृशः, पुत्र इव—तनय इव, भीतः—भययुक्तः, अस्मि—विद्ये। (अयं भावः—तातः अम्बा वा किं सन्देक्ष्यति-इति विमृश्य अहमपि उद्विग्नो बोभवीमि। यतो हि तयोः अनूढा पुत्री अनुमतिमन्तरेणैव मया कौशाम्बीम् आनीता। परं तस्याः परिपालने अहं सर्वथा अयोग्यः संवृत्तः। इत्थं सदाचारविनयादीनां गुणानाम् उल्लङ्घनेन अहं पितुः कृतापराधः पुत्र इव भीतोऽस्मि।) ।।४।।

अनुवाद—क्या कहेंगे—इस बात से मेरा भी हृदय सशंकित है। मैंने उनकी पुत्री को भगाया, पर उसकी रक्षा नहीं की। (इस प्रकार) चंचल भाग्य के कारण गुरुजनों के प्रति शिष्टाचार का उल्लंघन करने वाला मैं पिता के क्रोध को उत्पन्न करने वाले पुत्र के समान डरा हुआ हूँ ।।४।।

I stole away their maiden daughter and did not preserve her. Through the fickleness of fortune I have transgressed and greatly transgressed and I feel afraid like a son who has given cause for anger to his father.

टिप्पणी—(१) वक्ष्यति—कहेंगे, ब्रू या वच्+लृट् प्र० पु० ए० व०। (२) परिशङ्कितम्—भय से पूर्ण। परिशङ्का+इतच् 'तदस्य सञ्जात'-मित्यादिना अथवा परि+शङ्क्+क्त(त)। (३) कन्या—कुमारी, बिना ब्याही लड़की। 'कन्या स्वजातोपयमा' इति दर्पणः। (४) भाग्यैः—यहाँ हेतु में तृतीया हुई। (५) महदवाप्तगुणोपघातः—जिसने बड़ों के प्रति सदाचारमर्यादा को तोड़ दिया। गुणानाम् उपघातः गुणोपघातः ष० त०, महत्सु अवाप्तः महदवाप्तः स० त०, महदवाप्तः गुणोपघातः येन ब० स०। (६) उपघात—भङ्ग, नाश। उप√हन्+घञ्। (७) पितुः—यहाँ 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' सूत्र से अपादान में पंचमी हुई। (८) पिता—√पा (रक्षणे) +तृच्। (९) पुत्रः—'पुत्' नाम-नरकात् त्रायते यः सः पुत्रः, पुत्√त्रै+क पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ (१०) जनितरोषः—क्रोध को उत्पन्न करने वाले, जनितः रोषः येन सः जन्+णिच्+क्त (त) कर्मणि। रुष्+घञ्—रोषः। (११) पितुः—'भीत्रार्थानां भयहेतुः' से पंचमी। भीतः√भी (भये)+क्त (त) (कर्तरि)। इस श्लोक में उपमा अलंकार है और वसन्ततिलका छन्द है। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः'।।४।।

पद्मावती—ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले ? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ?]

पद्मावती—क्या उचित समय पर रक्षा नहीं की जा सकती ? (अर्थात् अनुकूल समय में आप उनकी रक्षा अवश्य करते। प्रतिकूल समय में कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता। अतएव इसमें आपका कोई दोष नहीं है।)

Padmavati—What thing can be preserved whose time has come ?

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ॥

प्रतीहारी—ये कञ्चुकी और धाई दोनों दरवाजे पर खड़े हैं।

Door keeper—The Chamberlain and the nurse both are standing at the door.

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

राजा—शीघ्र अन्दर ले आओ ।

King—Admit them speedily.

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि [यद् भर्ताज्ञापयति ।] (निष्क्रान्ता ।)

प्रतीहारी—जो स्वामी की आज्ञा । (चली जाती है ।)

Door-keeper—As my lord wills. (exit)

टिप्पणी—(१) न किं शक्यम्…—यहाँ पद्मावती के कहने का भाव यह है कि मनुष्य का जीवन नियत है । जब उस जीवन की अवधि समाप्त हो जाती है तो उसका विनाश-काल आ जाता है । उस समय उसे कोई नहीं बचा सकता । उत्पत्ति के बाद नाश तो निश्चित ही है । अतएव देवी वासवदत्ता की मृत्यु होनी ही थी । इसमें आपका क्या दोष है ? 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' इति गीता । (२) शक्यम्—√शक्+यत् 'शकिसहोश्च' इति सूत्रेण । (३) प्राप्तकाले—योग्य अवसर पर । प्राप्तश्चासौ कालः प्राप्तकालः कर्म० स० तस्मिन् । (४) प्रवेश्यताम्—प्र√विश्+णिच्+लोट् (कर्मणि) ।

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च ।) काञ्चुकीयः—भोः !

(तदनन्तर कंचुकी, धाई और प्रतिहारी का प्रवेश ।) कञ्चुकी—अहा !

(Enter chamberlain, and the nurse and the door-keeper.)
Chamberlain—Aha.

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः ।
किं नाम दैव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥५॥

अन्वय—इदम् सम्बन्धिराज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः, पुनः नृपसुतानिधनम् स्मृत्वा विषादः । दैव ! यदि परैः अपहृतम् राज्यम् च देव्याः कुशलं, भवता किं नाम न कृतं स्यात् ॥५॥

संस्कृत टीका—इदम्—एतत्, सम्बन्धिराज्यम्—सम्बन्धिनः स्वामिजामातुः राज्यम्—वत्सदेशम्, एत्य—प्राप्य, महान्—भूयान्, प्रहर्षः—आनन्दः (भवति)

पुनः--किञ्च, नृपसुतानिधनम्--नृपसुतायाः राजकुमार्याः वासवदत्ताया इति यावत्, निधनं--मरणं, स्मृत्वा--चिन्तयित्वा, विषादः--दुःखम् (भवति)। देव !--हे भाग्य !, यदि--चेत्, परैः--शत्रुभिः, अपहृतम्--बलात् गृहीतम्, राज्यं--वत्सदेशाधिपत्यं, च--तथा, देव्याः--वासवदत्तायाः, कुशलं--क्षेमम् (भवेत् तर्हि), भवता--त्वया किं नाम--किमिव, न कृतं स्यात्--नानुष्ठितं भवेत्। (अयं भावः--अस्मत्स्वामिनो जामातुः राज्यमागत्य प्रतीवाहम्माद्यामि। परन्तु राजकुमार्याः वासवदत्तायाः मरणं सञ्चिन्त्य विषीदामि च। हे भागधेय! यदि भवत्कृपया शत्रुभिः अपहृतं वत्सराज्यं यथा मिलितं तथा वासवदत्ता अपि मिलिता भवेत्तदा भवता अस्माकं महाराजस्य किं नाम हितं न कृतं भवेत् अपि तु सर्वमपि कल्याणं सम्पादितं भवेत्।)

अनुवाद--इस सम्बन्धी के राज्य में आकर बड़ा हर्ष हो रहा है। फिर राजपुत्री की मृत्यु का स्मरण करके शोक हो रहा है। ओ भाग्य! यदि शत्रुओं से छीना हुआ राज्य और महारानी की कुशल मिल जाती तो तूने क्या नहीं किया होता ॥५॥

[illegible] rjoyed, [illegible] full of [illegible] king-dom (only) was captured by the enemies leaving the queen happy (i. e. untouched)

टिप्पणी--(१) सम्बन्धिराज्यम्--कुटुम्ब का राज्य। सम्बन्धिनः राज्यम् ष० त०, सम्बन्ध+इनि=सम्बन्धी, राज्ञः कर्म भावो वा इति विग्रहे राजन्+यत्=राज्यम्। एत्य--आकर। आ√इ+क्त्वा--ल्यप्। यहाँ एककर्तृक क्रिया में क्त्वा प्रत्यय की सिद्धि के लिए 'एत्य' के आगे 'स्थितस्य' जैसे किसी पद का अध्याहार कर लेना चाहिए। (२) निधनम्--मृत्यु। 'मरणं निधनोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। (३) किं नाम दैव...यहाँ तात्पर्य यह है कि हे दैव! जैसे तुम्हारी कृपा से खोया हुआ राज मिल गया उसी तरह यदि वासवदत्ता सकुशल मिल जाती तो निःसन्देह यह बात सोने में सुगन्ध की तरह होती। इससे अधिक सुख की कामना क्या की जा सकती है? नाम--सम्भावना में अव्यय का प्रयोग हुआ है 'नाम प्राकाश्यसंभाव्यक्रोधोपगमकुत्सने' इत्यमरः। (४) स्यात्--यह अस् धातु के विधिलिङ् लकार के प्रथमा-एकवचन का रूप है। यहाँ 'इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ' सूत्र से लिङ् हुआ। इस श्लोक में वसन्ततिलका छंद है ॥५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः।]

प्रतीहारी—ये स्वामी हैं। आप जायें।

Door-keeper—Here is the king. Draw near sir.

काञ्चुकीयः—[उपेत्य] जयत्वार्यपुत्रः।

कञ्चुकी—(समीप जाकर) महाराज की जय हो।

Chamberlain—(Going near) Hail, Prince.

धात्री—जेदु भट्टा। [जयतु भर्ता।]

धाई—स्वामी की जय हो।

Nurse—Hail.

राजा—[सबहुमानम्] आर्य !

राजा—(सम्मान के साथ) आर्य।

King—(Respectfully), sir.

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ॥६॥

अन्वय—पृथिव्याम् राजवंश्यानाम् उदयास्तमयप्रभुः मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा अपि कुशली ? ॥६॥

संस्कृत टीका—पृथिव्यां—भूमौ, राजवंश्यानां राजवंशोद्भवानां नृपाणामिति यावत् उदयास्तमयप्रभुः—उदयः उन्नतिः अस्तमयः अवनतिः तयोः प्रभुः समर्थः, मया—वत्सराजेन, काङ्क्षितबान्धव.—काङ्क्षितम् अभिलषितम् बान्धवं बन्धुत्वं येन तथाभूतः, स राजा—पूजनीयो महासेनः, अपि कुशली–कुशलयुक्तो वर्तते किम् ? (अयं भावः—यः पृथिव्या सर्वेषामपि राज्ञामुत्कर्षापकर्षहेतुरस्ति तथा येन मया सह बन्धुभावः अभिलषितः तस्य सम्राजो महासेनस्य कुशलमाचक्ष्व।) ॥६॥

अनुवाद—पृथ्वी पर के समस्त राजाओं के उत्थान-पतन करने में समर्थ तथा मेरे साथ बन्धुत्व स्थापित करने के इच्छुक वे राजा कुशल से हैं न ?

Is that king who makes the rise and fall of the royal scions in (this) world (and) with whom I desired friendship doing well?

टिप्पणी—(१) राजवंश्यानाम्—राजवंश मे उत्पन्न अथवा राजाओं के वंशधरों के। वंशे भवाः वंश्याः वंश+यत्, राज्ञां वंश्याः राजवंश्याः ष० त० तेषाम्। (२) उदयास्तमयप्रभुः—उद्√इ+अच्=उदयः, अस्तम्√इ+अच्=अस्तमयः, उदयश्च अस्तमयश्च उदयास्तमयौ द्वन्द्वसमास, तयोः प्रभुः ष० त०। प्र+भू+डु इति प्रभुः। तत्कालीन इतिहासज्ञों के अनुसार मगध के सम्राट् भी अवन्तिनाथ प्रद्योत का लोहा मानते थे। (३) काङ्क्षितबान्धवः—सम्बन्ध या मित्रता चाहने वाला। बन्धोर्भावः बान्धवम्, बन्धु+अण्। (४) अपि कुशली—क्या कुशल से है? यहाँ अपि शब्द प्रश्नार्थक है। 'गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वपि' इत्यमरः। (५) कुशली—कुशलम् अस्ति अस्य इति विग्रहे कुशल+इनि। यह अनुष्टुप् छन्द है ॥६॥

काञ्चुकीयः—अथ किम्? कुशली महासेनः। इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति।

कंचुकी—और क्या? (जी हाँ,) महासेन जी कुशल से हैं। यहाँ भी सबका कुशल-मंगल पूछा है।

Chamberlain—Yes, Mahasena is well. He also enquires of the welfare of all here.

राजा—[आसनादुत्थाय] किमाज्ञापयति महासेनः?

राजा—(आसन से उठकर) महासेन जी की क्या आज्ञा है?

King—(Rising from his seat) what are the orders of Mahasena.

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

कंचुकी—यह (शिष्टता) वैदेही पुत्र (आप) के अनुरूप ही है। किन्तु आप आसन पर बैठे ही बैठे महासेन जी का सदेश सुनें।

Chamberlain—This reverence is worthy of the son of Vaidehi Even while on your seat you deserve to listen to Mahasena's message.

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः। [उपविशति।]

राजा—महासेन जी की जो आज्ञा। (बैठ जाता है।

King—As Mahasena orders. (Sits down).

काञ्चुकी—दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः—

कंचुकी—भाग्य से शत्रुओं द्वारा छीना हुआ राज्य फिर लौटा लिया गया। क्योंकि—

Chamberlain—Fortunately the kingdom seized by the enemies has been regained by you because.

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥७॥

अन्वय—ये कातराः अपि वा अशक्ताः तेषु उत्साहः न जायते। हि प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैः एव भुज्यते ॥७॥

संस्कृत टीका—ये—पुरुषाः, कातराः—अधीराः, अपि वा—अथवा, अशक्ताः—दुर्बलाः (भवन्ति), तेषु—पुरुषेषु, उत्साहः—कर्मकरणे साहस, न जायते—न उत्पद्यते। हि—यतः, प्रायेण—बहुधा, नरेन्द्रश्रीः—राजलक्ष्मीः, सोत्साहैः—उत्साहसम्पन्नैः, एव, (पुरुषैः), भुज्यते—उपभुज्यते आस्वाद्यते इत्यर्थः। (अय भावः—धैर्येण शक्त्या वा विहीनाः पुरुषाः किमपि कार्यं सोत्साहं कर्तुं न प्रभवन्ति। एतादृशानां पुरुषाणां राजलक्ष्मीः योग्या न भवति। यतो हि सा प्रायेण उत्साहिभिर्जनैः उपभुज्यमाना दृश्यते ॥७॥

अनुवाद—जो अधीर या असमर्थ होते है, उनमें उत्साह नहीं होता। और जो उत्साही हैं, वे ही प्रायः राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ॥७॥

In those who are cowardly or incapable, no strenuous effort is possibe. Generally the dignity of a king is enjoyed by those who possess perseverance only.

टिप्पणी—(१) सर्वगतम्—सभी का। सर्वान् गतम् इति सर्वगतम् 'द्वितीया श्रितातीत'—इत्यादिना द्वितीयातत्पुरुषसमासः (२) वैदेहीपुत्रस्य—विदेहस्य—मिथिलापतेः अपत्य स्त्री वैदेही—उदयनस्य माता, विदेह+अण् 'तस्यापत्यम्' इत्यनेन, ततः 'टिड्ढाणञ्' इत्यादिना ङीप्, तस्याः पुत्रस्य। कवि के 'वैदेहीपुत्रस्य' के प्रयोग से सिद्ध होता है कि उस समय मिथिला की संस्कृति बहुत ऊँची थी। वहाँ की स्त्रियाँ विनय, शील, वैदुष्य आदि गुणों से सम्पन्न होती थी। आज भी मैथिलियों में विनम्रता विशेष रूप से पायी जाती है। (३) आसनस्थेन—आसन पर बैठे ही बैठे। आसने तिष्ठतीति आसनस्थः तेन। आस्यते अस्मिन्नित्यासनम् आस्+ल्युट्। (४) दिष्ट्या—यह हर्षसूचक तृतीयान्त प्रतिरूपक

अव्यय है। 'दिष्ट्या समुपजोषं चेत्यानन्दे' इत्यमरः। (५) उत्साहः—कार्य करने का उल्लास या प्रेरणा, अध्यवसाय। 'उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्' इत्यमरः। उत्√सह्+घञ्। (६) सोत्साहैः—उत्साहेन सह वर्तमानाः इति सोत्साहाः 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इति सूत्रेण बहुव्रीहिसमासः, तैः। इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा और अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं। तल्लक्षण काव्यप्रकाशे—'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया। अर्थात् अप्रस्तुत अर्थ के कथन से प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है। 'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते। यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। अर्थात् सामान्य कथन का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से जहाँ समर्थन हो वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है। यहाँ अनुष्टुप् छंद है।।७।।

राजा—आर्य! सर्वमेतन्महासेनस्य प्रभावः। कुतः—

राजा—आर्य। यह सब तो महासेन जी का ही प्रभाव है। क्योंकि—

King—Sir all this is due to Mahasena's prowess. Because—

टिप्पणी—अभिज्ञानशाकुन्तलस्य सप्तमेऽङ्के द्रष्टव्यं—राजा—अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः। सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्। किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्।

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान्वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम्।।८।।

अन्वय—पूर्वम् तावत् अहम् अवजितः, सुतैः सह लालितः, मया कन्या दृढम् अपहृता भूय. न च रक्षिता। तस्याः निधनं श्रुत्वा अपि मयि तथैव स्वता, यत् उचितान् वत्सान् प्राप्तुम् यत्, अत्र नृपः हि कारणम्।।८।।

संस्कृत टीका—पूर्वं तावत्—गजग्रहणावसरे, अहम्—उदयनः, अवजितः—पराजित्य निगृहीतः, सुतैः—पुत्रैः, सह—साकं, लालितः—लालनपूर्वकं पालितः, मया—वत्सराजेन, कन्या—कुमारी महाराजमहासेनस्य पुत्री वासवदत्तेति यावत्, दृढम्—बलपूर्वकम्, अपहृता—अपनीता स्वगृहम् आनीतेति यावत्, भूयः—

'पुनश्च, न च—नैव, रक्षिता—अग्निदाहात् त्राता। तस्याः—स्वीयपुत्र्याः, 'निधनं—मरणं, श्रुत्वा अपि—आकर्ण्य अपि, मयि—उदयने, तथैव—पूर्ववदेव, स्वता—आत्मीयता (अस्ति), ननु निःसन्देहम्, उचितान्—मच्छासनयोग्यान् मदीयान् इति यावत्, वत्सान्—वत्सदेशान्, प्राप्तुम्—पुनर्लब्धुम्, यत्—धैर्यबलोत्साहादिजयोपकरणम् (आसीत्), अत्र—अस्मिन् जयोपकरणे, नृपः—राजा महासेनः, हि—एव, कारणम्—हेतुः। (अयं भावः—अहं पुरा गज-मृगयावसरे महाराजमहासेनेन बन्दीकृत्यापि पुत्रवत् पालितः। परन्तु कृतघ्नोऽहं तदीयां कुमारीं वासवदत्ताम् अपाहरम्, दैवात् अग्निना दह्यमानां च तां रक्षितुं नापारयम्। तस्याः मृत्योः समाचारं श्रुत्वापि महाराजः पूर्ववदेव मयि स्निह्यति। अतः निश्चयमहं वक्तुं शक्नोमि यत् शत्रुभिः अपहृतस्य राज्यस्य मया पुनः स्वायत्तीकरणे महाराजमहासेनस्यैव प्रभावातिशयो विद्यते।)॥८॥

अनुवाद—पहले मैं जीता जाने पर भी (महाराज महासेन द्वारा अपने) पुत्रों के साथ (समान भाव से) पाला गया। फिर भी मैं उनकी पुत्री को बलपूर्वक भगा ले आया, पर उसकी रक्षा न कर सका। उसकी मृत्यु की बात सुनकर भी वे मुझपर पूर्ववत् ममता या स्नेह रखते हैं। निश्चित है कि मैंने जो न्याययुक्त वत्सराज्य को पुनः प्राप्त किया, उसमें राजा (महासेन) ही कारण हैं॥८॥

Formerly defeated, I was even then fondled together with his sons. His daughter was stolen by me and not cared for. Even after the tiding of her death, he shows the same affection as before, Truly it is to his favour that I owe it that Vatsa land obeys me once again.

टिप्पणी—(१) पूर्वम्—इसमें क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया हुई। (२) अवजितः—हराया गया। अव√जि+क्त(त)। (३) बलम्—यहाँ भी क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया हुई।(४) मयि—यहाँ विषयाधिकरण में सप्तमी हुई। (५) स्वता—आत्मीयता, ममता। स्वस्य भावः स्व+तल् (भावे)+टाप् (आ) स्त्रियाम्। 'स्वो ज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये' इत्यमरः (६) प्राप्तुम्—यहाँ छिपी हुई 'आसीत्' क्रिया के योग में 'शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्' सूत्र से तुमुन् प्रत्यय हुआ। (७) नृपः हि कारणम्—यहाँ कारण शब्द नित्य नपुंसक लिंग होने से नृपः का विधेय होने पर भी पुंलिंग नहीं हुआ। कहा भी है—'उद्देश्ये च विधेये च विभक्तिः सदृशी भवेत्। क्वचित् आदेशे लब

वैपम्यं लिंगसंख्ययोः ।।' (८) हि—एव । 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः। (६) ननु—अव्यय—निश्चय ही । इस श्लोक में हरिणी छंद है । तल्लक्षणं— रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लो गो यदा हरिणी तदा ॥८॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः । देव्या सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति ।

कंचुकी—यह महासेन जी का सन्देश है । महारानी का सन्देश पूज्यवसुन्धरा कहेंगी ।

Chamberlain—This is Mahasena's message. This lady Vasundhara will tell the queen's message.

राज—हा ! अम्ब !

राजा—हाय माता !

King—Oh mother.

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु ॥९॥

अन्वय—ननु षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ? ॥९॥

संस्कृत टीका—ननु—प्रश्नार्थकमव्ययमिदम्, षोडशान्तःपुरज्येष्ठा—षोडशानाम् एतत्संख्याकानाम् अन्तःपुराणाम्—अन्तःपुरस्यस्त्रीणाम् ज्येष्ठा प्रधानभूता, पुण्या—पवित्रचरित्रा, नगरदेवता—नगरस्य देवता इव स्थिता, मम—उदयनस्य, प्रवासदुःखार्ता—प्रवासस्य देशान्तरवासस्य दुःखेन कष्टेन आर्ता पीडिता, माता—अम्बा, कुशलिनी—क्षेमयुक्ता ? (अथ भावः—महाराज-महासेनस्य षोडशप्रधानपत्नीषु सर्वश्रेष्ठा, नगरवासिना जनानां देवता इव मान्या शुद्धाचरणा, मम उज्जयिन्याः कौशाम्बी प्रति पलायनेन वियोगदुःखेन दुखिनी माता कुशलयुक्ता वर्तते न ?) ॥९॥

अनुवाद—सोलह रानियों में प्रधान, नगर की देवता और मेरे परदेश के दुःख से दुःखिनी माता जी कुशल से तो हैं न ? ॥९॥

The most senior of the Sixteen queens, holy, the deity of the city my mother, afflicted by the sorrow of our absence, is she well?

टिप्पणी—(१) अम्ब! मातः !, यहाँ अम्बा शब्द के सम्बोधन में 'अम्बार्थ-नद्योर्ह्रस्वः' सूत्र से ह्रस्वता हुई । धर्मशास्त्र के अनुसार मनुष्य की पाँच मातायें

मानी जाती हैं—अपनी माता, पत्नी की माता, गुरुपत्नी, राजपत्नी, मित्र-पत्नी। इस दृष्टि से उदयन का अपनी सास को माता कहकर सम्बोधित करना उचित ही है। (२) षोडशान्तःपुरज्येष्ठा-षोडशसंख्यकानि अन्तः पुराणि षोडशान्तःपुराणि मध्यमपदलोपी समास, तेषु ज्येष्ठा त० स०। यहाँ अन्तःपुर शब्द का लाक्षणिक अर्थ—अन्तःपुर की रानियाँ—विवक्षित है। वैसे अन्तःपुर का अर्थ रनिवास होता है। 'स्त्र्यगारं भूभुजामन्तःपुरम्' इति कोषः। (३) पुण्या—पवित्र या धर्मात्मा। पुण्यम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे पुण्य+अच् अर्शआदित्वात् ततष्टाप्। (४) नगरदेवता—यहाँ नगर का लाक्षणिक अर्थ नगरनिवासी और देवता का देववत् पूज्य समझना चाहिए। फलतः समुदाय का अर्थ हुआ नगरनिवासियों का पूज्य। (५) प्रवासदुःखार्ता—परदेश के दुःख से दुःखी, प्र√वस्+घञ्—प्रवासः तस्य दुःखम् (ष० त०) तेन ऋता प्रवासदुःखार्ता—'ऋते च तृतीयासमासे' सूत्र से ऋकार की वृद्धि हुई। अथवा प्रवासदुःखेन आर्त्ता। (६) कुशलिनी—कुशलम् अस्ति अस्याः इति विग्रहे कुशल+इनि—ङीप्। यह अनुष्टुप् छद है, तल्लक्षण—पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः। षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम्॥६॥

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुशलं पुच्छदि। [अरोगा भट्टिनी भर्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति।]

धाई—नीरोग महारानी ने आप सबका कुशल-मंगल पूछा है।

Nurse—The queen is well. She enquires of your lordship regarding the welfare of all.

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब! ईदृशं कुशलम्।

राजा—सब की कुशल ? माता! कुशल तो ऐसी ही है।

King—Oh the welfare of all, oh mother. This sort of welfare.

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं। [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम्।]

धाई—अब आप अधिक शोक न करें।

Nurse—Nay grieve not over much.

काञ्चुकीयः—धारयत्यार्यपुत्रः उपरताप्यनुपरता महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण। अथवा—

कंचुकी—आर्यपुत्र धैर्य धारण करें। आर्यपुत्र द्वारा इस प्रकार स्मरण की जाने वाली महासेन जी की पुत्री मर कर भी नहीं मरी। अथवा—

Chamberlain—Have patience, sire, thus held in fond remembrance she being dead yet lives or.

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले-काले छिद्यते रुह्यते च ॥१०॥

अन्वय—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः ? रज्जुच्छेदे के घट धारयन्ति ? एवं वनानां तुल्यधर्मः लोकः काले-काले छिद्यते रुह्यते च ॥

संस्कृत टीका—मृत्युकाले—मरणसमये, कः—अर्थात् मृत्युनिवारणतत्परोऽपि कः नरः, कम्—अतिशयप्रियमपि जनम्, रक्षितुं—मृत्युमुखात् त्रातुं, शक्तः—समर्थः ? रज्जुच्छेदे—रज्जोः गुणस्य कूपाज्जलाहरणार्थं घटग्रीवायां बद्धस्य वस्तुन इति यावत् छेदे भंगे (सति), के—पुरुषाः, घटं—रज्जुच्छेदेन कूपमध्ये पतन्तं कलशम्, धारयन्ति—गृह्णन्ति ? एवम्—इत्थम्, वनानाम्—अरण्यानाम् तत्स्थवृक्षाणामिति यावत्, तुल्यधर्मः—तुल्यः समानः धर्मः विनाशोत्पत्तिरूप-स्वभावः यस्य स तादृश., लोकः—जनः, काले-काले—समये-समये यथाकाल-मिति यावत्, छिद्यते—छेदं प्राप्नोति नश्यतीत्यर्थः, रुह्यते—च उत्पद्यते च। (अयं भावः—मृत्युकाले समायाते सति कोऽपि कमपि त्रातुं न शक्नोति। यथा अवलम्बभूताया रज्जो छिन्नायां सत्या घटः मध्येकूपं पतति न केऽपि तं पतनाद् वारयितुं प्रभवन्ति तथैव आयुषः क्षये सति म्रियमाणं जनं रक्षितुं कोऽपि न क्षमो भवति। तथा च वनस्थाः पादपा यथा यथाकालमुत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च, एवमेव प्राणिनां जन्ममृत्यू नियतकालभाविनावनिवार्यौ स्तः। इत्थं च सर्वथा दैवपरतन्त्रे संसारे भवता धैर्यमवलम्ब्य वासवदत्ताविषये शोको न कर्तव्यः।) ॥१०॥

अनुवाद—मृत्यु के समय कौन किसको बचा सकता है? रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को (गिरने से) रोक सकते हैं? इसी प्रकार वृक्षों के समान स्वभाव वाले मनुष्य समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते हैं। (अर्थात् जैसे वृक्ष समय आने पर काटे जाते हैं और फिर समय आने पर पनप उठते हैं उसी तरह मनुष्य भी समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते रहते हैं) ॥१०॥

Who can save one at the time of death, What can hold the water jar, when the rope is cut. Thus the world has a common

peculiarity with the woods; at regular periods it is pruned and it is grown.

टिप्पणी—(१) अरोगा–रोगरहित, स्वस्थ। नास्ति रोगो यस्याः सा अरोगा 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' इति वार्त्तिकेन नञ्बहुव्रीहिसमासः। (२) भर्तारम्–यहाँ द्विकर्मक प्रच्छ् धातु के योग मे 'अकथितञ्च' सूत्र से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया हुई। (३) धारयतु–आश्वस्त होइये या धैर्य धारण कीजिये। (४) अनुकम्प्यमाना—अनुगृहीत की जाने वाली। अनु√कम्प्+णिच्+लट् (कर्मणि), शानच्। (५) रज्जुच्छेदे—रस्सी के टूट जाने पर। यहाँ तात्पर्य यह है कि जैसे कुएं से पानी भरने वाले घड़े की रस्सी यदि टूटी नहीं है तो सब कोई उस घड़े को थामे रह सकते हैं, पर यदि रस्सी टूट जाती है तो कोई भी उस घड़े को नही थाम सकता है। उसी तरह मनुष्य की आयु जब तक अक्षीण रहती है तब तक उसकी रक्षा के लिए किये जाने वाले सभी उपाय सफल होते हैं। परतु जब आयु समाप्त हो जाती है तब उसे किसी भी उपाय से नही बचाया जा सकता है। रज्ज्वाः छेदः ष० त०। यहाँ सन्धि होने पर 'छे च' सूत्र से तुक् का आगम होता है। (३) एवं लोकस्तुल्यधर्मो ···—यहाँ कंचुकी के कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का स्वभाव वृक्षों की तरह होता है। जैसे वृक्ष कटते रहते हैं और नये उगते रहते हैं, उसी प्रकार प्राणी मरते-जीते रहते हैं। अतः वासवदत्ता का मरना स्वाभाविक ही था। आप उसे बचा नहीं सकते थे। उसके लिए अब शोक करना व्यर्थ है। (७) तुल्यधर्मः—तुल्यः धर्मः यस्य सः ब० स०। यद्यपि इसका तुल्य शब्द 'वनानाम्' से सापेक्ष है, फिर भी 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः' इस कारिका के बल से समास हुआ। यहाँ 'धर्मादनिच् केवलात्' सूत्र से अनिच् होने पर 'तुल्यधर्मा' पाठ उचित था। किन्तु 'समासान्तविधिरनित्यः' से अनिच् का अभाव करके 'तुल्यधर्मः' पाठ भी असंगत नहीं कहा जा सकता। (८) वनानाम्—यहाँ तुल्य के योग में 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से षष्ठी हुई। (९) काले काले—वीप्सा में द्विरुक्ति हुई है 'कालाधिकरणे सप्तमी' से सप्तमी हुई है। छिद्यते रुह्यते—ये दोनों कर्मकर्तृवाच्य क्रियायें हैं। इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में दृष्टान्त अलंकार और उत्तरार्ध मे उपमा अलंकार है। तल्लक्षणं—'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्' अर्थात् उपमान, उपमेय, इनके विशेषण तथा साधारण धर्म सबके भिन्न होते हुए भी उपमान, उपमेय में 'बिम्बप्रतिबिम्ब भाव' होने पर दृष्टान्त होता है। इसमें शालिनी छंद है। तल्लक्षणं—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ॥१०॥

राजा—आर्य मा मैवम्,

राजा—आर्य! ऐसा मत कहिये.

King—Friend, say not so.

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥११॥

अन्वय—महासेनस्य दुहिता मे शिष्या प्रिया देवी च, सा देहान्तरेषु अपि मया स्मर्तुं कथं न शक्या ? ॥११॥

संस्कृत टीका—महासेनस्य—प्रद्योतस्य, दुहिता—पुत्री, मे—मम, शिष्या—छात्रा, प्रिया—अभिमता, देवी च—अभिषिक्ता महिषी च (आसीत्), सा—वासवदत्ता, देहान्तरेषु अपि—अन्येषु जन्मसु अपि, मया—उदयनेन, स्मर्तुं—चिन्तयितुं, कथं—केन प्रकारेण, न शक्या—न योग्या? (अयं भावः—उज्जयिनीपतेः प्रद्योतस्य तनया वासवदत्ता मम अन्तरङ्गशिष्या प्राणवल्लभा पट्टराज्ञी च आसीत्। अतस्तामहं जन्मान्तरेष्वपि विस्मर्तुं न शक्नुयाम्, किमुत एतस्मिन् जन्मनि)।

अनुवाद—महासेन जी की पुत्री मेरी शिष्या और प्यारी पटरानी थी। भला मैं जन्मजन्मान्तर में भी कैसे उसका स्मरण नहीं कर सकता? ॥११॥

Mahasena's daughter was my pupil and a dear queen. How would she not be remembered by me even in different bodies (i. e. future births.)

टिप्पणी—(१) दुहिता—दोग्धि इति दुहिता √दुह्+तृच् (२) शिष्या—शिष्यते अनुशासनं नीयते या सा शिष्या √शास्+क्यप् 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' इति सूत्रेण। (३) देवी—दीव्यति या सा देवी, √दिव्+अच्—ङीप्। (४) कथं सा न...—इसका तात्पर्य यह है कि वासवदत्ता महाराज प्रद्योत जी की पुत्री है—यही एक कारण उसके सदा स्मरण के लिए पर्याप्त है। यहाँ तो कई कारण विद्यमान हैं। इसलिए मैं जन्मजन्मान्तर में भी उसको भूल सकता हूँ, इस जन्म की तो बात ही क्या? (५) देहान्तरेषु—अन्ये देहाः देहान्तराणि मयूर-व्यंसकादित्वात् नित्यसमासः, तेषु ॥११॥

धात्री—आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता। मम वा महासेनस्य वा
आदिष्टा गोपालपालकयो, सादृशो एव सुखं दुःखं एव

अभिप्पेदो जामादुअत्ति । एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो । अणग्गिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा । अत्तणो चवलदाए अणिव्वुत्तविवाहसङ्गलो एव्व गदो । अहअ अह्मेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदि चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो । एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा । एव्वं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि । [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता । मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति । एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः । अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता । आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः । अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः । एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता । एतां प्रेक्ष्य निर्वृत्तो भव ।]

संस्कृत टीका—भट्टिनी—स्वामिनी, आह—कथयति,—वासवदत्ता—मम पुत्री, उपरता—मृता । मम—अङ्गारवत्याः, महासेनस्य वा—महाराजप्रद्योतस्य वा, यादृशौ—यथा प्रीतिभाजौ, गोपालकपालकौ—एतन्नामकौ पुत्रौ, तादृश एव—तत्सदृश एव,—त्वं—भवान्, प्रथममेव—पूर्वमेव, अभिप्रेतः—अभिमतः, जामाता—मम दुहितुः पतिः इति । एतन्निमित्तम्—जामातृकरणार्थम्, (त्वम्) उज्जयिनीम्—अवन्तिपुरीम्, आनीतः—प्रापितः । अनग्निसाक्षिकम्—न विद्यते अग्निः वैवाहिकोऽग्निः साक्षी साक्षात् द्रष्टा यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात् तथा, वीणाव्यपदेशेन—वीणावादनशिक्षाव्याजेन, दत्ता—समर्पिता वासवदत्ता तुभ्यमिति शेषः । (किन्तु त्वम्) आत्मनः—स्वस्य, चपलतया—चञ्चलतया, अनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव—अनिर्वृत्तं न निष्पादित विवाहमंगलं परिणयोत्सवः यस्य स तथाभूत एव, गतः—उज्जयिनीतः पलायितः । अथ च—अनन्तरम्, आवाभ्याम्—मया महाराजेन च, तव—भवतः, वासवदत्तायाश्च—स्वपुत्र्याः, प्रतिकृतिं—चित्रम्, चित्रफलकायाम्—चित्राधारभूते काष्ठफलके, आलिख्य—निर्माय, विवाहः—परिणयः, निर्वृत्तः—सम्पादितः । एषा—इयं, चित्रफलका—चित्रकाष्ठफलकं, तव, सकाशं—समीपे, प्रेषिता—प्रहिता । एताम्—चित्रफलकाम्, प्रेक्ष्य—दृष्ट्वा, निर्वृत्तो भव—आश्वस्तो भव । अयं भावः—दुर्दैवोदयात् वासवदत्ता मृता । मम महाराजस्य च स्वपुत्रगोपालकपालकवत् त्वयि वात्सल्यं वर्तते । अतएव—पूर्वमेव त्वम् आवाभ्याम् मनसा जामाता कल्पितः । तामेव मनःकामना

पूरयितुं त्वम् उज्जयिन्यामुपस्थापितः। विधिवदग्निसाक्ष्येण विवाहमकृत्वैव वीणावादनकलाशिक्षायाः व्याजेन तुभ्यम् अर्पिता स्वपुत्री वासवदत्ता। परन्तु चेतनश्चाञ्चल्येन त्वं विवाहमंगलविधानमनपेक्ष्यैव वासवदत्तामपहृत्य कौशाम्बीं प्रति पलायितः। तदनन्तरम् स्वाभिलाषं पूरयितुकामौ आवाम् युवयोः आलेख्य-फलितयोः कृत्रिमं विवाहमंगलं सम्पादितवन्तौ। तदिदं चित्रफलकं युष्मदाकार-संवादिचित्रे धारयन् तव समीपे प्रेष्यते। अस्मिन् वासवदत्तामूर्तिं दर्शं दर्शं कथञ्चित् आत्मानं धारय।)।

अनुवाद—महारानी ने कहा है कि वासवदत्ता मर गई है। मेरे और महाराज के लिए जैसे गोपालक और पालक हैं वैसे ही तुम हो, जो पहले ही दामाद मान लिये गये थे। इसी कारण तुम उज्जयिनी में लाये गये। अग्नि को साक्षी बनाये बिना ही वीणा (सिखाने) के बहाने वह तुम्हें दे दी गई थी। अपनी चंचलता के कारण तुम विवाह के उत्सव को सम्पन्न किये बिना ही चले गये थे। पश्चात् हमने तुम्हारा और वासवदत्ता का चित्र एक चित्रपट पर बनवाकर विवाह कर दिया था। यह चित्रपट तुम्हारे पास भेजा है। इसे देखकर धैर्य धारण करो।

Nurse—The queen says Vasavadatta is dead. You were. to me or to Mahasena as dear a son-in law from the first as are Gopalak and Palak. You were, for this very purpose brought to Ujjayini. Without a fire as witnese, she was given over under the device of lute. Owing to
the nuptial celebrat
portraits patnted o
This picture-tablet

टिप्पणी (१) अभिप्रेतः—इष्ट या स्वीकार कर लिया था। अभि-प्र√इ +क्त। महासेन तथा उसकी रानी अंगारवती के उदयन को अपने जामाता बनाने के निश्चय को वशाभिमान के कारण उदयन द्वारा ठुकरा दिया गया था। अतः उसे बन्दी बना लिया गया। प्रद्योत ने वासवदत्ता को वीणावादन की शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से उदयन के सम्पर्क में रख दिया। इस प्रकार दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया तथा अन्त में दोनों का विवाह हो गया। (२) अनग्निसाक्षिकम्—अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तत् अग्निसाक्षिकम् ब० स० कप् प्रत्यय, तत् यथा स्यात् तथा क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया, न अग्निसाक्षिकम् अनग्निसाक्षिकम् नञ् तत्पुरुष। (३) साक्षी—साक्षात्+इनि 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इति

सूत्रेण।(४) वीणाव्यपदेशेन--यहाँ वीणा का लाक्षणिक अर्थ वीणावादन की शिक्षा समझना चाहिए। उसके व्यपदेश=छल से। (५) चित्रफलकायाम्--काठ, हाथीदाँत आदि की पटिया, जिस पर चित्र बनाया जाय बनाया गया हो। यह शब्द नपुंसकलिंग है। परन्तु यहाँ स्त्रीलिंग में इसका प्रयोग 'निरकुशाः कवयः' मानकर समाधेय है। (६) निर्वृत्तो भव--धीरज धरो। निर्+वृत्+क्त (त) कर्त्तरि। वियोग-काल में वियोगी अपनी प्रियतमा का चित्र खींच कर सान्त्वना प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ--मेघदूत में यक्ष 'त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्'। इसी प्रकार दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र खींच कर आत्मसन्तोष पाता है।

राजा--अहो! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या।

राजा--अहा! महारानी ने अत्यन्त प्रेमपूर्ण और अनुरूप ही कहा।

King--Oh very loving and fitting words from her ladyship.

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो तदस्मासु न विस्मृतः ॥१२॥

अन्वय--एतत् वाक्यम् राज्यलाभशतात् अपि प्रियतरम् यत् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहः न विस्मृतः ॥१२॥

संस्कृत टीका--एतत्--भवद्वध्वा प्रहितं, वाक्यं--सन्देशवचनं, राज्यलाभशतात् अपि--शतसंख्यकराज्यप्राप्तेरपि, प्रियतरम्--अधिकप्रियम्, यत्--यस्मात् कारणात्, अपराद्धेषु अपि--कृतापराधेषु अपि, अस्मासु--मयि, स्नेहः--वात्सल्यं न विस्मृतः--न विस्मृतिं प्रापितः। (अयं भावः--सहस्राधिकराज्यप्राप्तिरपि न तथा मां प्रीणयितुं प्रभवेत् यथेदमिदानीमम्बायाः सन्देशवचनं प्रीणयति। यतो हि मया दुरात्मना तस्याः कन्या बलात् अपहृता, परन्तु सा कृतघोरापराधेऽपि मयि सानुक्रोशा एव विद्यते।) ॥१२॥

अनुवादः--यह (सन्देश) वचन सैकड़ों राज्यों के लाभ से भी बढ़कर प्रिय है; क्योंकि उन्होंने मुझ अपराधी के प्रति भी अपना स्नेह नहीं भुलाया है॥१२॥

These words are more agreeable than the 'acquisition of a hundred kingdom, since even towards offenders like us affection was not forgotten.

टिप्पणी--(१) अतिस्निग्धम्--अत्यन्त प्रेमपूर्ण। 'अभिहितम्' की विशेषता बतलाता है। अति+स्निह्+क्त (त) कर्त्तरि। (२) अनुरूपम्--अनुकूल।

रूपस्य योग्यम् इति अव्ययीभाव समास । (३) राज्यलाभशतात्—यहाँ शत शब्द बहुत्वबोधक है । इसलिए सैकड़ों-हजारों राज्यों के लाभ से—ऐसा अर्थ कर सकते हैं । वस्तुतः राज्यानां लाभाः ष० त०, तेषां शतम् ष०त० । तस्मात्—इस प्रकार समास होने से शत शब्द का अन्वय राज्यलाभ से है न कि राज्य में । ऐसी स्थिति में सैकड़ों राज्य-प्राप्तियों से-ऐसा अर्थ करना उचित प्रतीत होता है । (४) प्रियतरम्—इदम् अनयोः अतिशयेन प्रियम् इति विग्रहे प्रिय+तरप् । (५) अपराद्धेषु—अप् √राध्+क्त (त) (कर्तरि) । यह अनुष्टुप् छंद है ॥१३॥

पद्मावती—अय्यउत्त! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि ।
[आर्यपुत्र ! चित्रगतं गुरुजनं प्रेक्ष्याभिवादयितुमिच्छामि ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र-स्थित गुरुजन को देखकर मैं प्रणाम करना चाहती हूँ ।

टिप्पणी—अभिवादयितुमिच्छामि—प्रणाम करना चाहती हूँ । इस पंक्ति में पद्मावती का आदर्श चरित्र द्रष्टव्य है । अपनी बड़ी भगिनी के समान वासवदत्ता के चित्र को प्रणाम करना चाहती है । उसके प्रति तनिक भी ईर्ष्या नहीं है ।

Padmavati—Seeing the elder pepole in pictures I wish to salute.

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । (चित्रफलकं दर्शयति ।)
[प्रेक्षतां प्रेक्षतां भर्तृदारिका ।]

धाई—देखिये, राजकुमारी जी देखिए । (चित्रपट दिखलाती है ।)

Nurse—(Shows the picture board) princess, have a look,see.

पद्मावती– [दृष्ट्वा आत्मगतम्]हं ! अदिसदिसा खु इअं अय्याए आवन्तिआए । [प्रकाशम्] अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ?
[हम् ! अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः । आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?]

पद्मावती—(देखकर मन) ऐं ! यह तो आर्या आवन्तिका से बहुत मिलती-जुलती है । (प्रकट) आर्यपुत्र ! क्या यह आर्या के समान ही है ?

Padmavati—(Seeing, aside) why this is, like the lady of Avantika. (aloud) My lord, this portrait, is it like the queen,

राजा—न सदृशी । सैवेति मन्ये । भोः ! कष्टम् ।

राजा—समान ही नही, वही है—ऐसा मैं समझता हूँ। हाय! कष्ट!

King—Not only similar I think it is herself. Oh alas.

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम्।
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥१३॥

अन्वय—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम्? इदम् मुखमाधुर्यं च अग्निना कथं दूषितम्? ॥१३॥

संस्कृत टीका—अस्य—दृश्यमानस्य, स्निग्धस्य—स्नेहरसपूर्णस्य मनोहरस्येति यावत्, वर्णस्य—रूपस्य, दारुणा—भीषणा, विपत्तिः—आपत्, कथं—किमिति अभवत् इति शेषः। इदम्—एतादृशम्, मुखमाधुर्यं च—मुखस्य वदनस्य माधुर्यं रमणीयत्वं च, अग्निना—वह्निना, कथं—केन प्रकारेण, दूषितं—विनाशितम्? (अयं भावः—अहह! ईदृशो नयनाकर्षको वर्णः कथं दारुणया विपत्त्या कवलितः? किञ्च इदं वदनसौन्दर्यम् अग्निना कथं विलोपितम्) ॥१३॥

अनुवाद—इस मनोहर रूप पर दारुण विपत्ति कैसी पड़ी? और इस मुखमाधुरी को अग्नि ने कैसे बिगाड़ दिया? ॥१३॥

How could this delicate complexion suffer such cruel injury? How could the flames destroy the sweetness of this countenance?

टिप्पणी—(१) आवन्तिकायाः—इसमें 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्' सूत्र से षष्ठी हुई। (२) स्निग्धस्य—सरस, चिकना, आकर्षक। √स्निह्+क्त (त)। (३) वर्णस्य—रूप, आकृति। (४) विपत्तिः—वि√पद्+क्तिन्। (५) दारुणा—भयकर। 'दारुणं भीषणं भीष्मम्' इत्यमरः। यह शब्द विशेषण बनाने पर अपने विशेष्य के समान लिंग में प्रयुक्त होता है। दारुण+अच्—टाप् (आ)। यह अनुष्टुप् छन्द है ॥१३॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं प्रेक्ष्य जानामीयमार्यया सदृशी नवेति।]

पद्मावती—आर्यपुत्र का चित्र देखकर मैं समझूँगी कि यह आर्या के समान है या नहीं।

Padmavati—By looking on your counterfeit my lord, I shall judge better whether the queen's is like or not.

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। [प्रेक्षतां प्रेक्षतां भर्तृदारिका।]

धात्री—देखिये, राजकुमारी जी ! देखिये ।

Nurse—princess, have look, see.

पद्मावती—[दृष्ट्वा] अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसो त्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति ।]

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की समानता देखकर मैं समझती हूँ कि यह आर्या के सदृश ही है ।

Padmavati—(After seeing) By the resemblance of the portra: it of (your) lordship, I find that this is a likeness of her ladyship.

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि। किमिदम् ?

राजा—देवी ! चित्र देखने के समय से मैं तुम्हें प्रसन्न और उद्विग्न-सी देख रहा हूँ । यह क्या ?

King—Queen, from the time you saw the portrait I find you to be dejected after being overjoyed.

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदिए सदिसी इस एव्व पडिवसदि । [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस चित्र की जैसी (एक स्त्री) तो यहीं रहती है।

Padmavati—There is one living in this very place who is the living image of this porait.

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

राजा—क्या वासवदत्ता की जैसी ?

King—Vasavadatta's portrait ?

पद्मावती—आम । [आम् ।]

पद्मावती—हाँ ।

Padmavati—Yes my lord.

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

राजा—तो शीघ्र लिवा लाओ।

King—Then let herbe brought here with all speed.

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि बह्मणेण मम भइणि-अत्तिणासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुषदंसणं परिहरदि । ता अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो । [आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्या मया सहागतां प्रेक्ष्य जानात्वार्यपुत्रः ।]

संस्कृत टीका—मम—पद्मावत्याः, कन्याभावे अविवाहितावस्थायाम्, केनापि—केनचित्, ब्राह्मणेन—विप्रेण, मम—मदीया, भगिनिका—स्वसा, इति (उक्त्वा), न्यासः—निक्षेपः, निक्षिप्तः—स्थापितः, प्रोषितभर्तृका—प्रोषितः प्रवासं गतः भर्ता पतिः यस्याः सा, परपुरुषदर्शनं—स्वस्वामिभिन्नपुरुषावलोकनं, परिहरति—वर्जयति । तत्—तस्मात् कारणात्, आर्याम्—मत्समीपे रक्षिताम् ब्राह्मणभगिनीम्, मया सह—मया साकम्, आगताम्—समायाताम्, प्रेक्ष्य—दृष्ट्वा, जानातु—निश्चयं करोतु, आर्यपुत्रः—भवान् ।

अनुवाद—पद्मावती—आर्यपुत्र ! जब मैं कुमारी थी तब किसी ब्राह्मण ने 'मेरी बहन है' ऐसा कहकर उसे (मेरे पास) थाती रख दिया । पति के परदेश में होने के कारण वह दूसरे पुरुष को देखने से परहेज करती है । इसलिए मेरे साथ आती हुई उस देवी को देखकर आर्यपुत्र समझ लें (अर्थात् मैं किसी बहाने उसको अपने साथ लाती हूँ । आर्यपुत्र उसे देखकर निश्चय करें कि वह वासवदत्ता ही है या और कोई ।)

Padmavati—Your Majesty, in my maidenhood a certain Brahmin, describing her to be his younger sister, made her over so me as a treasure (Nyasa). Her husband being abroad, she avoids the sight of other men, but I will bring her that you may see and know her for yourself.

टिप्पणी—(१) आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिम्—यहाँ भाव यह है कि यदि आप वाले चित्र में चित्रकार ने आपकी छाया ठीक-ठीक उतारी होगी तो उसी चित्रकार द्वारा चित्रित की हुई आर्या वासवदत्ता की छाया भी ठीक ही होगी । इसलिए मैं आर्यपुत्र का चित्र देखना चाहती हूँ । (२) प्रतिकृति—चित्र, प्रतिमा । 'प्रतिमा प्रतियातना प्रतिच्छाया प्रतिकृतिरर्चा पुंसि प्रतिनिधिः' इत्यमरः । (३) जानामि—यहाँ 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' सूत्र से भविष्यत्काल के अर्थ में लट् लकार हुआ । (४) चित्रदर्शनात्प्रभृति—यहाँ 'कार्तिक्याः प्रभृति' इस

माप्यप्रयोग के बल से प्रभृत्यर्थ योग मे पचमी हुई। (५) प्रहृष्टोद्विग्नाम्—प्रसन्न और घबड़ायी हुई। प्रहृष्टा+प्र+हृष्+क्त(त) (कर्त्तरि)+टाप् (आ) उद्विग्ना—उत्+विज्+क्त (त) कर्त्तरि+टाप् (आ)। यहाँ पद्मावती की प्रसन्नता इस बात से है कि वासवदत्ता जीवित है और घबड़ाहट इस कारण हो रही है कि एक ब्राह्मण द्वारा अपनी बहन बताकर थाती के रूप में रखी हुई आवन्तिका को वह कैसे प्राप्त कर सकती है। (६) प्रोषितभर्तृका—प्रोषितः भर्ता यस्याः सा—वह स्त्री जिसका पति परदेश चला गया हो। 'नद्यृतः कप्' सूत्र से क प्रत्यय। (७) तां अय्यं मए ··—यहाँ कोई 'ता अय्या पेक्खदु सदिसी णवेत्ति (तदार्या पश्यतु सदृशी नवेति)' ऐसा पाठ मानते हैं। इसका अर्थ होगा—इसलिए आर्या वसुन्धरा देखें कि वह वासवदत्ता की जैसी है या नहीं।

राजा—यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥१४॥

अन्वय—यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तम् अन्या भविष्यति। लोके परस्परगता रूपतुल्यता दृश्यते ॥१४॥

संस्कृत टीका—यदि चेत्, (सा) विप्रस्य—ब्राह्मणस्य, भगिनी—स्वसा (भवेत् तर्हि) व्यक्तम्,—स्पष्टम्, अन्या—इतरा, भविष्यति—स्यात्। लोके—संसारे, परस्परगता—पारस्परिकी, रूपतुल्यता—स्वरूपसादृश्यं, दृश्यते—अवलोक्यते। (अयं भावः—त्वत्समीपे विद्यमाना सा महिला यदि ब्राह्मणस्य स्वसा वर्तते तर्हि सा वासवदत्ता नैव भवेत्; यतो हि वासवदत्ता राजकुलप्रसूता, इयं च ब्राह्मणी। का तयोस्तुल्यता? रूपसादृश्य तु जगति बहु दृश्यते। एतादृङ्मात्रसादृश्यात् सा वासवदत्तैवेति निश्चयकरण न समीचीनम्।)॥१४॥

अनुवाद—राजा—यदि (वह) ब्राह्मण की बहन है तो स्पष्ट (है कि कोई) दूसरी होगी। क्योंकि ससार मे (बहुतों के) स्वरूप एक दूसरे से मिलते-जुलते दिखाई पड़ते हैं ॥१४॥

King—A Brahmin's sister? Then she needs must be some other person. It is a chance resemblance, such as are often met with in this world.

टिप्पणी—(१) व्यक्तम्—वि√अञ्ज्+क्त (त)। अत्र क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया। (२) परस्परगता—सविभक्तिकस्य परशब्दस्य 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्' इत्यनेन द्वित्वे 'असमासवद्भावे पूर्वपदस्य

सुपःसुर्वक्तव्यः' इत्यनेन पूर्वपदस्य विभक्तेः सु आदेशे सस्य रुत्वे विसर्गे च 'कस्कादिषु च' इत्यनेन विसर्गस्य सत्वे परस्परम् सिध्यति, परस्परम् गता इति परस्परगता द्वि० त०। (३) रूपतुल्यता—रूपयोः रूपाणाम् वा तुल्यता रूपतुल्यता ष० त० यह अनुष्टुप् छद है ॥१४॥

(प्रवेश्य) प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो उज्जइणीओ बह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो। [जयतु भर्त्ता। एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः।]

(प्रवेश करके) प्रतिहारी—महाराज की जय हो। उज्जैन के रहने वाले एक ब्राह्मण दरवाजे पर खड़े हैं; जो कह रहे हैं कि स्वामिनी के हाथ में मैंने अपनी बहन को थाती रखा था। उसे लेने आया हूँ।

(Entering) Door-keeper—Hail, Sire, A Brahmin of Ujjain, who left his sister in the keeping of the queen—so he declares—has come to take her hence, and waits before the gate.

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

राजा—पद्मावती ! क्या (यह) वही ब्राह्मण हैं ?

King—Padmavati, is he the same Brahmin ?

पद्मावती—होदव्वं। [भवितव्यम्]

पद्मावती—हो सकता है !

Padmavati—He may be.

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः।

राजा—गृहोचित शिष्टाचार के साथ उस ब्राह्मण को शीघ्र अन्दर ले आओ।

King—Bring in that Brahmin with the formalities of the internal apartments.

प्रतिहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता।) [यद्भर्ताज्ञापयति।]

प्रतिहारी—जो स्वामी की आज्ञा। (चली जाती है।)

Door-keeper—As your majesty commands.

राजा—पद्मावति ? त्वमपि तामानय।

राजा—पद्मावती ! तुम भी उसे ले आओ ।

King—Padmavati you too bring her.

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् आर्यपुत्रः आज्ञापयति ।

पद्मावती—जैसी आर्यपुत्र की आज्ञा । (चली जाती है ।)

Padmavati—As your lordship commands (exit).

टिप्पणी—(१) उज्जयिनीयः—उज्जयिनी निवासोऽस्य इति विग्रहे 'सोऽस्य निवासः' इत्यधिकारे 'वा नामधेयस्य' इति वृद्धसंज्ञायां 'वृद्धाच्छः' इति सूत्रेण छप्रत्यये तस्य ईयादेशः । (२) प्रतिग्रहीतुम्—प्रति+ग्रह्+तुमुन् (तुम्) । (३) उपस्थितः—उप+स्था+क्त (त) । (४) अभ्यन्तरसमुदाचारेण—अभ्यन्तरे—गृहाभ्यन्तरे यः समुदाचारः—पाद्यादिप्रदानरूपोऽतिथिजनोचितः सत्कारः, तेन तत्पूर्वकेणेत्यर्थः ।

(ततःप्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च ।) यौगन्धरायणः—भोः ! [आत्मगतम्]

(तदनन्तर यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश ।) यौगन्धरायण—(मन में) आह ।

(Then enter Yaugandharayan and the door-keeper) Yaug-(Aside.)

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥१५॥

अन्वय—मया नृपतेः हितार्थम् राजमहिषीम् प्रच्छाद्य इदम् हितम् इति अवेक्ष्य कामं कृतम् । मम कर्मणि सिद्धे अपि नाम असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम् ॥१५॥

संस्कृत टीका—मया—यौगन्धरायणेन, नृपतेः—राज्ञः, हितार्थम्—उपकाराय, राजमहिषीम्—पट्टराज्ञीं वासवदत्तामिति यावत्, प्रच्छाद्य—सङ्गोप्य, इदम्—पद्मावत्या सह महाराजस्य परिणयनम्, हितम्—लाभकरम्, इति—इत्थम्, अवेक्ष्य—आलोच्य, कामं—स्वैरं यथा स्यात् तथा, कृतं—विहितम् ।

मम—मत्सम्पादिते, कर्मणि—कार्ये, सिद्धे अपि—साफल्यं प्राप्ते अपि, नाम—वाक्यालङ्कारार्थमिदमव्ययम्, असौ—अयं, पार्थिवः—राजा, किं वक्ष्यति—किं कथयिष्यति, इति—एवं विचार्य, मे—मम, हृदयं—चेतः, परिशङ्कितम्—शङ्काकुलम् (विद्यते)। (अथ भावः—पद्मावत्या सह महाराजस्य विवाहे संवृत्ते मगधेश्वरसाहाय्यलाभेन स्वामी शत्रुं पराजित्य अपहृतं राज्यं पुनः स्वायत्तीकर्तुं प्रभवेत् इत्यस्माकं योजना राज्ञः प्रणयविशेषशालिन्या वासवदत्ताया विद्यमानाया दुर्घटा इति विमृश्य 'वह्नौ वासवदत्ता दग्धा' इति मिथ्याप्रवादं प्रचार्य मया राज्ञः प्राणेश्वरी वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण पद्मावत्या हस्ते न्यस्तीकृता। अथ साफल्यं प्राप्तायामस्माकं योजनायाम् मया सर्वमप्यनुष्ठितं स्वामिहितसम्पादनायैवेति जानन्नप्यहं बिभेमि यत् स्वामी मदीयं कार्यमिदम् उचितम् अनुचितं वा वेत्स्यति तदर्थं च साध्वसाधु किं वा कथयिष्यति इति।) ॥१५॥

अनुवाद—मैंने राजा के हित के लिए महारानी को छिपाकर इसी में कल्याण है—ऐसा सोच कर मनमाना काम किया। परन्तु मेरे प्रयत्नों के सफल हो जाने पर भी 'ये राजा क्या कहेंगे' यह सोचकर मेरा हृदय शंकित हो रहा है ॥१५॥

Having conceald the queen for the welfare of the king, I have willingly done this, thinking it to be his good, Even though my action has really been accomplished, I feel doubtful as to what the king would say.

टिप्पणी—(१) हितार्थम्—√धा+क्त (भावे) 'दधातेर्हिः' इति सूत्रेण धा इत्यस्य हि आदेशः=हिताय इदम् इति हितार्थम् ('अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्' इति वार्तिकेन नित्यसमासः। (२) राजमहिषीं—महारानी को, राज्ञः महिषी ताम् (ष० त०)। (३) प्रच्छाद्य—प्र√छद्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। (४) प्रवेक्ष्य—विचार कर। प्रव√ईक्ष्+क्त्वा—ल्यप्। (५) कामम्—स्वेच्छा से। अत्र क्रियाविशेषणत्वात् द्वितीया। (६) कर्मणि—अत्र 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इति सूत्रेण सप्तमी। (७) पार्थिवः—पृथिव्याः ईश्वरः इत्यर्थे पृथिवी+अञ्। यह वसन्ततिलका छंद है। यौगन्धरायण का इस प्रकार घबड़ाना स्वाभाविक ही था। राजा या तो उसकी स्वामिभक्ति से प्रसन्न होता या अरुचि प्रकट करता ॥१५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा। उवसप्पदु अय्यो। [एष भर्ता। उपसर्पत्वार्यः।

प्रतीहारी—ये स्वामी हैं। आप समीप जायें।

Door-keeper—Here is the king. Approach him.

यौगन्धरायणः—[उपसृत्य] जयतु भवान् जयतु।

यौगन्धरायण—(समीप जाकर) आपकी जय हो।

Yaug.—(Going near) Hail my lord.

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः। भो ब्राह्मण! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता?

राजा—यह स्वर तो पहले का सुना हुआ-सा मालूम होता है। हे ब्राह्मण! क्या आपकी बहन पद्मावती के हाथ थाती रखी हुई है?

King—This seems a voice that have I heard before. Say Brahmin was your sister left in charge with the princess Padmavati.

यौगन्धरायणः—अथ किम्?

यौगन्धरायण—और क्या?

Yaug.—She was.

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका।

राजा—(प्रतीहारी से) तब शीघ्र से शीघ्र इनकी बहन ला दो।

King—(To the door-keeper) then bring his sister soon.

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता।) [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।]

प्रतीहारी—जो स्वामी की आज्ञा। (चली जाती है।)

Door-keeper—As your lordship commands (goes.)

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च।) पद्मावती—एदु एदु अय्या। पिअं दे णिवेदेमि। [एत्वेत्वार्या। प्रियं ते निवेदयामि।

(तदनन्तर पद्मावती, आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश।) पद्मावती—आइय, आइये आर्या! मैं आपको प्रिय बात सुनाती हूँ।

(Then enter Padmavati, Vasavadatta and door-keeper.) Padmavati—Come, lady, come I have good news for you.

आवन्तिका—किं किं? [किं किम्?]

आवन्तिका—क्या? क्या?

Vasava.—What? Tell, me what?

पद्मावती—भादा दे आअदो। [भ्राता ते आगतः।]

पद्मावती—आपके भाई आये हैं।

Padmavati—Your brother has arrived.

आवन्तिका—दिट्ठिआ इदाणिं पि सुमरदि। [दिष्ट्येदानीमपि स्मरति।]

आवन्तिका—धन्य भाग्य! अभी भी याद करते हैं।

Vasava.—How happy that he still remembers me.

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो। एसो णासो। [जयत्वार्यपुत्रः। एष न्यासः।]

पद्मावती—(समीप जाकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह धरोहर है।

Padmavati—(Going near) Hail, Sire here is the pledge entrusted to me.

राजा—निर्यातय पद्मावति! साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः। इहात्रभवान् रैभ्यः अत्रभवती साधिकरणं भविष्यतः।

राजा—पद्मावती! धरोहर लौटा दो। साक्षी के सामने धरोहर लौटानी चाहिए। इसमें पूज्य रैभ्य और पूज्या वसुन्धरा साक्षी होंगे।

King—Padmavati, give it back. A deposit, should be returned in the presence of witnesses. Here the honoured Raibhya and the served Basundhara will become the tribural.

पद्मावती—अय्य! णीअदु दाणिं अय्या। [आर्य! नीयतामिदानीमार्या।]

पद्मावती—आर्य! अब आप आर्या को ले जायें।

Padmavati—Sir, take your sister.

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो! भट्टिदारिआ वासवदत्ता! [अम्मो! भर्तृदारिका वासवदत्ता!]

धाई—(आवन्तिका को ध्यान से देखकर) अरे! यह तो राजकुमारी वासवदत्ता है।

Nurse—(Closely looking at Avantika) Oh princess Vasavadatta.

राजा—कथं महासेनपुत्री? देवि! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह। !

राजा—क्या महासेन जी की पुत्री? देवी! तुम पद्मावती के साथ अन्दर जाओ।

King—Why, she is king Mahasen's daughter, Queen go inside with Padamavati.

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम्। मम भगिनी खल्वेषा।

यौगन्धरायण—न न, भीतर नहीं जाना चाहिए। यह सचमुच मेरी बहन है।

Yaug.—No, no, do not go in. Really she is my sister.

राजा—किं भवानाह? महासेनपुत्री खल्वेषा।

राजा—आप क्या कहते हैं? यह निश्चित ही महासेन जी की पुत्री है।

King—What do you say sir? She is truly Mahasen's daughter.

टिप्पणी (१) श्रुतपूर्वः—पूर्वं श्रुतः इति श्रुतपूर्वः 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति सूत्रेण समासे विशेषस्य पूर्वनिपातः। (२) न्यास इति निक्षिप्ता?—न्यासरूपेण स्थापिता किम्? (३) त्वर्यतामस्य भगिनिका—प्रतिशीघ्रमानीयतामस्य स्वसा। त्वर्यताम्—त्वर्+णिच् (कर्मणि यक्+लोट् ताम्)। (४) प्रियं ते निवेदयामि—सम्प्रदाने चतुर्थी। निपूर्वक प्रेरणार्थकविद् धातु के प्रकृत दशा के कर्त्ता को कर्मरूप में प्रयुक्त न करके सम्प्रदान रूप में प्रयुक्त करते हैं। (५) निर्यातय—न्यासं प्रत्यर्पय। 'निर्यातनं वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च' इत्यमरः। (६) साक्षिमत्—साक्षिपूर्वक। यह क्रियाविशेषण है। साक्षी विद्यते यत्र तत् यथा स्यात् तथा, साक्षिन्+मतुप्। (७) निर्यातयितव्यः—प्रत्यर्पणीयः। यहाँ भाव यह है कि धरोहर साक्षी की उपस्थिति में ही लौटानी चाहिए। क्योंकि विधान ऐसा ही है। लोक में किसी बात को लेकर विवाद खड़ा होने पर साक्षी ही निर्णय में सहायता प्रदान करके झगड़े को निपटाता है। यहाँ तो थाती भी विचित्र प्रकार की है। इसमें साक्षी की और आवश्यकता

हैं । (८) अधिकरणम्--निर्णयस्थान, न्यायालय । यहाँ इसका लाक्षणिक अर्थ न्यायाधीश विवक्षित है । (९) खलु--निश्चय ।

यौगन्धरायणः--भो राजन् !

यौगन्धरायण--हे राजन् !

Youg—Oh king.

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥१६॥

अन्वय--भारताना कुले जातः विनीतः, ज्ञानवान्, शुचिः, राजधर्मस्य देशिकः । तत् बलात् हर्तुं न अर्हसि ॥१६॥

संस्कृत टीका--(त्वम्) भारतानां भरतवंशीयाना राज्ञां, कुले--वंशे, जातः--उत्पन्नः, विनीतः--नम्रः, ज्ञानवान्--प्रज्ञावान् सदसद्विवेकशील इति यावत्, शुचिः--शुद्धः पवित्राचरण इति यावत्, राजधर्मस्य--राजोचित-कर्तव्यस्य, देशिकः--उपदेष्टा (असि) । तत्--तस्मात् कारणात्, बलात्--हठात्, हर्तुं --ग्रहीतुम्, न अर्हसि--न योग्योऽसि । (अयं भावः--हे राजन् ! भवान् जगद्विदितपाण्डववंशे समुत्पन्नोऽस्ति । भवतः नम्रता, विवेकशीलता, पवित्रता एवं राजधर्मस्य उपदेष्टृता सर्वैः प्रशस्यते । अतः नेदमुचितं यत् भवान् मम दरिद्रस्य ब्राह्मणस्य भगिनीं हठात् स्वान्तःपुरे प्रवेशयेत् ।) ॥१६॥

अनुवाद--आप भरतवंशी राजाओं के कुल में उत्पन्न हुए हैं, विनम्र, ज्ञानी, पवित्राचरण वाले और राजधर्म के प्रवर्तक हैं । इसलिए बलपूर्वक (मेरी बहन) छीनने योग्य नहीं है ॥१६॥

Prince, you are sprung from the race of Bharat, well nurtured. Well instructed, well disposed and all kingly virtues are instructive to you. You cannot, will not take her hence by force.

टिप्पणी--(१) भारतानाम्--भरत के कुल में उत्पन्न अभिमन्यु से पचीसवीं पीढ़ी मे उदयन का जन्म हुआ था । भरतस्य गोत्रापत्यानि पुमासः इति विग्रहे भरत+अञ् 'उत्सादिभ्योऽञ्' इति सूत्रेण । (२) देशिकः--उपदेशक या प्रवर्तक आचार्य । देशः=उपदेशः अस्ति अस्य इति विग्रहे देश+ठन्--इक । यहाँ यौगन्धरायण के कहने का तात्पर्य यह है कि हे राजन् ! आप उन राजाओं के कुल मे उत्पन्न हुए हैं जो न्याय के लिए प्रसिद्ध हैं । यही नही, आप ज्ञानी और पवित्र

हैं। उस पर भी आप राजधर्म के चलाने वाले हैं। ऐसी स्थिति में यदि आप दूसरे की स्त्री को बलपूर्वक अपने घर में डाल लेंगे तो अनर्थ हो जाएगा। अतः आप मेरी बहन को लौटा दें, अपने घर में न डालें। इस श्लोक में सभी विशेषणों के साभिप्राय होने के कारण परिकर अलंकार है। तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे— विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। और इसमें अनुष्टुप् छन्द है ॥१६॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद्रूपसादृश्यम्। संक्षिप्यतां जवनिका।

राजा—अच्छा, आकृतियों की समानता देखें। जरा घूंघट हटाइये।

King—*Then here let us examine thes resemblance and let the* lady's veil be removed first.

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो।

Yaug—All hail my king.

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो। [जयत्वार्यपुत्रः।]

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो।

Vasava.—All hail my lord and husband.

टिप्पणी (१) संक्षिप्यतां जवनिका—जवनिका कहते हैं पर्दे को। 'प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी च सा' इत्यमरः। किन्तु यहाँ इसका अर्थ घूंघट मालूम होता है। क्योंकि पद्मावती राजा को दिखाने के लिए वासवदत्ता को ले आई थी। यदि वासवदत्ता पर्दे के पीछे खड़ी रहती तो पद्मावती का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता और न वसुन्धरा ही को देख पाती। फिर पद्मावती ने यौगन्धरायण के सामने जो कहा कि यह है आपकी बहन, इस वाक्य की संगति भी पर्दे वाले अर्थ में नहीं बैठती है। धात्री के पहचानने पर वासवदत्ता के प्रति राजा का आदेश कि देवी! तुम पद्मावती के साथ भीतर चली जाओ, पर्दे वाले अर्थ में युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। इन अनुपपत्तियों के कारण हम यहाँ जवनिका का अर्थ पर्दा नहीं कर सकते। घूंघट से भी तो पर्दा होता ही। इसलिए इसका मुख्यार्थ से कोई विरोध भी नहीं होगा। (२) जयतु स्वामी; जयतु आर्यपुत्रः—यहाँ यौगन्धरायण और वासवदत्ता अपने छद्म वेश को हटा कर *राजा का अभिवादन करने लगते हैं। वस्तुतः नाटक यहीं समाप्त हो जाता है।*

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

राजा—अरे ! यह यौगन्धरायण और यह महासेन जी की पुत्री !

King—Oh it is Yaugandharayan and this Vasavadatta.

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥१७॥

अन्वय—इदम् किन्नु सत्यम् स्वप्नः (वा) मया सा भूयः दृश्यते । तदा दृष्टया अपि अनया एवम् एव अहम् वञ्चितः ॥१७॥

संस्कृत टीका—इदम्—वासवदत्तायाः दर्शनं, किन्नु सत्यम्—यथार्थं किम् (अथवा) स्वप्नः—स्वप्नरूपमयथार्थं, (यत्) मया—उदयनेन, सा—वासवदत्ता, भूयः—पुनः, दृश्यते—अवलोक्यते, तदा—तदानीं समुद्रगृहशयनसमये इति यावत्, दृष्टया अपि—अवलोकितया अपि, अनया—वासवदत्तया, एवमेव—इत्थमेव, अहम्—उदयनः, वञ्चितः—प्रतारितः (अय भावः—अधुना वासवदत्ताया दर्शनं सत्यं वा स्वप्नमहं पश्यामि ? पुरा समुद्रगृहे शयानेन मया वासवदत्ता दृष्टा आसीत्, परन्तु दृष्टिगोचरतां प्रयाताऽपि सा तत्क्षणमेव अन्तर्हिताऽभूत् । इत्थं तया वञ्चितोऽहं न निर्णेतुं पारयामि यदियं वासवदत्ता पुरो मे वर्तते वा दृग्भ्रमो मे सञ्जातः ।) ॥१७॥

अनुवाद—क्या यह सत्य है या स्वप्न है, जो मैं वासवदत्ता को फिर देख रहा हूँ ? उस समय (समुद्र-गृह में सोते समय) इसी प्रकार देखी गई उसके द्वारा मैं ठगा गया था ॥१७॥

It is a dream or a reality that she is seen by me again at that time I was thus certainly deceived by her when I saw her.

टिप्पणी—(१) किन्नु…—पहले समुद्रगृह में उदयन ने स्वप्न के अन्त में वासवदत्ता को साक्षात् देखा था । परन्तु वह भाग गई । अतः उसके अस्तित्व का निर्णय नहीं हो सका । उदयन ने उसे अपने मन का विभ्रम ही समझा । अब जब वासवदत्ता सामने आती है तब वह सोचता है कि यह कहीं पहले के समान ही स्वप्न तो नहीं है जो क्षण भर बाद अवास्तविकता में बदल जाय और वासवदत्ता अदृश्य हो जाय । यह अनुष्टुप् छंद है ॥१७॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । [इति पादयोः पतति ।]

संस्कृत टीका—स्वामिन् !—प्रभो !, देव्यपनयेन—देव्याः वासवदत्तायाः अपनयेन स्वरूपप्रच्छादपुरस्सरमन्यत्र नयनेन, अहम्—यौगन्धरायणः, खलु—निश्चयेन, कृतापराधः—कृतः विहितः अपराधः दोषःयेन स तथाविधः (अस्मि)। तत्—मम दुर्विनयचेष्टितम्, स्वामी—महाराजः, क्षन्तुमर्हति—मर्षयितुं योग्योऽस्ति।

अनुवाद—यौगन्धरायण—महाराज! महारानी को हटाकर मैंने अपराध किया है इसे श्रीमान् क्षमा करें। (यह कहकर पैरों पर गिर जाता है।)

Yaug.—My Lord I am to be blamed for concealing the queen. I request you to forgive me (Falls at the king's feet).

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु।

राजा—(उठाकर) क्या सचमुच आप यौगन्धरायण हैं?

King—(Raising) Are you really Yaugandharayan ?

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥१८॥

अन्वय—मिथ्योन्मादैः च युद्धैः च शास्त्रदृष्टैः मन्त्रितैः च भवद्यत्नैः मज्जमाना वयम् खलु समुद्धृताः ॥१८॥

संस्कृत टीका—मिथ्योन्मादैः—मिथ्या, असत्याः उन्मादाः चित्तविभ्रमाः तैः, युद्धैः—सङ्ग्रामैः, शास्त्रदृष्टैः—शास्त्रानुमोदितैः, मन्त्रितैः—गूढविचारैश्च, भवद्यत्नैः—भवतः यौगन्धरायणस्य यत्नैः प्रयत्नैः, मज्जमानाः—मज्जनशीलाः विपत्सागरे इति शेषः, वयम्, खलु—निःसंशयम्, समुद्धृताः—समुत्तारिताः अय भावः—यदाऽहं महासेनेन निगृह्य स्वान्तःपुरे स्थापितः तदा भवानेव उज्जयिन्याम् आत्मानमुन्मत्तमिव प्रदर्शयन् पश्चात् प्रद्योतसैनिकैः सह युद्धमपि कुर्वन् मां बन्धनान्मोचितवान्। समये-समये स्वमन्त्रणाभिः प्रयत्नैश्च विपत्सिन्धौ मज्जमानान् अस्मान् समुत्तारितवान्। इदानीमपि सञ्जाता स्वराज्यप्राप्तिरपि भवद्राजनीतेरेव फलम्। इत्थं परमोपकारिणो भवतः उपकारान् कथमहं विस्मर्तुं शक्नुयाम्? अतएव न मनागपि भवतोऽपराधः। भवान् सर्वथा प्रशंसनीय एव।) ॥१८॥

अनुवाद—आपने बनावटी पागल की-सी चेष्टाओं, युद्धों, शास्त्रसम्मत परामर्शों और प्रयत्नों द्वारा निःसन्देह (विपत्ति-सागर में) डूबते हुए हमें उबारा है ॥१८॥

By feigned insanity, battles, counsels and your efforts we have indeed been well saved from sinking into the ocean of misfortunes.

टिप्पणी—(१) मिथ्योन्मादैः—झूठा पागलपन। 'उन्मादश्चित्तविभ्रमः' इत्यमरः। उद्√मद्+घञ्=उन्माद। मिथ्या उन्मादाः मिथ्योन्मादाः सुप्सुपा समास। करणे तृतीया। जब प्रद्योत ने उदयन को बन्दी बना लिया था तब यौगन्धरायण पागल का रूप धारण करके उज्जयिनी में रहने लगा था। वहाँ रहते-रहते वह राजा को निकालने का प्रबन्ध कर चुकने के बाद उसे लेकर वहाँ से भाग गया था। जब प्रद्योत की सेना ने उसका पीछा किया तो उसने डट कर मुकाबला किया था। (२) युद्धैः—युध्+क्त (त)। करण में तृतीया हुई है। (३) शास्त्रदृष्टैः—राजनीति के सिद्धान्तों के अनुकूल। शास्त्रे दृष्टानि शास्त्रदृष्टानि सप्तमी तत्पुरुष, तैः। (४) मन्त्रितैः—मन्त्रणाओं से। √मन्त्र्+णिच्+क्त (त) (भावे)। (५) मज्जमानाः—डूबते हुए। √मस्ज्+लट्+चानश् 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' इति सूत्रेण। यहाँ शानच् प्रत्यय नहीं हो सकता है, क्योंकि यह परस्मैपदी धातु है। (६) समुद्धृताः—उबारे गये। सम्+उद्+धृ+क्त (त)। यहाँ राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे ऊपर कई बार विपत्तियाँ पड़ी, हम बन्धन में पड़े, राज्य खोया, स्त्री से वियुक्त हुए, पर आपने अपने प्रयत्नों द्वारा हमें नष्ट होने से बचाया और पुनः समस्त सुखों का भागी बना दिया। यह अनुष्टुप् छंद है ॥१८॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम्।

यौगन्धरायण—हम तो स्वामी के भाग्य के पीछे चलने वाले हैं।

Yaug.—We are the followers of our lord's fortunes.

पद्मावती—अम्महे! अय्या खु इअं। अय्ये! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो। ता सीसेण पसादेमि। [अहो! आर्या खल्वियम्। आर्ये! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः। तच्छीर्षेण प्रसादयामि।]

संस्कृत टीका—अहो!—आश्चर्यप्रद्योतकमव्ययमिदम्, इयम्—पुरोवर्तिनी आर्या—मम पूज्या वासवदत्ता, खलु—निश्चयेन (वर्तते)। आर्ये!—पूज्ये! सखीजनसमुदाचारेण—वयस्यासमुचितेन व्यवहारेण, अजानन्त्या—अनवगच्छन्त्या, (मया) समुदाचारः—शिष्टाचारः, अतिक्रान्तः—उल्लङ्घितः। तत्—तस्मात् कारणात्, शीर्षेण—शिरसा (प्रणामेन), प्रसादयामि—अनुनयामि।

अनुवाद—पद्मावती—अहा ! ये तो आर्या (पूज्य दीदी) हैं। दीदी ! अनजान में मैंने सखी का-सा व्यवहार करके शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। अतः शिर झुकाकर क्षमा माँगती हूँ।

Padamavati—Oh indeed she is a noble, lady madam. intreating you as a companion unknowingly I have transgressed proper conduct, I therefore propitiate you by head.

वासवदत्ता—[पद्मावतीमुत्थाप्य]उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे। उट्ठेहि। अत्थिसअं णाम सरीरं अवरज्झइ। [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाऽविधवे। उत्तिष्ठ। अर्थित्वं नाम शरीरमपराध्यति।]

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो उठो सुहागिन ! उठो। याचक का धन बना हुआ (मेरा) शरीर ही अपराधी है।

Vasava.—(Raising Padamavati) Stand up blessed one. A suppliant really does wrong to his own body.

पद्मावती—अणुग्गहिदह्मि। [अनुगृहीतास्मि।]

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हूँ।

Padamavati—I am favoured.

राजा—वयस्य यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

राजा—मित्र ! महारानी को हटाने से तुम्हारा क्या तात्पर्य था ?

King—What did you mean by removing the queen.

यौगन्धरायण—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति।

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी पर ही हमारा अधिकार रह गया था।

Yaug.—Only Kaushambi was left in or possession.

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

राजा—अच्छा, पद्मावती के हाथ धरोहर रखने का क्या कारण था ?

King—What did yon mean by entrusting her to Padamavati.

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति।

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि पद्मावती महाराज की रानी होगी।

Yaug.—Astrologers, like Puspakbhadra had prophesied that Padamavati will be your queen.

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ?

राजा—क्या यह रुमण्वान् को भी ज्ञात था ?

King—Did Rumanvan also know this ?

यौगन्धरायणः—स्वामिन् सर्वैरेव ज्ञातम् ।

यौगन्धरायण—महाराज ! सभी को ज्ञात था ।

Yaug.—Oh sire, it was known to all.

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

राजा—अरे ! रुमण्वान् बड़ा दुष्ट है ।

King—What a rogue Rumanvan was.

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

यौगन्धरायण—महाराज ! महारानी की कुशल निवेदन करने के लिए आज ही पूज्य रैभ्य और पूजनीया वसुन्धरा लौट जायँ ।

Yaug.—Oh king let the revered Raibhya and the lady Vasundhara return just today to tell the welfare of the queen.

राजा—न, न । सर्व एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

राजा—नहीं-नहीं । हम सभी लोग देवी पद्मावती सहित जायेंगे ।

King—No, no we all shall go with her ladyship Padamavati.

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

यौगन्धरायण—जो महाराज की आज्ञा ।

Yaug.—As your honour says.

टिप्पणी—(१) स्वामिभाग्यानाम्—स्वामिनः=श्रीमतः भाग्यानाम् परमाभ्युदयसम्पादकानां शुभादृष्टानाम् । अर्थात् आपका अभ्युदय कारक पुण्य कर्मों का ही फल है । हम तो केवल निमित्तमात्र हैं । यहाँ 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से कर्म मे षष्ठी हुई । (२) अनुगन्तारः—अनु√गम्+तृच् । (३) सखीजनसमुदाचारेण—सखी की तरह व्यवहार करने के कारण । सखी एव जनः

सखीजनः मयूरव्यंसकादित्वात् समास, सखीजनोचितः समुदाचारः सखीजन-समुदाचारः मध्यमपदलोपी समास तेन। यहाँ हेतु में तृतीया हुई। (४) शीर्षेण—अर्थात् आपके चरणों पर शिर रखकर। 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षम्' इत्यमरः। यहाँ भावार्थ यह है कि परिचय न होने के कारण मैंने आज तक आपसे सखी की तरह व्यवहार किया है। पूज्य व्यक्ति के साथ जैसा बर्ताव करना चाहिए वैसा नहीं किया। इसलिए चरणों पर गिर कर क्षमा चाहती हूँ। (५) अविधवे!—सौभाग्यवती! विगतः धवः=पतिः यस्याः सा विधवा, न विधवा अविधवा, तस्याः सम्बोधने अविधवे इति। यहाँ अविधवा शब्द का प्रयोग सौभाग्याभाव का निषेध करके अखण्डित सौभाग्य रूप अर्थ को देता है। इसलिए यह सुन्दर है। महाकवि कालिदास ने भी इसका प्रयोग किया है—'भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहम्'—मेघदूत। (६) अर्थिस्त्वं नाम शरीरमपराध्यति—यहाँ भाव यह है कि याचक का रूप धारण करके यौगन्धरायण ने मुझको तुम्हारे पास धरोहर रख दिया और उसके अनुसार मैंने भी अपना नाम-धाम छिपा लिया। इस प्रकार वस्तुतः शिष्टाचार का अतिक्रमण तो मैंने किया, तुमने नहीं। अतएव मैं ही अपराधिनी हूँ, तुम्हारा कोई अपराध नहीं। (७) अपराध्यति—यहाँ भूतार्थ में लट् लकार हुआ और दिवादिगणीय धातु होने के कारण मध्य में श्यन् प्रत्यय भी। (८) देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः—देवी को अलग करने में तुम्हारा क्या उद्देश्य था? देव्याः=वासवदत्तायाः अपनयः=देशान्तरनयनम्, तस्मिन्, ते=त्वया का बुद्धिः=कीदृशी मतिः, कृता=विहिता। अपनयः—अप√नी+अच्। (९) कौशाम्बीमात्रम्—भाव यह है कि उस समय हम केवल कौशाम्बी नगर पर ही शासन कर रहे थे और सम्पूर्ण वत्सराज्य शत्रु के हाथ में चला गया था। उसे पुनः प्राप्त करने के लिए किसी शक्तिशाली राजा की सहायता आवश्यक थी। इसलिए हमने सोचा कि वासवदत्ता का अपहरण करने के कारण महासेनजी तो सहायता दे नहीं सकते। इसलिए मगधेश्वर से सम्बन्ध स्थापित करके हमें सहायता लेनी चाहिए। पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों ने कहा भी था कि महाराज का दूसरा विवाह मगधराजकुमारी से होगा। परन्तु वासवदत्ता जी के रहते आप दूसरा विवाह नहीं कर सकते थे। इसलिए हमने आपस में तय किया कि अग्निकाण्ड के माध्यम से देवी के जल जाने का मिथ्या प्रचार करके उन्हें मगधराजकुमारी के पास ही गुप्तरूप से थाती रख दें, ताकि महारानी सुरक्षित रहेंगी और इधर महाराज भी उनकी मृत्यु को निश्चित समझकर पद्मावती से विवाह कर लेंगे।

फिर तो मगधराज की सहायता से हमें वत्सराज्य पर अधिकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। (१०) परिपालयामि—यहाँ भूतार्थ में लट् लकार हुआ उ० पु० ए० व०। (११) पुष्पकभद्रादिभिः—तात्पर्य यह है कि पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों ने बताया था कि पद्मावती जी आपकी अर्धाङ्गिनी होंगी। इन ज्योतिषियों ने पहले आपके राज्य नष्ट होने की भी बात कही थी। वह सत्य निकली। तो विवाह-सम्बन्धी बात भी सच्ची होगी—यह निश्चय करके हमने महारानी को पद्मावती के पास ही रखना उचित समझा। क्योंकि समय आने पर पद्मावती जी महारानी के चरित्र की शुद्धि के बारे में जो साक्ष्य देंगी, उस पर आपको विश्वास होगा। और दूसरा कारण यह भी सोचा कि राजकुमारी पद्मावती के साथ रहने से महारानी को जीवन के अभावजन्य दुःखों का अनुभव न करना पड़ेगा और पद्मावती के चरित्र की साधुता का भी परिचय मिल जाएगा। पुष्पकभद्रः आदिः येषां ते पुष्पकभद्रादयः बहुव्रीहि समास, तैः। (१२) आदेशिकैः—भविष्यदर्शवादिभिः सिद्धैः। आदेशः शीलमेषाम् इति आदेशिकाः तैः, आदेश+ठक् 'शीलम्' इत्यनेन, तस्य इकादेशः। शठः। (१३) खलु रुमण्वान्—यहाँ राजा ने रुमण्वान् को स्नेहपूर्वक उपालम्भ देते हुए शठः कहा है। वह आश्चर्य करता है कि जो लोग इस विषय को नहीं जानते थे, उनकी तो कोई बात नहीं है किन्तु रुमण्वान् ने इस बात को जानते हुए भी तथा मेरे दुःख से दुःखी होते हुए भी वासवदत्ता का कुशल-समाचार मुझे नहीं बताया यह उसकी अद्भुत वञ्चकता है। (१४) कुशलनिवेदनार्थम्—कुशलस्य निवेदनम् ष० त०, तस्मै इदम् इति नित्य-समासः। (१५) प्रतिनिवर्तताम्—प्रस्थान कर दें। यहाँ प्रत्येक के अभिप्राय से एकवचन हुआ, अन्यथा रैभ्य और अत्रभवती दो कर्ता होने के कारण द्विवचन होना चाहिए था। न न—ये दो न अकेले जाने का सर्वथा निषेध करते हैं। (१६) सर्व एवः—भाव यह है कि भवद्वधू पद्मावती सहित हम सभी लोग चलेंगे। क्योंकि इन दोनों को देखकर और यह समझ कर कि अब तक वासवदत्ता पद्मावती के पास ही रही है तथा इन दोनों में परस्पर प्रगाढ़ स्नेह है, माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे।

[भरतवाक्यम्]

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥१९॥

[निष्क्रान्ताः सर्वे ।] इति षष्ठोऽङ्कः । इति स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

अन्वय—नः राजसिंहः सागरपर्यन्ताम् हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्काम् इमाम् महीम् प्रशास्तु ।।१६।।

संस्कृत टीका—नः—अस्माकं, राजसिंहः—सिंहसदृशपराक्रमी राजा उदयन इति यावत्, सागरपर्यन्ताम्—सागराः समुद्राः पर्यन्ताः अन्तिमाः सीमाः यस्याः सा ताम्, हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्—हिमवान् हिमालयः विन्ध्यः विन्ध्याचलश्च इति हिमवद्विन्ध्यौ तौ एव कुण्डले कर्णभूषणे यस्याः सा ताम्, एकातपत्राङ्काम्—एकम् अद्वितीयम् आतपत्रम् छत्रम् अंकः (राज्यलक्ष्मीत्वसूचकं) चिह्नं यस्याः सा ताम्, इमाम्—दृश्यमानाम्, महीम्—पृथ्वीम्, प्रशास्तु—परिपालयतु । (अयं भावः अस्माकं राजाधिराजः श्रीमानुदयनः इमां कृत्स्ना मही परिपालयतात् या किल समुद्रपर्यन्तविस्तृता विद्यते, विन्ध्यहिमालयौ यस्याः कुण्डलाविव शोभेते, यस्यां चैकाधिपत्यसूचकम् एकमेव तत्श्वेतच्छत्रं विराजते ।) ।।१६।।

अनुवाद—(नट या नाट्याचार्य भरत का वचन) हमारे राजसिंह समुद्र तक विस्तृत, हिमालय और विन्ध्याचल रूपी कुंडलों से युक्त तथा एक छत्र से चिह्नित इस पृथिवी पर शासन करें ।।१६।। (सबका प्रस्थान) छठा अंक समाप्त। स्वप्न-वासवदत्त नाटक समाप्त।

(Benediction) May our Rajsingha rule over this earth, girt by the oceans, possessing earring of Himavat and Vndhya and marked by one (royal) umbrella (Exeunt all) Here ends the sixth Act.

टिप्पणी—(१) भारतवाक्यम्—नाटक के अन्त में आशीर्वाद रूप में गाया जाने वाला पद्य। इसको प्रशस्ति कहते हैं। प्रशस्ति का लक्षण है—'नृपदेशादिशान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते' यह निर्वहणसन्धि का अंग कहलाता है। यहाँ जब पद्मावती से उदयन का विवाह हो गया, उसके भाई की सहायता से उदयन ने वत्सराज को पुनः प्राप्त कर लिया, प्रधान नायिका वासवदत्ता उसे मिल गई और इस प्रकार सम्पूर्ण नाटकीय सविधान निष्पन्न हो गया तब अन्त में कवि ने यौगन्धरायण के मुख से 'इमां सागरपर्यन्ताम्' इत्यादि भरतवाक्य कहलाया है। (२) नः—यह अस्मद् शब्द के षष्ठी-बहुवचन में 'बहुवचनस्य वस्नसौ' सूत्र से किये गये नस् आदेश का रूप है। (३) राजसिंहः—सिंह के समान पराक्रमी या राजाओं में सबसे श्रेष्ठ। 'सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः' इत्यमरः ।

राजा सिंह इव इति राजसिंहः उपमित समास (४) हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्—हिमवांश्च विन्ध्यश्च इति हिमवद्विन्ध्यौ द्व० स०, तौ कुण्डले यस्याः सा ब० स०, ताम्। हिमाचल और विन्ध्याचल से घिरी हुई। (५) एकातपत्रांकाम्—एकम् आतपत्रम् इति एकातपत्रम् 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति सूत्रेण कर्मधारयसमासः, एकातपत्रम् अंकः यस्याः सा ब० स०, ताम्। जिस पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो ऐसी (६) प्रशास्तु—प्र√शास्+लोट् प्रथमपुरुषस्यैकवचने रूपम् (७) राजसिंहः प्रशास्तु नः—यह वाक्य भास के नाटकों में से अन्य छह नाटकों में भी आया है। यह अनुष्टुप् छंद है ॥१९॥

इति श्रीतारिणीशशर्मकृतायां स्वप्नवासवदत्तस्य विभाख्यटीकायां विवरण समाप्तम् ॥६॥

परिशिष्ट १

(१) नाटक (रूपक) के भेद

नाटक के मुख्य दस भेद है—

नाटकमय प्रकरणं भाणव्यायोगसवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥ (साहित्यदर्पण ६–३)

[नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन ये दस रूपक हैं ।)

इन दशो के लक्षण, कथावस्तु आदि मे प्रायः भिन्नता रहती है । नाटक की कथावस्तु कोई प्रसिद्ध पौराणिक या ऐतिहासिक होती है और उसका नायक लोक-विश्रुत होता है । रूपक की अधिकाश रचनाएँ इसी भेद का लक्षण लेकर लिखी गई हैं। प्रकरण की कथावस्तु काल्पनिक होती है । प्रायः नाटक और प्रकरण इन दो भेदों की रचनाएँ ही अधिक प्रचलित हैं। अन्य भेदों के लक्षण इन्ही से मिलते-जुलते हुए होते हैं । भाण और प्रहसन व्यग्य और हास्य-प्रधान होते हैं । इनमें समाज के पाखडियो और वैदिक धर्म के न मानने वाले नास्तिक-धर्मा-वलवियो की सस्कृत कवियो ने खिल्ली उडायी है । व्यायोग एक अङ्क का होता है । ईहामृग चार अङ्क और तीन सधियों का होता है। वीथी का कथानक भी भाण के समान होता है । इसमें शृङ्गार रस और कैशिकी वृत्ति प्रधान होती है । पात्र एक-दो ही रहते हैं। अङ्क में युद्ध का वर्णन रहता है । करुण रस की प्रधानता होती है । कथा इतिहास या पुराण से ली जाती है । डिम और समवकार के उदाहरण रूप मे क्रमशः त्रिपुरदाह और समुद्र-मन्थन सस्कृत मे आदर्श माने जाते हैं । इन रूपको के अतिरिक्त १८ उपरूपक होते हैं । इनमे से अधिकांश एक अङ्क के होते हैं । सभी लक्षणों को लेकर सस्कृत मे रचनाएँ की गई हैं । हमे इस विषय को विशेष जानकारी के लिए संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों को देखना चाहिए ।

(२) नाटक के प्रमुख तत्त्व

नाटक की सफलता के लिए उसके तीन प्रमुख तत्त्व—कथावस्तु, नायक और रस का भली भाँति निर्वाह कवि को करना चाहिए । यद्यपि ये तीनो बहुत

महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु उत्तरोत्तर इनका महत्त्व अधिक होता है। लेकिन कथावस्तु का समुचित निर्वाह नायक और रस के निर्वाह को स्वतः सिद्ध कर देता है। इसलिए प्रायः कथावस्तु की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। काव्य के नव रसों में से शान्त रस को छोड कर आठ रस नाटक में व्यवहृत होते हैं। वीर या शृङ्गार रस प्रायः नाटक के प्रधान रस होते हैं। धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त ये चार नायक के भेद बताये गये हैं।

कथावस्तु

कथावस्तु का विन्यास नाटक का मूल तत्त्व है। यह जितना स्वच्छ और नाटकोपयोगी होगा उतना ही अधिक नाटक प्रभावशाली होगा। उपादेयता की दृष्टि से कथावस्तु दो तरह से विभक्त होती है—मुख्य कथावस्तु और उसकी अंगभूत कथावस्तु, जिससे मुख्य कथा के विकास मे सहायता मिलती है। दोनों को क्रमशः आधिकारिक और प्रासङ्गिक कथावस्तु कहते हैं—

इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते ।
आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम् ।।
अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ।
तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते ।।
अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते । (सा० दर्पण ६, ४२—४३)

प्रासङ्गिक कथावस्तु दो तरह की होती है—एक वह जो मुख्य कथावस्तु के साथ दूर तक चलती रहती है और दूसरी वह जो स्थान-विशेष पर ही मुख्य कथा-वस्तु की सहायक होती है। दोनों को पारिभाषिक शब्दों में क्रमशः पताका और प्रकरी कहते हैं।

प्रकार या प्रकृति की दृष्टि से भी कथावस्तु रूपक में तीन तरह की होती है—(१) इतिहास आदि पर अवलम्बित प्रख्यातकथावस्तु; प्रायः 'नाटक' की कथावस्तु ऐसी ही होती है। (२) कवि द्वारा कल्पित उत्पाद्यकथावस्तु; जैसी कि 'प्रकरण' में होती है। (३) इतिहास के अंश और कवि-कल्पना दोनों से मिश्रित मिश्रकथावस्तु; रूपक के अनेक भेदों में ऐसी ही कथावस्तु होती हैं।

रंगमंच पर प्रदर्शन की दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद हैं—(१) अभिनेय—वे वस्तुएँ, जिनका अभिनय रंगमंच पर घटना और संवाद के रूप में किया जाता है। (२) सूच्य—वे वस्तुएँ, जिनका रंगमंच पर प्रदर्शन न होकर केवल पात्रों में

संवाद के माध्यम से सूचना दे दी जाती है। ऐसी सूच्य वस्तुओं की सूचना के लिए शास्त्रीय दृष्टि से पाँच प्रकार की व्यवस्था है जिससे रूपक की स्वाभाविकता बनी रहती है और वह नीरस नहीं होने पाता है। इस व्यवस्था या उपाय को अर्थोपक्षेपक कहते हैं—(१) बीती हुई और आने वाली घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा दिये जाने को विष्कम्भक कहते हैं। किन्तु जहाँ विष्कम्भक में एक या दो मध्यम कोटि के पात्र आते हैं उसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं और जहाँ उसमें नीच एवं मध्यम दोनों कोटि के पात्र आते हैं, उसे मिश्रविष्कम्भक कहते हैं। विष्कम्भक में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग होता है। (२) ऊपर कही हुई घटनाओं की सूचना जब निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है तब उसे प्रवेशांक कहते हैं। यहाँ प्राकृत भाषा का प्रयोग होता है। (६) पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों द्वारा कथा की सूचना देने को चूलिका कहते हैं। (४) अंक की समाप्ति पर निष्क्रान्त होने वाले पात्रों द्वारा अगले अंक की कथा की सूचना अंकास्य--है। (५) अंक समाप्त होने के पहले ही आगामी अक की कथा प्रारम्भ कर देने से अंकावतार अर्थोपक्षेपक होता है।

रगमंच पर कथोपकथन में पात्र भी कथावस्तु को तीन तरह से व्यवहार में लाते हैं–(१) जो बात सब के सामने कही जाय, उसे सर्वश्राव्य या प्रकाश कहते हैं। प्रायः अनेक रूपकों के सर्वांश में ऐसी ही कथावस्तु होती है। (२) जो दूसरे पात्रों के सुनने योग्य न होकर केवल अपने ही सुनने योग्य हो और उसे वह पात्र अपने मन के लिए ही कहे, वह स्वगत या अश्राव्य है। माण और प्रहसन में प्रायः ऐसी कथावस्तु होती है। (३) जो केवल कुछ पात्रों के सामने कही जा सके, वह नियतश्राव्य है। नियतश्राव्य में ही जब दो पात्र हाथ की ओट करके बात करते हैं तो उसे जनान्तिक, जब कोई पात्र मुँह फेरकर दूसरे पात्र से कुछ बात कहता है तो उसे अपवारित और आकाश को देखकर किसी से बात चीत करने का अभिनय करते हुए कोई अपने आप प्रश्न और उत्तर दोनों कहता चला जाता है तो उसे आकाशभाषित कहते हैं।

सूच्य घटनायें या कथायें प्रायः अङ्कों के अन्तराल में आती हैं। कथावस्तु के अनुसार रूपक अङ्कों में विभक्त होता है। अङ्क का अर्थ होता है एक काल की निरन्तर चलने वाली कथा का विभाग। प्रायःपात्रों के प्रवेश और प्रस्थान द्वारा इस कथा-विभाग के प्रसंग में नवीनता होती रहती है।

(३) अर्थ-प्रकृति, अवस्था और संधियाँ

रूपक की कथावस्तु प्रायः मानव-जीवन के किसी तथ्य की अभिव्यक्ति लेकर पल्लवित होती है। रूपक मे इस तथ्य का विकास कथावस्तु की अर्थ-प्रकृति बन जाता है अर्थात् इस तथ्य को अर्थ (मुख्य प्रयोजन) कहते हैं। इस अर्थ के विकास मे कार्यक्रम या व्यापार की जो शृङ्खला होती है, उसे अवस्था और इस अवस्था के संयोग से अर्थ-प्रकृति के रूप में विस्तृत कथानक को, जो पाँच अंशो मे विभक्त रहता है, आपस में परस्पर सम्बद्ध करने को संधि कहते हैं। इस प्रकार अर्थ-प्रकृति, अवस्था और संधि के पाँच-पाँच भेद होते हैं, जो नीचे दिये जा रहे हैं। इनमे रूपक की कथावस्तु पूर्ण विस्तृत, नियमित और रमणीय बन जाती है।

अर्थ-प्रकृतियाँ

१. बीज—मुख्य फल का कारणभूत कथाभाग, जिसका पहले बहुत संक्षेप में कथन किया जाता है और आगे वह क्रमशः विस्तृत होता जाता है।

२. बिन्दु—कारण बनकर आने वाली वह बात बिन्दु कहलाती है, जिससे समाप्त होने वाली अवान्तर कथा आगे बढती है और प्रधान कथा अविच्छिन्न बनी रहती है।

३ पताका—इसका परिचय पहले दिया जा चुका है। यह प्रासंगिक कथावस्तु, जो दूर तक नाटक मे चलती रहे। इसका फल भी प्रायः वही होता है जो प्रधान कथा का होता है। जैसे—बालरामायण मे सुग्रीव की कथा और उसकी राज्य-प्राप्ति।

४. प्रकरी—इसका भी परिचय पहले दिया जा चुका है। प्रासङ्गिक कथावस्तु के छोटे छोटे वृत्तों को प्रकरी कहते हैं।

५. कार्य—कार्य का अर्थ फल है। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है और जो साध्य होता है, वह कार्य है। इसी को अन्तिम लक्ष्य या मुख्य प्रयोजन कहते हैं।

अवस्थायें

१. आरम्भ—कार्य की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं।

२. प्रयत्न—कार्य को सिद्ध होता न देखकर उसके लिए शीघ्रता के साथ उपाय करना।

३. प्राप्त्याशा—उपाय और विघ्न दोनों के बीच की अवस्था, जब दोनों की खींचातानी में फल-प्राप्ति का निश्चय न किया जा सके।

४. नियताप्ति—विघ्न के नष्ट हो जाने से जहाँ फल-प्राप्ति का पूर्ण निश्चय हो जाय।

५. फलागम—पूर्ण रूप से उद्देश्य की प्राप्ति।

सन्धियाँ

१. मुख-सन्धि—'आरम्भ' नामक अवस्था और 'बीज' अर्थप्रकृति का जहाँ संयोग होता है, उसे मुख-संधि कहते हैं।

२. प्रतिमुख-सन्धि—रूपक के प्रधान फल का साधक कथानक जिसमें कभी गुप्त और कभी प्रकट होता दिखाई पड़े, वह प्रतिमुख-सन्धि है। यह संधि 'प्रयत्न' अवस्था और 'बिन्दु' अर्थप्रकृति की कार्य-शृंखला को आगे बढ़ाती है।

३. गर्भ-सन्धि—इस संधि में प्रतिमुख संधि का किंचित् आविर्भूत बीज बार-बार प्रकट, गुप्त और अन्वेषित होता रहता है। यह संधि 'प्राप्त्याशा' अवस्था और 'पताका' अर्थप्रकृति के बीच की स्थिति होती है।

४. विमर्श (अवमर्श) सन्धि—वहाँ होती है, जहाँ बीज के अधिक विस्तृत हो जाने पर उसके फलोन्मुख होने में विघ्न होते हैं। इसमें 'नियताप्ति' अवस्था और 'प्रकरी' अर्थप्रकृति होती है।

५. निर्वहण-सन्धि—इसमें 'फलागम' अवस्था और 'कार्य' अर्थप्रकृति होती है। यह रूपक की समाप्ति के सन्निकट, जहाँ पूर्व की संधियों और अवस्थाओं के अर्थों का समाहार होता है, स्थित होती है।

(४) रङ्गमञ्च

रंगमंच भी नाट्यशास्त्र का एक प्रमुख अंग है। वस्तु, नायक और रस के बाद संगीत, वाद्य, नृत्य तथा फिर रंगमंच का ही क्रम आता है। भरतमुनि ने रंगमंच के संबंध में बहुत विस्तृत विवेचन किया है। इसके तीन प्रकार बताये गये हैं—

१. विकृष्ट रंगमंच जो १०८ हाथ लम्बा होता है। २. चतुरस्र अर्थात् चौकोर रंगमंच जो ६१ हाथ लम्बा और उसका आधा ३२ हाथ चौड़ा होता है। ३. त्र्यस्र अथवा त्रिकोण रंगमंच जिसमें प्रायः आपस के लोग ही बैठकर अभिनय

देखते थे। रंगमंच की बनावट आदि के संबंध में भी बहुत से निर्देश दिये गये है, जिनसे अभिनय में होने वाले संवाद, संगीत आदि की ध्वनि अधिक गूँजकर सुनाई पडे। प्रायः आधे भाग में 'रंगमंच होता था और आधे भाग में दर्शकों के बैठने का स्थान। रंगमंच का पिछला भाग रंगशीर्ष कहलाता था। उसके पृष्ठ में नेपथ्य होता था, जहाँ पात्र अपनी वेश-भूषा आदि ठीक करते थे।

कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय नाट्यकला पर यूनानी नाट्यकला का प्रभाव पडा है। लेकिन हमें स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय यूनान मे खुले मैदान में रंगमंच स्थापित किये जाते थे, हमारे यहाँ रंगमंच की व्यवस्था सुनिश्चित थी और नाट्यकला का विकास बहुत ऊँचाई पर पहुँच चुका था। प्रथम शताब्दी ईसवीय से पूर्व हुए कालिदास के पहले भी भास, सौमिल्लक जैसे अनेक नाटककार संस्कृत साहित्य में हो चुके थे। इधर परदे के लिए 'यवनिका' शब्द का प्रयोग यूनान और यवन शब्द की ओर संकेत कर लोगो को भारतीय नाट्यकला पर यूनानी नाट्यकला का प्रभाव अभिलक्षित कर रहा था। किन्तु 'यवनिका' शब्द ही भ्रान्ति से लिखा जाने लगा। भारतीय नाट्यशास्त्र का शब्द तो 'जवनिका' है, जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है–'जूयते प्राच्छाद्यते यया यस्या वा सा जवनिका,√जु+ल्युट्--अन--ङीप्+कन्--टाप्, ह्रस्व'। जु धातु का अर्थ वेग से चलना भी होता है। तदनुसार 'जवनिका' का अर्थ है--जिसके भीतर लोग दौड़कर जल्दी से छिप जायें; अथवा अभिनय में परदे वेग से गिराये और उठाये जाते थे, जिनके लिए 'जवनिका' शब्द का प्रयोग होता था। बात केवल 'यवनिका' 'जवनिका' की ही नहीं है, अपितु ऐतिहासिक प्रमाण और यहाँ-वहाँ की नाटकीय प्रवृत्तियाँ सभी यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय नाट्यकला के विकास में कोई भी यूनानी प्रभाव नहीं पड़ा है। हमारे यहाँ के नाटकों की प्रवृत्ति आनन्द, विनोद, शान्ति तथा उपदेश-मूलक है और वहाँ के नाटक इसके विपरीत मार-काट, हत्या, पीड़ा तथा दुःखान्त गाथाओं से भरे होते हैं। सिकन्दर ने भारत पर ३२७ ई० पू० में आक्रमण किया था और लड़ते हुए वापस चला गया था। बाद में सिल्यूकस भी चन्द्रगुप्त से पराजित हुआ था। अतः भारत मे यूनानी नाट्यकला के प्रश्रय मिलने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता, जब कि इसके बहुत पहले भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' लिखा जा चुका था। पाणिनि की अष्टाध्यायी के कृशाश्व और शिलालिन् नाम से नाटकाचार्य भी हो चुके थे।

(५) नाटक आदि शब्दों के शास्त्रीय लक्षण

१. नाटक—नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ।
सुखदुःखमुद्भूतिनानारसनिरन्तरम्
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥
चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपुरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ॥

नाटक उसे कहते हैं जिसका कथानक प्रसिद्ध हो और जिसमें मुख, प्रतिमुख आदि पाँचों संधियाँ हों। इसमें विलास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए। सुख और दुःख की उत्पत्ति दिखाई जाय और अनेक रसों से उसे पूर्ण होना चाहिए। नाटक में पाँच से लेकर दस तक अंक होते हैं। इसका नायक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी और गुणवान् राजर्षि होता है। वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के गुणों से मिश्रित हो। शृंगार या वीर में से एक रस यहाँ मुख्य होता है और अन्य सब रस उसके अंगभूत रहते हैं। इसे निर्वहण संधि में अद्भुत बनाना चाहिए। इसमें चार या पाँच कार्य-रत पुरुष प्रधान हों और की पूँछ के अग्रभाग के समान इसकी रचना हो।

२. अङ्क—अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ॥

जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुटित करता है, जो अनेक प्रकार के विधानों से युक्त होता है और जहाँ एक अर्थ की समाप्ति होती है तथा बीज

का उपसंहार होता है पर अंशतः बिन्दु का सम्बन्ध बना रहता है, उसे 'अंक' कहते हैं।

३. गर्भाङ्क—अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्गद्वारामुखादिमान् ।
अङ्कोऽपरः सगर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि ॥

जो अंक के बीच में ही प्रविष्ट हो, जिसमें रंगद्वार तथा आमुख आदि अङ्ग हों और बीज एवं फल का स्पष्ट आभास होता हो, उसे गर्भाङ्क कहते हैं।

४. पूर्वरङ्ग—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये ।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते ॥

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पूर्व रंगमंच के विघ्नों की शान्ति के लिए नर्तक या अभिनेतागण जो मंगलाचरण आदि करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

५. नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

देवता, ब्राह्मण राजा आदि की आशीर्वाद-युक्त स्तुति इससे की जाती है, अतः इसे नान्दी कहते हैं। इसमें मांगलिक वस्तु, शंख, चन्द्र, कमल, चक्रवाक और कुमुद आदि का वर्णन होना चाहिए और यह बारह या आठ पदों से युक्त होनी चाहिए।

६. सूत्रधार—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥

बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं। उसका धारण अर्थात् संचालन करने वाला तथा रंगमंच के अधिष्ठाता देव की पूजा करने वाला व्यक्ति सूत्रधार कहलाता है।

७. नेपथ्य—कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

जहाँ नर्तक या अभिनेता गण नाटकोपयोगी वेश-भूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं।

८. (क) आमुख या प्रस्तावना या स्थापना
नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ॥
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥

चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ।।

यहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक (सूत्रधार का सहायक नट) सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में विचित्र वाक्यों द्वारा इस प्रकार बातचीत करें, जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना हो जाय, उसे आमुख कहते हैं और उसी का नाम प्रस्तावना भी है। (स्थापना भी इसको कहते हैं। भास ने इसी 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया है।)

८. (ख) प्रयोगातिशय—यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥

यदि एक ही प्रयोग में दूसरा प्रयोग भी आरम्भ हो जाय और उसी के द्वारा पात्र का प्रवेश हो तो उसे 'प्रयोगातिशय' नामक प्रस्तावना कहते हैं।

९. कंचुकी या कांचुकीय—अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

अथवा

ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः ।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥

कंचुकी उसको कहते हैं, जो अन्तःपुर में जाने वाला, वृद्ध, गुणी, ब्राह्मण तथा सब कार्यों के करने में कुशल होता है। अथवा सदा सात्त्विक प्रकृति वाला, पवित्र आचरण वाला और ज्ञान-विज्ञान में प्रवीण होता है, उसे कांचुकीय कहते हैं।

१०. विदूषक—विकृताङ्गवचोवेषैर्हास्यकारी विदूषकः ।

जो अपने विकृत अंगों, ऊटपटांग वचनों तथा तरह-तरह के वेषों से दर्शकों को हँसाया करता है, उसे विदूषक कहते हैं।

११. नायक—त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ॥

जो त्यागी, विद्वान्, कुलीन, समृद्ध, सुन्दर, युवा, उत्साही, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी, निपुण एवं सुशील हो, वही नायक है (अर्थात् नायक में ये गुण होने चाहिए)।

(क) धीरोदात्त नायक—अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तोदृढव्रतः कथितः ।।

अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाले, क्षमावान्, अत्यन्त गंभीर, महापराक्रमी, स्थिर, गर्व को छिपा कर रखने वाले और दृढ निश्चय करने वाले व्यक्ति को धीरोदात्त नायक कहते हैं। जैसे—राम और युधिष्ठिर।

(ख) धीरोद्धत नायक—मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहङ्कारदर्पभूयिष्ठः ।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः ।।

मायावी, प्रचंड, चंचल, अतिगर्वी तथा स्वयं अपनी प्रशंसा करने वाले को धीर पुरुष धीरोद्धत नायक कहते हैं। जैसे—भीमसेन, दुर्योधन आदि।

(ग) धीरललित नायक—निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ।
निश्चिन्त, कोमल और दिन-रात नाच-गान में रत रहने वाला नायक धीरललित कहलाता है। जैसे—इस नाटक में वत्सराज।

(घ) धीरप्रशान्त नायक—सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्तः स्यात् ।
सामान्य गुणों से अत्यन्त युक्त ब्राह्मण या क्षत्रिय को धीर प्रशान्त नायक कहते हैं। जैसे—मालती-माधव मे माधव।

१२. नायिका—नायकसामान्यगुणैर्युक्ता नायिका ।
नायक में अपेक्षित गुणों से युक्त नायिका होती है।

(६) नाटकीय पात्रों के लिए विशिष्ट शब्द

"नाटक में प्रधान श्रेणी के भृत्यवर्ग राजा को 'स्वामी' अथवा 'देव' शब्द से सम्बोधित करें और निचली श्रेणी के भृत्य 'भट्ट' कह कर उसका सम्बोधन करें। इसी प्रकार राजर्षि तथा विदूषक उसे 'वयस्य' कहकर और ऋषिगण 'राजन्' कहकर या अपत्यार्थक अण् आदि प्रत्यय लगाकर पुकारें। ब्राह्मणवर्ग आपस में चाहे अपत्यप्रत्यान्त शब्द से, चाहे नाम लेकर व्यवहार करें। राजा विदूषक को 'वयस्य' कहकर या नाम लेकर पुकार सकता है। नटी और सूत्रधार परस्पर आर्या और आर्य शब्द से व्यवहार करें। पारिपार्श्विक सूत्रधार को 'भाव' कहकर और सूत्रधार उसे 'मारिष' कहकर बुलावे। निम्न श्रेणी के लोग आपस में 'हण्डे' कहकर, मध्यम श्रेणी के लोग 'हंहो' कहकर और उत्तम श्रेणी के लोग अपने समान कोटि के पुरुषों को 'वयस्य' कहकर परस्पर सम्बोधन करें। बड़े भाई को भव

लोग 'आर्य' कहें। देवता, ऋषि और संन्यासी को सभी श्रेणियों के लोग 'भगवन्' कहकर सम्बोधित करें। विदूषक रानी और चेटी को 'भवती' कहे। रथी को सारथि 'आयुष्मन्' कहे। वृद्ध पुरुषों को जवान और बालक 'तात' कहें। शिष्य, छोटे भाई और पुत्र को वत्स, तात, पुत्रक इन शब्दों से अथवा उनके नामों में गोत्र प्रत्यय लगा कर सम्बोधित करना चाहिए। अधम श्रेणी के लोग अमात्य को 'आर्य' कहें और ब्राह्मण उसे 'अमात्य' या 'सचिव' पद से विभूषित करे। उत्तम श्रेणी के लोग तपोनिष्ठ और शान्तिनिष्ठ पुरुषों को 'साधो' कहकर पुकारें। शिष्य अपने गुरु या आचार्य को 'भगवन्' अथवा 'सुगृहीतनामधेय' आदि पदों से सम्बोधित करे। राजा को महाराज' या 'स्वामी' शब्द से और युवराज को 'कुमार' शब्द से अभिहित करना चाहिए। छोटी श्रेणी के लोग राजकुमार को 'भर्तृदारक', 'भद्र', 'सौम्यमुख' आदि शब्दों से पुकारें। राजकुमारी को राजा के नौकर-चाकर 'भर्तृदारिका' कहें। उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुष स्त्रियों को उसी प्रकार सम्बोधित करें जैसे उनके पतियों को करते हैं। सखी को 'हला' शब्द से, दासी को 'हञ्जे' कहकर, वेश्या को 'अज्जुका' और कुटनी को 'अम्बा' कहकर पुकारना चाहिए। पाखंडी लोग अपने-अपने आचार के अनुसार सम्बोधित किए जाने चाहिए। शक आदि जाति के लोगों के नाम के अन्त में भद्रदत्त आदि शब्दों को जोड़ना चाहिए। जिसका जो कर्म हो, शिल्प हो, जो विद्या हो या जो जाति हो, उसी से उसका व्यवहार करना चाहिए।"

परिशिष्ट २

अकारादिक्रम से श्लोकानुक्रमणिका

श्लोक	पृष्ठ
अनाहारे तुल्यः	५९
अनेन परिहासेन	१३२
अस्य स्निग्धस्य	२१६
अहमवजितः पूर्वम्	२०५
इमां सागरपर्यन्ताम्	२३४
इयं बाला नवोद्वाहा	१४१
उदयनवेन्दुसवर्णा	२
उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्ग	१८१
ऋज्वायतां च विरलां	११२
ऋज्वायतो हि मुख	१५४
कस्यार्थः कलशेन	३१
कः कं शक्तो रक्षितुं	२०९
कातरा येऽप्यशक्ता वा	२०४
कामेनोज्जयिनी गते	१०९
कार्यं नैवार्यैर्नापि	३५
किं वक्ष्यतीति हृदयं	१९८
किन्नु सत्यमिदं	२२८
खगा वासोपेताः	६७
गुणानां च विशालानां	१४२
चिरप्रसुप्तः कामो मे	१९२
तीर्थोदकानि समिधः	२०
दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलो	१३४
धीरस्याश्रमसंश्रितस्य	८
निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं	१७१
नैवेदानीं तादृशाः	५७
पद्मावती नरपतेः	४२
पद्मावती बहुमता	१२६
परिहरतु भवान्	१५
पादाक्रान्तानि पुष्पाणि	१२०
पूर्वं त्वयाऽप्यभिमतं	१२
पृथिव्या राजवंश्यानां	२०२
प्रच्छाद्य राजमहिषीं	२२१
प्रद्वेषो बहुमानो वा	२२
बहुशोऽप्युपदेशेषु	१६१
भारतानां कुले	२२६
भिन्नास्ते रिपवः	१७९
भृत्यैर्मगधराजस्य	६
मधुमदकला	११९
महासेनस्य दुहिता	२११
मिथ्योन्मादैश्च	२२९
यदि तावदयं	१७४
यदि विप्रस्य	२१९
योऽयं सन्त्रस्तया	१७७
रूपश्रिया	१५१
वाक्यमेतत्	२१४
विस्रब्धं	४५
शय्या नावनता	१५६
शय्यायामवसुप्त	१७३
शरच्छशांक	१४०
श्रुतिसुख	१८९
श्रोणीसमुद्वहन	१९१
श्लाघ्यामवन्ति	१४९
षोडशान्तःपुर	२०७
सम्बन्धि राज्य	२००
सविभ्रमो ह्ययं	६१
सुखमर्थो	३७
स्मराम्यवन्त्याधिपतेः	१६०
स्वप्नस्यान्ते	१७६

परिशिष्ट ३

स्वप्ननाटक में सुभाषित

१—अकरुणाः खल्वीश्वराः । (अपने पति के पद्मावती के साथ विवाह के समय वासवदत्ता की उक्ति) ईश्वर बड़े निर्दयी हैं। ... ८६

२—अनतिक्रमणीयो हि विधिः । (विदूषक की उक्ति) भवितव्यता टाली नहीं जा सकती। ... १३४

३—अनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते। (यौगन्धरायण की उक्ति) इस प्रकार विदित न होने पर तो देवताओं का भी अपमान होता है। ... ११

४—अविचार्य कर्म न करिष्यति। (वासवददत्ता की उक्ति) बिना विचारे वे (यौगन्धरायण) कोई काम नहीं करेंगे। ... ३६

५—अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते। (वासवदत्ता की उक्ति) यहाँ छिपकर रहना भी बहुत गुणकारी हो रहा है। ... १२७

६—अयुक्त परपुरुषसकीर्तन श्रोतुम्। (पराये पुरुष का गुणगान सुनना उचित नही है।) ... २१६

७—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्ति रिणा कथम्। (धात्री की उक्ति) इस मनोहर रूप पर भीषण आपत्ति कैसे पड़ी। ... ६१

८—आगमप्रधाननि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति। (धात्री की उक्ति) महापुरुषों के हृदय शास्त्रों पर विश्वास करने के कारण आसानी से प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। ... ८०

९—एव लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले-काले छिद्यते रुह्यते च। (अर्थात् जैसे वृक्ष समय आने पर काटे जाते हैं और फिर समय आने पर पनप उठते हैं उसी तरह मनुष्य भी समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते रहते हैं।) ... २०६

१०—कः क शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले। (कंचुकी) इसी प्रकार वृक्षों के समान स्वभाव वाले मनुष्य समय-समय पर मरते और उत्पन्न होते हैं। ... २०६

११—कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः। (यौगन्धरायण) लोगों का भाग्यचक्र पहिये के अरों की भाँति समयानुसार घूमता हुआ चलता है। ... १२

१२—कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते। (कंचुकी) जो अधीर या असमर्थ होते है उनमे उत्साह नही होता। ... २०४

१३—गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः। कर्त्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥ अत्यन्त महान् गुणों एवं सत्कारों के करने वाले लोग तो संसार में नित्य मिल जाते हैं परन्तु (उन गुणों तथा सत्कारों को) जाननेवाले (अर्थात् आदर पूर्वक स्वीकार करने वाले लोग) कम मिलते हैं। ... १४२

१४—तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वगेहम्। (तापसी) तपोवन तो अतिथियों का अपना घर है। ... २६

१५—तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः। (यौगन्धरायण) क्योंकि जिसके हाथ राजा की देखभाल है उसी के हाथ में सब कुछ है।.. ६१

१६—दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः। (राजा) जमी हुई जड़वाले प्रेम को भूल जाना बड़ा कठिन है। ... १३४

१७—धन्या खलु चक्रवाकवधूः, यान्योन्यविरहिता न जीवति। (वासवदत्ता) निःसंदेह चकवे की बहू (चकवी) धन्य है जो एक दूसरे से वियुक्त होकर नहीं जीती। ... ८४

१८—न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्। (कंचुकी) आश्रम मे रहने वालों को कठोर वचन नहीं कहना चाहिए। ... १५

१९—न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि। (यौग०) क्योंकि भाग्य भली भाँति परखे हुए सिद्धों के वचनों का उल्लंघन करके नहीं चलता है। ... ४२

२०—परस्परगता लोके दृश्यते तुल्यरूपता। (राजा) संसार में (बहुतों के) स्वरूप एक दूसरे से मिलते-जुलते दिखाई पड़ते हैं। ... २१६

२१—प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते। (यौग०) घृणा या लगाव मन के भाव से ही उत्पन्न होते हैं। ... २२

२२—प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते। (कंचुकी) जो उत्साही होते वे ही प्रायः राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं। ... २०४

२३—प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति। (राजा) प्राणी रोग के कारण बिस्तर पर पहुँच कर अपने आप, शीघ्र उसे नहीं छोड़ता है। ... १५६

२४—यात्रा त्वेषा यद्विमुच्येह वाष्पं प्राप्तानृण्यं याति बुद्धिः प्रसादम्। (राजा) तो भी व्यवहार यही है कि यहाँ (इस लोक में) आँसू वहाकर ऋण से छुटकारा पाया हुआ मन शान्ति प्राप्त कर लेता है। १३४

२५—रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति। (कंचुकी) रस्सी के टूट जाने पर कौन घड़े को (गिरने से) रोक सकता है। ... २०६

२६—सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति। (विदूषक) क्योंकि सत्कार का बदला सत्कार से दिये जाने पर प्रीति उत्पन्न करता है। ... १४२

२७—सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति। (पद्मावती) चतुर व्यक्ति का सेवक भी चतुर ही होता है। ... १३६

२८—सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम। (पद्मावती) निश्चय ही सौन्दर्य सबके मन को आकृष्ट कर लेता है। ... ७८

२९—सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम। (कंचुकी) आश्रम तो सभी के लिए खुला है। ... ४७

३०—साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः। (राजा) साक्षी के सामने धरोहर लौटानी चाहिए। ... २२४

३१—सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च। (विदूषक) यह सुख-सुख नहीं जो रोग से आक्रान्त हो और जिसमें कलेवा न मिले।... ९५

३२—स्त्रीस्वभावस्तु कातरः। (राजा मन में) नारियों का स्वभाव तो अधीर होता है।

परिशिष्ट ४

नाटक में आये छन्दों के लक्षण

(१) अनुष्टुप्—पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरु विजानीयादेतत् पद्यस्य लक्षणम् ॥

अनुष्टुप् में ८ अक्षर होते हैं। उनमें से सभी चरणों में पंचम अक्षर लघु होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सातवाँ अक्षर लघु होता है और छठा अक्षर सर्वत्र गुरु होता है।

(२) आर्या—यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

जिसके पहले और तीसरे पाद में बारह, दूसरे पाद में अठारह और चौथे पाद में पन्द्रह मात्रायें हों, उसे आर्या कहते हैं।

(३) इन्द्रवज्रा—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

इन्द्रवज्रा में २ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर होते हैं। कुल ११ वर्ण होते हैं।

(४) उपजाति—अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

उपजाति छंद इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छंदों के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छंद होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा।

(५) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

इसमें भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण और २ गुरु अक्षर।

(६) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

पुष्पिताग्रा छंद के प्रथम और तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ नगण, १ रगण और १ यगण। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं—१ १ नगण, २ जगण, १ रगण और १ गुरु वर्ण।

(७) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

वसन्ततिलका छंद में १४ वर्ण होते हैं—१ तगण, १ भगण, २ जगण और २ गुरु वर्ण।

(८) वैश्वदेवी—पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ।

वैश्वदेवी छंद में १२ वर्ण होते हैं—२ मगण और २ यगण। इसमें ५ और ७ पर विराम होता है।

(९) शार्दूलविक्रीडित—सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

इस छद में १९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण १ जगण, १ सगण, २ तगण और १ गुरु वर्ण। इसमे १२ और ७ पर विराम होता है।

(१०) शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

शालिनी छद में ११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण और २ गुरु वर्ण। ४ और ७ पर विराम होता है।

(११) शिखरिणी—रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

शिखरिणी छद मे १७ वर्ण होते हैं—१ यगण, मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघ और १ गुरु वर्ण। इसमे ६ और ११ पर विराम होता है।

(१२) हरिणी—नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

हरिणी छंद मे १८ वर्ण होते हैं—१ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण। इसमें ६, ४ और ७ पर विराम होता है।

परिशिष्ट ५

भास की प्राकृत—डा० भोलाशकर व्यास ने अपने 'संस्कृत कविदर्शन' में (पृष्ठ २४६) भास की प्राकृत के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा है:—

"भास के नाटकों की प्राकृत प्रायः शौरसेनी है। दूतवाक्य के अतिरिक्त अन्य सभी नाटकों में प्राकृत का प्रयोग पाया जाता है। मागधी का प्रयोग प्रतिज्ञा, चारुदत्त, बालचरित, पंचरात्र तथा कर्णभार मे हुआ है। भास की शौरसेनी से ऐसा पता चलता है कि वह अश्वघोष तथा कालिदास के बीच की स्थिति का सकेत करती है। अश्वघोष की प्राकृत मे अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ सघोष अल्पप्राण नही होती, भास की प्राकृत में ट और त क्रमशः ड और द हो जाते हैं। अश्वघोष की प्राकृत मे स्वरमध्यग व्यंजन लुप्त नही होते, जब कि भास में स्वरमध्य क, ग, च, त, द, प, ब, व, च का लोप हो जाता है, यद्यपि यह लोप कालिदास की अपेक्षा कम पाया जाता है। महाप्राण ख, घ, थ, ध, फ, भ भास —

की प्राकृत में ह् हो जाते हैं, अश्वघोष में ये अपरिवर्तित बने रहते हैं। संस्कृत ज्ञ कालिदास की प्राकृत में ण्ण मिलता है, अश्वघोष में ञ्ञ, किन्तु भास की प्राकृत में इसका कभी ञ्ञ रूप मिलता है कभी ण्ण। संस्कृत 'वयं' का रूप अश्वघोष में अपरिवर्तित रहता है, कालिदास में इसका 'अम्हे' रूप मिलता है। भास की प्राकृत में ये दोनों रूप पाये जाते हैं, साथ ही 'वअं' रूप भी मिलता है। अस्मत् शब्द के षष्ठी बहुवचन में भास में अम्हाअं, अम्हाणं दोनों रूप मिलते हैं। अश्वघोष में अम्हाकं रूप मिलता है।

भास की मागधी तथा अर्धमागधी में हमें दो रूप मिलते हैं। बालचरित तथा पंचरात्र में ए और ओ ध्वनि पाई जाती है। प्रतिज्ञा और चारुदत्त में द और ए। मागधी में 'अह' के लिए 'अहके' का प्रयोग पाया जाता है।"

परिशिष्ट ६

भास के व्याकरण संबंधी अपाणिनीय प्रयोग

१. आपृच्छामि भवन्तौ।	प्रथम अंक
२. विनयादपेतपुरुषः।	"
३. सुख मर्थो भवेद्दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।	"
४. न शिल्प्यते मे मनसि।	"
५. देशागतप्रत्ययाः।	"
६. कः कालः त्वामन्विष्यामि।	तृतीय अंक
७. धरते खलु वासवदत्ता।	"
८. प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमम् इत्यादि।	चतुर्थ अंक
९. बाष्पाकुलपटान्तरितम्।	"
१०. मधुकरपरिनिलीनाम्।	"
११. मा भूयोऽवचिन्त्य।	"
१२. मेदानीमन्यथा चिन्तयित्वा।	"
१३. स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।	"
१४. आर्यपुत्रेणेहागत्येमा कुसुमसमृद्धि दृष्ट्वा इत्यादि।	"
१५. अर्धमन.शिलापट्ट के रिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम्।	"
१६. स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः।	पंचम अंक

१७. मेदानी मवाननर्य चिन्तयित्वा । पंचम अंक
१८. संबंधिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः । षष्ठ अंक
१९. स्मृत्वा पुनः नृपसुतानिधनं विषादः । "

परीक्षोपयोगी प्रश्न

१. स्वप्नवासवदत्तम् की कथावस्तु को संक्षेप में लिखिए ।
२. स्वप्नवासवदत्तम् के कथानक की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
३. भास ने इस नाटक का नाम स्वप्नवासवदत्तम् क्यों रखा ?
४. वासवदत्ता और पद्मावती के चरित्रों की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए ।
५. प्रथम अंक में ब्रह्मचारी के समावेश से किस अर्थ की सिद्धि होती है ।
६. यौगन्धरायण, उदयन, वसन्तक, वासवदत्ता तथा पद्मावती का सोद्धरण चरित्र-चित्रण कीजिए ।
७. लावाणक गाँव को जलाने से कौन-सा नाटकीय तथ्य सिद्ध होता है ? स्पष्ट कीजिए ।
८. यौगन्धरायण ने पद्मावती का विवाह क्यों और किस प्रकार किया ?
९. उदयन कौन था ?
१०. यौगन्धरायण ही नाटक में प्रमुख पात्र है । स्पष्ट कीजिए ।
११. स्वप्नदृश्य का विश्लेषण कीजिए और नाटक में उसका महत्त्व बतलाइये ।
१२. स्वप्नवासवदत्तम् के मूलस्रोत का उल्लेख कीजिए और बतलाइये कि भास ने क्या परिवर्तन किये हैं और क्यों ?
१३. भास के स्थिति-काल का निर्णय कीजिए ।
१४. भास की नाट्यकला पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये ।
१५. भास की शैली पर प्रकाश डालिए ।
१६. भास की रचना में अपाणिनीय प्रयोगों के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कीजिए ।
१७. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:—
नाटक, पूर्वरंग, नान्दी, सूत्रधार, विष्कम्भक, प्रस्तावना, कञ्चुकी नेपथ्य ।
१८. (अ) निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ लिखिए:—
अंक प्रथम—१, ३, ४, ७, ८, ११, १२, १४, १६

अंक चतुर्थ—२, ३, ७, १०

अंक पञ्चम—३, ४, १२, १३

अंक षष्ठ—१, २, ४, ५, ८, १०, १५

(आ) निम्नलिखित गद्यांशों का सदर्भपूर्वक अर्थ लिखिए—

पृष्ठ—१८ काञ्चुकीय का कथन।

६८ चेटी का कथन।

८३ वासवदत्ता का कथन।

६४,१२० विदूषक का कथन।

१६७ वासवदत्ता का कथन।

१८६ प्रतीहारी का कथन।

२१४ धात्री का कथन।